पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में चित्रित समाज और संस्कृति

(करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध–निर्देशक :
डॉ. पूरणमल मीना
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

शोधार्थी
हरिकेश मीना
व्याख्याता, हिन्दी
राजकीय कन्या महाविद्याय
करौली (राजस्थान)

हिन्दी विभाग
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2016

डॉ. पूरणमल मीना
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री हरिकेश मीना** ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (हिन्दी) की उपाधि हेतु **'पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में चित्रित समाज और संस्कृति (करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में)'** विषय पर प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है।

इनका यह कार्य मौलिक तथा स्तरीय है। इस निमित्त इन्होंने प्रकाशित, अप्रकाशित एवं अन्य सामग्री का अनुशीलन किया है। मैं इसे कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत करने की अनुमति देता हूँ।

दिनांक :

डॉ. पूरणमल मीना
(शोध–निर्देशक)

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में चित्रित समाज और संस्कृति
(करोली एवं सवाईमाधोपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में)

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन **i-viii**

1. अध्याय प्रथम : राजस्थान का संगठनात्मक ढाँचा : एक परिचय **1–42**

— नामकरण और व्याख्या

— भौगोलिक परिचय

— ऐतिहासिक संरचना (गठन)

— पूर्वी राजस्थान

— करौली - सवाईमाधोपुर

2. अध्याय द्वितीय : राजस्थान एवं पूर्वी राजस्थान का लोकसाहित्य **43–117**

— लोक साहित्य : अर्थ एवं स्वरूप

— राजस्थानी लोकसाहित्य की अवधारणा

— वर्गीकरण : पद्य - गद्य

पद्य — लोकगीत, लोक कहावतें, लोकपहेलियां, लोकतन्त्र

गद्य— लोककथाएँ (बात), लोकगाथाएँ (पवाड़े), लोकनाट्य (ख्याल), लोकनृत्य, लोकवाद्य, लोकविश्वास, लोरिया, करौली सवाई माधोपुर का लोकसाहित्य।

3. अध्याय तृतीय : संस्कृति एवं समाज का सामान्य अध्ययन **118–154**

— संस्कृति व्युत्पत्तिपरक अर्थ एवं परिभाषा

— विकास का सोपान

— भौगोलिक स्थिति और संस्कृति पर प्रभाव : लोक संस्कृति, परिभाषाएँ, मूलतत्त्व, उद्देश्य

— करौली सवाई माधोपुर जिले की लोकसंस्कृति : समाज, अर्थ परिभाषाएँ

— भारतीय समाज

— भारतीय समाज एवं संस्कृति की विशेषताएँ

— सांस्कृतिक बहुलतावाद

— विविधता में एकता

— सारांश

4. अध्याय चतुर्थ : करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के लोक साहित्य में चित्रित संस्कृति **155–191**

— स्थापत्यकला

— लोकमूर्तिकला

— लोक चित्रकला

— लोकसंगीत

— लोकवाद्य

— लोकनृत्य

— लोकसाहित्य

— मंगलाचरण विधान

— दानशीलता

— प्रेम की महत्ता

— संसार की नश्वरता

— सारांश।

5. अध्याय पंचम : करौली एवं सवाई माधोपुर के लोक साहित्य में चित्रित समाज **192–245**

— परिवार

— संस्कार

— लोकोत्सव

— विभिन्न जातियाँ (मीणा)

— लोकदेवता

— उपवास

— व्रत लोकविश्वास

— कृषि प्रधानता

— समाज का विकृत रूप

6. अध्याय षष्ठ : पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य का वैश्विक महत्त्व **246–261**

— अर्थ एवं स्वरूप

— परिभाषाएँ

— लोकसाहित्य

— लोकसाहित्य का संरक्षण

— पूर्वी राजस्थान के लोकसाहित्य को करौली एवं सवाई माधोपुर का योगदान

उपसंहार **262–267**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **268–273**

प्राक्कथन

विश्व रंगमंच पर में न जाने कितनी संस्कृतियों ने अपने वैभव का प्रदर्शन किया है तथा नाना संस्कृतियों के उत्थान पतन की कथा दबी हुई है, किन्तु भारतीय संस्कृति की अमिट छाप राजस्थानी संस्कृति की विशिष्ट पहचान बन गई है। लोकसाहित्य में समाज व संस्कृति को अपनी परम्परा व रीतियों, रूढ़ियों, पुरातन लोकविश्वासों का समावेश होता है। भारतीय संस्कृति सर्वजनहिताय व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत-प्रोत है। प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों को प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। बिना किसी भेद-भाव के समान जाति, धर्म, सम्प्रदाय व बिना लिंग भेद के सभी को धार्मिक, सामाजिक, वैचारिक कार्यों में सहभागिता का अधिकार प्राप्त है। पूर्वी राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर की चर्चा करें तो राजस्थानी धरा के कण-कण में त्याग, तप व समर्पण, बलिदान की महक उठती है जो सम्पूर्ण भारत के मस्तक में तेज को प्रकट करती है।

पूर्वी राजस्थान के लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति की अक्षुण्ण और सर्वकालिक अमृतधारा प्रवाहित होकर मानव मात्र के कल्याण का उद्घोष करती है। यह परम्परा अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करती है, जो समाज की आत्मा का प्रतिबिम्ब है। लोकजीवन की विविध भंगिमाओं का अवलोकन लोकसंस्कृति में स्पष्ट दृष्टिगोचर है। शौर्य, राग-विराग, चिन्तन मनन, आशा-निराशा, आदर्शों की स्थापना, मर्यादा का पालन, कृषि, पशु-पालन, नदी, तालाब,

फल–फूल व ऋतुओं में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव मानवीय सोच में परिवर्तन कर सद् विचारों का उन्मेष प्रकट करता है। यथार्थ के धरातल पर मानव एकता का सन्देश देने में लोकसंस्कृति की महती भूमिका रहती है।

पूर्वी राजस्थान के करौली–सवाई माधोपुर क्षेत्र की संस्कृति की विशिष्टता पवित्रतम तपोभूमि के स्थलों से मिलने वाली सद्प्रेरणा का ही परिणाम है। यहाँ के प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य मातृभूमि की रक्षार्थ सर्वस्व समर्पण की भावना रही है। राजा हम्मीर के आदर्शों का अनुसरण करना है। यहाँ के वनों में विभिन्न जीव–जन्तुओं व पशुओं का स्वतन्त्र विचरण करना इस बात को स्पष्ट करता है कि वीरभूमि में सबको स्वतन्त्र जीवन जीने का अधिकार है। प्रकृति में खुली साँस लेकर उन्मुक्त गगन में पंछियों को उड़ने का अधिकार है, वैसे ही उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, अभिनवता, ठहराव, बहाव, गति में गमन, निर्मलता एवं विविधता तथा मिट्टी के विविध रंगों व उसकी गंध की महक, लोकजीवन के विविध रंगों, विश्वासों–अविश्वासों, आस्था, आध्यात्मिक चेतना की अनुगूंज से सम्पूर्ण पूर्वी अंचल में एक धुन सुनाई देती है। देवी–देवताओं की तीर्थस्थली करौली की कैला मैया, मदनमोहन जी, महावीर जी, रणथम्भोर के गणेश जी, चौथ माता, शिवाड़ (ईशरदा) की कृपा से सम्पूर्ण अंचलवासियों में ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था बनी हुई है।

पूर्वी अंचल का लोक साहित्य सम्पूर्ण राजस्थान के लोकजीवन का उत्कर्ष है। करौली व सवाई माधोपुर क्षेत्र को पिछड़ा क्षेत्र मानते हैं, किन्तु लोकसाहित्य का अध्ययन किया तो वहाँ पर्याप्त साहित्य है। लोक परम्पराओं, देवी–देवताओं, ग्रामीण व शहरी संस्कृति में कोई विशेष परिवर्तन न होकर मानव से मानव को जोड़ने की एक विशिष्ट परम्परा है, जिसमें हमारे त्यौहार, पर्व एवं उत्सवों में भ्रातृभाव समानता व एकता की गूँज स्पष्ट परिलक्षित है। विविध वर्गों के सम्प्रदायों, धर्मावलम्बियों के होने पर भी धर्म निरपेक्षता है। असहिष्णुता के लिए लोकसंस्कृति में कोई स्थान नहीं है।

लोकसाहित्य व संस्कृति का समावेश समाज में रहकर ही समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में संस्कारों, परम्पराओं, रूढ़ियों एवं पुरानी विचारधाराओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त कर अनुसंधान प्रस्तुत किया है जो निम्नानुसार है—

अध्याय प्रथम में राजस्थान प्रदेश के संगठनात्मक ढाँचे को वर्गीकृत कर उसकी प्राचीन परम्पराओं का उल्लेख है। भारतीय संस्कृति का विकास व पतन दोनों को प्रस्तुत किया है। राजस्थान नाम कैसे पड़ा फिर इसके नामों में कितनी बार परिवर्तन होकर राजस्थान नाम हुआ। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान प्रांत का क्षेत्रफल, जनसंख्या की दृष्टि से पहले और आज में कितना परिवर्तन हुआ। ऐतिहासिक सन्दर्भ में राजस्थान प्रदेश के क्षेत्र में चारों दिशाओं में क्या-क्या महत्त्व है। पूर्वी राजस्थान की सीमा अन्य प्रदेशों से कितनी जुड़ी है तथा उनका परिवेश भाषा संस्कृति व समाज से तुलनात्मक अध्ययन किया है। पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाई माधोपुर जिलों के आस-पास के जिलों से मिलती-जुलती संस्कृति व भाषा का परिचयात्मक अध्ययन किया है।

अध्याय द्वितीय में राजस्थान प्रदेश व पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य का अनुसंधान किया है। लोकसाहित्य का विशद विवेचन अर्थस्वरूप तथा परिभाषाएँ भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के मतों के अनुसार प्रस्तुत है। राजस्थानी लोकसाहित्य की अवधारणा को स्पष्ट किया है, फिर राजस्थानी लोक साहित्य को गद्य-पद्य में बाँटा है तथा लोकगीत, लोककहावतें, लोकपहेलियाँ, लोकमन्त्र आदि का विस्तृत वर्णन उदाहरणों सहित प्रस्तुत है। गद्य में लोककथाएँ (बात), लोकगाथाएँ (पवाड़े), पूर्वांचल की संस्कृति के विविध उदाहरण देकर प्रस्तुत किये हैं। लोकनाट्य (ख्याल), लोकनृत्यों के अंचल के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

लोकवाद्य, लोकविश्वासों की चर्चा की है, लोरियों के विविध उदाहरण प्रस्तुत हैं। अन्त में करौली जिले व सवाई माधोपुर जिले का लोकसाहित्य प्रस्तुत किया है।

अध्याय तृतीय में संस्कृति समाज का सामान्य अध्ययन करते हुए पूर्वी राजस्थान के करौली सवाई माधोपुर क्षेत्र की लोकसंस्कृति के स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। संस्कृति के विविध सोपानों का परिचयात्मक अध्ययन कर भौगोलिक स्थिति व सांस्कृतिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव तथा परिवेश की विसंगतियों का अध्ययन किया है। लोक संस्कृति का परिचय, परिभाषाएँ, मूल तत्वों एवं उद्देश्यों का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। साथ ही करौली व सवाई माधोपुर जिले की लोकसंस्कृति की अविरल धारा का अमृतपान किया है। समाज का अर्थस्वरूप, भारतीय समाज, सभ्यता, सांस्कृतिक धरोहर, संस्कृति की विशेषताएँ उल्लिखित हैं। सांस्कृतिक बहुलतावाद, विविधता में एकता के लोकसंस्कृति व समाज में प्रचलित करौली, सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य के नवीन उदाहरण प्रस्तुत-शोध-प्रबन्ध में संकलित हैं। अन्त में समग्र विवेचन का सारांश प्रस्तुत है।

अध्याय चतुर्थ में करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के लोकसाहित्य में चित्रित संस्कृति का स्वरूप परिभाषाएँ एवं विचारकों के मत को प्रस्तुत किया है। स्थापत्य कला, लोकमूर्तिकला, लोक चित्रकला, लोकसंगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य, लोकसाहित्य, मंगलाचरण विधान दानशीलता में लोकसाहित्य के विविध उदाहरणों का समावेश करते हुए विस्तृत चर्चा की है। प्रेम की महत्ता, संसार की नश्वरता, बारह माह के त्यौहारों का विशद विवेचन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उल्लिखित है, जो ऊर्जावान जनसमुदाय के मुख से निकलने वाले मधुर संगीत की तान से मन्त्रमुग्ध करने वाले लोकसंगीत का प्रभाव पूर्वांचल की धरोहर है।

अध्याय पञ्चम् में करौली सवाई मधोपुर क्षेत्र के लोक साहित्य में चित्रित समाज व लोक साहित्य का समन्वयात्मक स्वरूप लोक साहित्य में कितना प्रभावशाली है। लोकसाहित्य से प्रभावित पूर्वी अंचल के लोगों के जनजीवन का खुला दस्तावेज है। पौराणिक व ऐतिहासिक रूप से पूर्वी राजस्थान के दोनों जिलों—करौली व सवाई-माधोपुर—का विशिष्ट महत्त्व रहा है। लोकसाहित्य ऐसी विधा है जो लोकगीत, संगीत, लोकगाथाओं व लोककथाओं पर चलती है। भारतीय परम्परा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली उक्ति संस्कृति परिवेश व विचारधाराओं से समाज को नव्यता प्रदान करती है। प्राचीनकाल से संयुक्त परिवारों में रहने वाले लोगों में सहयोग परस्पर प्रेम की भावना अंचलवासियों में दृष्टिगोचर होती है, लेकिन आज के वातावरण में व पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में होने वाले परिवर्तन के कारण छोटा परिवार सुखी परिवार की धारणा मानवीय सोच भी बन चुकी है। लेकिन पूर्वी राजस्थानी लोकजीवन में त्याग, तप, श्रद्धा, सम्मान अद्यतनकाल में भी प्रचलित है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कर्त्तव्य परायणता से ओत-प्रोत सामाजिक विचारधारा का विश्लेषण किया गया है। भाई-बहिन का प्रेम, पति-पत्नी सम्बन्ध, माता-पिता के प्रति समर्पण की भावना व हमारे संस्कारों का विस्तृत अध्ययन किया है। विवाह, भात भरने, पुत्र जन्मने के लोकगीतों में राजस्थानी संस्कृति के रंग-बिरंगे फूलों की छटा दृष्टिगत है। लोकोत्सवों में होलिका, दीपावली, गणगौर, रक्षाबन्धन, शीतलाष्टमी, तीज, नवरात्र, अक्षयतृतीया, पीपल नवमी, एकादशी (देवउठनी, देवसोनी), मकर सक्रांति आदि उत्सव पर्वों को पूर्वी राजस्थानी अंचल में गीतों के माध्यम से लोकचेतना की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

अध्याय षष्ठ में राजस्थानी लोक साहित्य में लोकचेतना की अभिव्यक्ति लोक संस्कृति की विराट समन्वयात्मक चेतना है, जो राजस्थानी बहुरंगी संस्कृति की अविरल छटा की झलक पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाईमाधोपुर अंचल में स्पष्ट

दृष्टिगोचर है। भारतीय संस्कृति वेद, वेदांगों, उपनिषद् व पुराण, रामायण, महाभारत एवं श्रीमद् भगवत गीता के आदर्शों का पालन करने में त्याग व अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहकर जीवन को सर्जनात्मक गति प्रदान करते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में हमारे आदर्शों में परिवर्तन द्रुत गति से होता आया है, जो परिवेश की संस्कृति में निरन्तर बदलाव की स्थिति पैदा किये हुए हैं। समकालीन जनजीवन में कई विसंगतियाँ पैदा कर चुका है किन्तु भारतीय आदर्शों का प्रभाव आज भी वीरभूमि राजस्थान की लोकचेतना, लोकजीवन के उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों व लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

उपसंहार में पूर्वी राजस्थान के लोकदेवता, देवियों के प्रति आस्था भाव की मूल चेतना जीवन की वैश्विकता को भी प्रकट करती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सारांश रूप में राजस्थानी संस्कृति की विशिष्ट परम्पराओं से होने वाले जुड़ाव, यहाँ की धरा की गंध, नदियाँ, पर्वतमालाएँ, अरावली की छटा, यहाँ के विभिन्न अभयारण्य, रणथम्भोर, वन्यजीव अभयारण्य, जिसमें गणेश जी महाराज की कृपा प्रदेशवासियों पर रहती है तथा विशाल मेलों का आयोजन करौली वाली मैया के चैत्र के नौरात्रों में राजस्थान प्रदेश के अलावा सम्पूर्ण भारतीय इस पवित्र धरा पर आते हैं। अन्य संस्कृतियों से भिन्न राजस्थानी संस्कृति की छाप आज भी है जो अधुनातन सन्दर्भों को स्पर्श करते हुए मैंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नवीनतम उदाहरण देकर नवीन आयाम स्थापित करने का विनम्र प्रयास किया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध पूज्य गुरुवर डॉ. पूरणमल मीना, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर के नेतृत्व में **'पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में चित्रित समाज और संस्कृति' (करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के विशेष संदर्भ में)** की सत्प्रेरणा से प्रेरित होकर लिखा गया है। इनकी सहजता, सरलता, कृपा व स्नेह के प्रति कुछ भी कह पाने में असमर्थ हूँ अत: श्री चरणों में सादर प्रणाम निवेदित करते हुए आशीर्वाद की कामना है।

इसी क्रम में श्रद्धेय गुरुवर डॉ. पी.डी. मीना, पूर्व प्राचार्य व डॉ. हेतु भारद्वाज (प्रख्यात, साहित्यकार एवं आलोचक) ने अपने विद्वत्तता पूर्ण सुझाव देकर इस दुरूह कार्य को आसान बनाया और मेरा पथ आलोकित किया। इस अवसर पर मैं उनके हृदय से श्रद्धावनत हूँ।

मैं आभारी हूँ मेरे परिवारजनों के प्रति जिन्होंने मुझे उच्चतर शिक्षा हेतु प्रेरित किया व शैक्षणिक वातावरण प्रदान किया। मेरी प्रेरणा के स्रोत पूज्य पिताजी श्री मोहन सिंह व पूज्य ममतामयी माता श्रीमती रामश्री देवी, जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष अनेक कष्ट सहकर भी मुझे सबकुछ प्रदान किया। इस अवसर पर मैं उनके प्रति सदैव ऋणी रहूँगा।

इसी क्रम में मेरी प्रेरणा की स्रोत मेरी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा देवी (प्रधानाचार्य), रा.उ.मा.विद्यालय, सरमथुरा; अनुज सरनाम सिंह (वरिष्ठ प्रबन्धक, पॉवर ग्रिड, भारत सरकार), रोहित कुमार, निरीक्षक (आयकर विभाग), विकास शर्मा (प्रबन्धक, सेल, भारत सरकार) जीजाजी श्री राजेन्द्र सिंह एवं श्री जगन्नाथ जी, जिन्होंने मुझे पल-पल लक्ष्य की ओर बढ़ने हेतु निरन्तर प्रेरित किया। उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। सृजना के इन्हीं क्षणों में पुत्र राहुल, पुत्री रितिका व भतीजे भाविक, चिराग़, अंशू दादा, अन्ना (अनन्त) की आत्मीयता को मेरा मानस अनुभव करता है। इस अवसर पर उन्हें मेरा शुभाशीष।

मैं हृदय से आभारी हूँ डॉ. जयपाल मीना (पूर्व प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, करौली), डॉ. गोविन्द सहाय मीना, व्याख्याता, हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, हिण्डौन सिटी, डॉ. अशोक शास्त्री (व्याख्याता, हिन्दी), अभिन्न मित्र श्री गोरेलाल मीना (व्याख्याता, हिन्दी) श्री महेन्द्र सिंह मीना (व्याख्याता, हिन्दी), श्री वीरेन्द्र कुमार शर्मा, पुस्तकालयाध्यक्ष, राजकीय कन्या महाविद्यालय, करौली का, जिन्होंने समय-समय पर पुस्तकें उपलब्ध करवाने में व लोकगीत संग्रह करवाने में

सहयोग प्रदान कर शोध प्रबन्ध को सम्पन्न करवाया। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इसके अतिरिक्त उन सभी गुरुजनों विद्वत्जनों, हिन्दी विभाग, राजकीय कन्या महाविद्यालय, सवाई माधोपुर, केन्द्रीय पुस्तकालय, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रति दिल से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है।

मैं हृदय से आभारी हूँ श्री बी.एल. मीना (प्राचार्य), डॉ. ऋषि कुमार शर्मा, (व्याख्याता, समाजशास्त्र), डॉ. गुंजन गर्ग, (व्याख्याता, संस्कृत), डॉ. कुसुम शर्मा, (व्याख्याता, गृहविज्ञान), डॉ. मंजू शर्मा, (व्याख्याता, अंग्रेजी) श्री महेश चंद मीना (सहायक लेखाधिकारी), श्री राजकुमार शर्मा (सहायक कार्यालय अधीक्षक), श्री हेमेन्द्र मीना (वरिष्ठ लिपिक) एवं समस्त महाविद्यालय परिवार, राजकीय कन्या महाविद्यालय, करौली (राजस्थान) का, जिन्होंने इस दुरूह कार्य की सम्पन्नता में सहयोग प्रदान किया तथा मेरा पथ आलोकित किया।

सुरुचिपूर्ण टंकण हेतु विशाल कम्प्यूटर्स को साधुवाद।

।। इति शुभम्।।

हरिकेश मीना
शोधार्थी
व्याख्याता (हिन्दी)
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
करौली (राजस्थान)

अध्याय–प्रथम

राजस्थान का संगठनात्मक ढाँचा – एक परिचय

राजस्थान

शत–शत नमन राजस्थान की पवित्र मनोरम व प्राकृतिक स्रोतों से बनी वसुन्धरा को जो सम्पूर्ण विश्व में मरूधरा के नाम से सुविख्यात है। इस पवित्र भूमि ने वीरता और शौर्य के सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इस धरा पर धधकती अग्नि ज्वालाओं में सर्वस्व समर्पित करने वाली वीरागंनाओं ने जौहर कर मातृभूमि व नारी जाति की प्रतिष्ठा बचाकर संस्कृति को गौरवान्वित किया है। मरूधरा के कण–कण में शौर्य, ओज व बलिदान की प्रेरणा आज भी दिखलाई देती है। वीर भूमि राजस्थान का सांस्कृकि वैभव बेजोड़ है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों, ममतामयी त्याग की मूर्तियाँ और गरिमामयी संस्कृति के इस प्रदेश का भौगोलिक ऐतिहासिक और प्राकृतिक हरी भरी धरती का लावण्य देखते ही बनता है जो अरावली की छोटी–छोटी पहाड़ियों मानो सुन्दरी ने माला धारण कर रखी हो।

1. राजस्थान शब्द का स्वरूप

राजस्थान शब्द को कई अर्थों में इतिहास, संस्कृति व सभ्यता के युग में परिवर्तित नामों से सम्बोधित किया है। 'राजस्थान', 'रायथाण' या 'राज्यस्थान' शब्द कभी राजपूताना के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सामंतयुगीन परिदृश्य का अवलोकन करें तो 'जैम्स टॉड़' विचारक ने 'एनाल्ट एण्ड एक्टिविटिज ऑफ द राजस्थान' शीर्षक से

ग्रन्थ लिखा जिसमें राजस्थान के विविध स्वरूपों की चर्चा की है। कर्नल टॉड ने जो लिखा व राजस्थान (रायथाण) शब्द से स्पष्ट अभिहित होता है। उस समय अजमेर देशी रियासतों में शामिल नहीं था। राजस्थान में छोटी-छोटी रियासतें थी। स्थानों का राजा अर्थात् श्रेष्ठ स्थान के रूप में 'राजस्थान' ने गौरवान्वित किया। इसी अक्षुण परम्परा ने गति पकड़ी और नवीन रूप और अर्थ में रायथाण, राजस्थान, मरूभूमि के कारण मरूथल या मरूस्थल शब्द का प्रयोग भी पढ़ने को मिला है। राजस्थानी मिट्टी का कण-कण शौर्य और वीरता से ओत-प्रोत है, जिसमें एक ओर तो अरावली पर्वतमालाएँ हैं तथा दूसरी और मरूधरा की मृगमरीचिकाएँ प्रभावित किये बिना नहीं रहती हैं। भौगोलिक स्थिति, प्राचीन ग्रन्थों शिलालेखों व इतिहास से सम्बन्धित आख्यानों यह सब विदित होता है।

भौगोलिक परिचय—वीर भूमि राजस्थान का नाम स्वयं एक सांस्कृतिक एकता का परिचायक है। जिसकी परम्पराओं का साक्षी इतिहास है। शौर्य, पराक्रम, त्याग, बलिदान एवं सम्पदाओं की धरती राजस्थान भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में 25.3^0 से 78.17^0 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।[1] इसके उत्तर में पंजाब, दक्षिण में गुजरात, पूर्व में उत्तर प्रदेश, उत्तर-पूर्व में हरियाणा व दिल्ली, दक्षिणी पूर्व में मध्य प्रदेश प्रांत अवस्थित हैं। इसके पश्चिम में पाकिस्तान की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा लगती है। राजस्थान राज्य का लम्बाई चौड़ाई व क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है।

सर्वप्रथम कर्नल टॉमस ने (मिलट्री मैमोयर्स) 1957 में तथा इसके बाद कर्नल जेम्स टॉड ने 1886 ई. के लिए रायथाण शब्द का प्रयोग किया था,[2] जो कि राजाओं तथा उनके स्थान का सूचक है और लोक प्रचलित 'रायथान' शब्द का

---

1. आर.एल. भल्ला — राजस्थान सामान्य ज्ञान, पृ. 23
2. कर्नल टॉड - ऐनल्स एक्टिविटिज ऑफ राजस्थान : भूमि से उदधृत

रूपान्तर है। राजस्थान शब्द का प्रयोग उल्लखित 'मैमोयर्स' से पूर्व के लिखे राजस्थानी भाषा के 'नैणसी री ख्यात' (सं. 1687-1727) और राजरूपक ग्रन्थों में भी देखने को मिलता है। वहाँ यह शब्द राजस्थान प्रांत के रूप में नहीं वरन् राजधानी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, जैसाकि पुरातन ग्रन्थों से ज्ञात होता है—

''सम्वत 1672 राणा अमरसिंह शाहजादे।
खुरम सूँ मिलियो। तहा पछै राणो अमरसिंघ।
उदैपुर आयो तथा पछै राजस्थान उदैपुर हवौ।''[1]

आगे अन्य उदाहरण से भी स्पष्ट होता है-

सप्तपुरी सिरताज क्रत अपवर्ग हूँ समकारण।
उत्तरधाम अजोहया ओपै नाम ग्रामपुर ऊपर
थिरते राजस्थान महि इक इत्र भौम सामर्थ्य।
एक आण अखण्ड खण्डमाण प्राण नवखण्ड।।''[2]

मरूभूमि के संदर्भ में राजस्थान का उल्लेख वैदिक युग से ही होता आ रहा है। ऋग्वेद में (1.35.6) सूक्त में 'मरू' शब्द का प्रयोग हुआ है। महाभारत के वनपर्व में (240-14) तथा वृत्त संहिता में भी स्पष्ट अंकित है। बीकानेर के राजाओं के नाम के साथ जंगल घर बादशाह की उपाधि लगती रही है। कभी इसका नाम कुरु, जांगल, भाद्रेय, जांगल अहिछत्रपुर (नागौर) में थी।[3] गंगानगर के आस-पास का क्षेत्र योयुध्य, अलवर, जयपुर, मत्स्य[4], अजमेर के निकट का क्षेत्र पुष्करायण[5], आबू के

---

1. नैणसी री ख्यात— सरस्वती भण्डार उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पृ. 27
2. नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित राजरूपक, पृ. 10-11
3. शब्दार्थ चिंतामणि, पृ. 991
4. नागरी प्रचारिण पत्रिका, भाग-2, पृ. 333
5. राजस्थान थ्रू ऐजे, पृ. 13

आस-पास का भाग शल्भ प्रदेश (वार्गट)[1] डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, शाकम्भरी (साभ्तू) आदि नामों से सम्बोधित किया है।

स्वतन्त्रता पूर्व राजपूताना नाम से अभिहित था। देशी राज्यों का एकीकरण 25 मार्च, 1948 को अलवर, धौलपुर, करौली, भरतपुर को मिलाकर मत्स्य संघ का निर्माण किया गया।[2] इसमें बाँसवाड़ा, बूँदी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा (भीलवाड़ा) और टोंक को मिलाया गया। 23 मार्च 1949 को उदयपुर को मिलाकर संयुक्त राजस्थान का निर्माण किया। 14 जनवरी, 1949 को बृहत् राजस्थान की घोषणा की गई।[3] नवम्बर, 1956 को अजमेर, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, सिरोही, मेरवाड़ा को मिलाकर वर्तमान राजस्थान का स्वरूप बना। 27 जिले निश्चित किये फिर 32 जिले बने आज 33 जिले हैं। जिनमें प्रतापगढ़ नया जिला शामिल हैं।

अरावली पर्वतमाला :- विश्वविख्यात पर्वतमालाओं में इस पर्वतमाला का नाम प्रसिद्धि अर्जित किये हुए है। यह पर्वतमाला आधुनिक नहीं करोड़ों वर्ष पुरानी है। हिमालय पर्वत से भी पुरानी अरावली पर्वतमाला है। हिमालय उठता गया तथा अरावली पर्वतमाला का कालान्तर में क्षरण होने लगा और पत्थर के टुकड़े-टुकड़े होकर जैसलमेर तक पहुँच गये। जैसा जैसलमेर का सूखा व रेतीला इलाका दिखाई देता है। वस्तुत: ऐसा नहीं था। इस सन्दर्भ में यह दोहा प्रचलित हैं:-

''पग पूगल धड़ कोटड़े उदरज बीकानेर।
भूलो चूको जोधपुर ठावो जैसलमेर।।''

---

1. ओझा : डूंगरपुर राज्य का इतिहास, पृ. 1
2. शर्मा व्यास - राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, पृ. 378
3. वही, पृ. 380

अर्थात् अकाल कहता है, मेरे पैर पूगल (बीकानेर में एक स्थान) में हैं, धड़ कोटडा (एक स्थान) है और मेरा पेट बीकानेर में है, मैं कभी जोधपुर में भी मिल जाता हूँ; लेकिन स्थायी निवास तो जैसलमेर ही है। पश्चिमी राजस्थान के रेत के धोरों में धीरे-धीरे सुधार कर इन्दिरा गाँधी नहर के माध्यम से हरा-भरा राजस्थान बनाने की कयावद शुरू की है। तेल, पेट्रोलियम, जिप्सम आदि के पर्याप्त भण्डार मिले हैं। राजस्थान प्रांत का क्षेत्रफल 3 लाख 42 हजार, 239 वर्ग किलोमीटर है तथा देश का दसवाँ हिस्सा है। यहाँ की वीरता की कहानियाँ बचपन में दादी माँ व नानी माँ द्वारा बच्चों को आज भी सुनायी जाती है।

वर्षा एवं जलवायु—यह तथ्य तो शाश्वत सत्य है, कि भारत में सर्वाधिक वर्षा आसाम के चेरापूँजी में तथा सबसे कम राजस्थान के पश्चिमी भाग बाड़मेर जैसलमेर में होती है। यहाँ की जलवायु आरोग्य एवं कृषि उपज हेतु उत्तम है। यहाँ अन्य प्रान्तों की अपेक्षा राजस्थान में गर्मियों में पहाड़ों व रेतीले भागों की तपन तथा लू चलती हैं आँधियाँ आती है। 'पहाड़ी भागों में लू, पसीना, आँधी आदि का प्रकोप नहीं रहता। ऐसे प्रदेश न अधिक ठण्डे न गर्म रहते हैं।'[1]

ऐतिहासिक संरचना (गठन)

संस्कृति नदी की बहती वह अविरल धारा है जिसके निरन्तर प्रवाह से संस्कृति, सभ्यता व परिवेश का उदय होता है, बढ़ता है और फिर पानी के बुल-बुले की तरह सिमट जाता है। अत: भारतीय संस्कृति व सभ्यता अति प्राचीन है। अत: राजस्थान की ऐतिहासिकता की चर्चा करने से पूर्व संस्कृति का अभिज्ञान अनिवार्य है। राजस्थान को मरूस्थल, रेगिस्तान, रायथाण, राजपूताना आदि नामों से सम्बोधित किया है। धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ देशी रियासतों को एकीकृत कर उनकी सीमाएँ समाप्त कर दी गई। वंश परम्परा का राज खत्म कर स्वतन्त्र शासन पद्धति प्रारंभ हुई।

---

1. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, पृ. 6, 7

राजस्थान प्रदेश का विभिन्न संभागों में गठन हुआ जिनका विवरण निम्नानुसार प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास है—

1. मत्स्य संघ (18 मार्च, 1948)—धीरे-धीरे स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थान में देशी रियासतों का विलय हुआ। अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली (वर्तमान में जिले हैं) के तत्कालीन नरेशों के समक्ष दिल्ली में केन्द्रीय सरकार की तरफ से इनका विलीनीकरण का प्रस्ताव रखा तथा चारों ने स्वीकार भी कर लिया। इस संघ का नाम 'कन्हैया लाल मुशी' के कहने पर 'मत्स्य' रखा गया। इन चारों रियासतों की सीमा 7536 वर्ग मील तथा जनसंख्या 1,83,000 हजार के लगभग थी। तत्कालीन सरकार में खनिज एवं विद्युत मंत्री विष्णु नरहरि गाड़गिल ने उद्घाटन किया। अलवर मत्स्य प्रदेश की राजधानी, धौलपुर नरेश प्रमुख राज, अलवर नरेश उपराज प्रमुख तथा श्री शोभाराम प्रधानमंत्री बनाए गये। युगल किशोर चतुर्वेदी गोपीलाल यादव (भरतपुर) उप प्रधानमंत्री तथा मास्टर भोलानाथ (अलवर) डॉ. मंगल सिंह (धौलपुर) श्री चिरंजी लाल शर्मा (करौली) मन्त्री नियुक्त किये। भरतपुर, धौलपुर और करौली उस समय सूरसेन जनपद के अंश थे जिसकी राजधानी मथुरा थी।[1]

2. राजस्थान संघ—राजस्थान प्रांत के एकीकरण का दूसरा तथा महत्त्वपूर्ण चरण 25 मार्च, 1948 को सम्पन्न हुआ। जब कोटा, बूँदी, बांसवाडा, झालावाड, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, किशनगढ़, टोंक और शाहपुरा रियासतों के शासकों ने मिलकर 'राजस्थान संघ' का नया स्वरूप तैयार किया। साथ ही शुभारंभ गाड़गिल महोदय के करकमलों द्वारा संभव हो सका। राजधानी कोटा को बनाया तथा वहाँ के महारावल व डूंगरपुर के महारावल क्रमश: राजप्रमुख तथा उपराज प्रमुख बनाये गये। प्रधानमंत्री के रूप में गोकुल लाल असावा ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। तत्कालीन प्रधानमंत्री के समय एक नवीन राह निकली उनके मन्त्रपरिषद का गठन हो ही रहा था कि उदयपुर

---

1. डी.आर. आहूजा : राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य, पृ. 3

महाराणा ने तीन दिन बाद ही भारत सरकार के रियासती मन्त्रालय को एक पत्र लिखकर 'राजस्थानी संघ' को नये राज्य में शामिल होने की इच्छा प्रकट की। परिणाम स्वरूप शासन संचालन का कार्य पूर्वत विधिवत् चलता रहा।

3. संयुक्त राजस्थान—उदयपुर रियासत का विलीनीकरण 18 अप्रैल, 1948 को हुआ तथा 'संयुक्त राजस्थान' बना, जिसका उद्घाटन स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने किया। इस क्षेत्र का आकार 29,977 वर्ग मीटर था। जनसंख्या की बात कहें तो 42 लाख 60 हजार 918 थी। उदयपुर राजधानी बनाया। महाराणा भूपाल सिंह राजप्रमुख बने तथा कोटा महाराव भीम सिंह को उपराजप्रमुख व माणिक्य लाल वर्मा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। मोहन लाल सुखाड़िया, भूरे लाल बया, प्रेमनारायण माथुर (तीनों उदयपुर) और बृज सुन्दर शर्मा (बूँदी) मन्त्री के रूप में शामिल किये गये। वस्तुत: वर्तमान राजस्थान का स्वरूप इन्हीं रूपों को लेकर बना तथा राजस्थान सम्पूर्ण एकीकृत राजस्थान का मार्ग प्रशस्त हुआ।

4. बृहत् राजस्थान (30 मार्च, 1949)—संयुक्त राजस्थान के समय तक जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और सिरोही समेत पाँच छोटी-छोटी रियासतें ही बची थी, जो एकीकरण में शामिल नहीं हुई थी। 19 जुलाई, 1948 को केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार 'लावा चीफ शिप' को जयपुर राज्य में शामिल कर लिया गया। जबकि कुशलगढ़ की 'चीफ शिप' बाँसवाड़ा रियासत का अंग बन चुकी थी। उपर्युक्त रियासतों में जयपुर, जोधपुर और बीकानेर अपने को स्वतन्त्र रखना चाहती थी, लेकिन एकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चलने के कारण यह संभव नहीं हो पा रहा था।

स्वतन्त्र भारत के उपप्रधानमन्त्री व रियासती मन्त्री बल्लभ भाई पटेल की इच्छा इन रियासतों को मिलाकर संयुक्त राजस्थान बनाने की थी। वी.पी. मेनन को जयपुर नरेश मानसिंह के पास भेजा, साथ ही जोधपुर व बीकानेर के राजाओं के पास

मसौदा भेजकर स्वीकृति मंगवाली थी। तदुपरान्त 14 जनवरी, 1949 को उदयपुर की सार्वजनिक सभा में पटेल ने जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर रियासतों के बृहत् राजस्थान में सैद्धान्तिक रूप से सम्मिलित होने की घोषणा की।

संवत् 2006 तदानुसार 30 मार्च, 1949 को चैत्रमाह के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि बुधवार को राजस्थान का स्थापना दिवस या नववर्ष की ऐतिहासिक घोषणा या उद्घाटन किया। इस शुभ समारोह में राजा, महाराजा, मन्त्री तथा सेना प्रमुख उपस्थित थे। अलवर, जयपुर, टोंक, जोधपुर, कोटा, बाँसवाड़ा, धौलपुर, शाहपुरा के नवाब कुशलगढ़ के राव हरेन्द्र सिंह, सौराष्ट्र के राजप्रमुख जाम साहब नवानगर, भारत के प्रथम प्रधान सेनापति जनरल करिअप्पा, एयर चीफ मार्शल एस मुखर्जी केन्द्रीय खनिज एवं विद्युत मन्त्री श्री वी.एन. गाडगिल, मणिबेन पटेल, वी.पी. मेनन, गोकुल भाई भट्ट, अजमेर के प्रसिद्ध नेता हरिभाऊ उपाध्याय, जोधपुर के जयनारायण व्यास, मेवाड़ के श्री माणिक्य लाल वर्मा, मत्स्य के प्रधानमन्त्री शोभाराम अन्य प्रमुख कांग्रेस के नेता, उद्योगपति और गणमान्य नागरिक शामिल हुए। इस समारोह में सरदार बल्लभ भाई पटेल ने जयपुर महाराजा श्री मानसिंह को राजप्रमुख तथा कोटा महाराव श्री भीम सिंह को उपजराजप्रमुख तथा राजप्रमुख ने श्री हीरा लाल शास्त्री को नए राज्य के प्रधानमन्त्री की शपथ दिलाई।

5. मत्स्य संघ का विलय (15 मई, 1949)—बृहत् राजस्थान निर्माण करने के बाद मत्स्य संघ शामिल नहीं हुआ था। उसका अस्तित्व अभी भी पृथक् राज्य के रूप में था। अलवर की भी देशी रियासतों के एकीकरण की पहल प्रशंसनीय थी। इसका कारण था कि इसकी दो घटक रियासतें अलवर और करौली तो एक मत से राजस्थान में सम्मलित होने के लिए तैयार थी; लेकिन धौलपुर और भरतपुर इस असमंजस में थी कि वे उत्तर प्रदेश में विलय हों या राजस्थान में। श्री वी.पी. मेनन ने इनके नरेशों से बात-चीत भी की, लेकिन कोई निर्णय नहीं हो सका। परिणाम स्वरूप

शंकर देव की अध्यक्षता में श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंह और आर.के. सिधवा की समिति गठित की गई, जिसने गाँव-गाँव घूमकर तथा सार्वजनिक संस्थाओं की साक्षी एकत्रित कर रियासती मन्त्रालय को राजस्थान के पक्ष में सिफारिश पेश की गई। इन्हीं तथ्यों के आधार पर मई 1, 1949 को भारत सरकार 'मत्स्य संघ' को राजस्थान में मिलाने के लिए विज्ञप्ति जारी कर दी तथा मई माह की 15 तारीख सन् 1949 में 'मत्स्य संघ' को राजस्थान का अभिन्न अंग बना लिया। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि मत्स्य के प्रधान मन्त्री श्री शोभाराम शास्त्री मंत्रिमण्डल में मन्त्री के रूप में शामिल कर लिया गया।

6. सिरोही का विलय (7 फरवरी, 1950)—सभी छोटी-छोटी रियासतों का विलय होने के बाद 'मत्स्य संघ' की तर्ज पर सिरोही का विलय किया, किन्तु गुराज प्रदेश व राजस्थान प्रदेश के राजनेताओं में पर्याप्त मतभेद था। अत: जनवरी, 1950 में सिरोही का विभाजन कर आबू व देलवाड़ा तहसीलों को बम्बई प्रांत तथा शेष भाग को राजस्थान में मिलाने का निर्णय लिया गया। इसकी क्रियान्विति 7 फरवरी, 1950 को सम्पन्न हुई लेकिन आबू व देलवाडा को बम्बई प्रांत (वर्तमान गुजरात) में मिलाने के कारण राजस्थान वासियों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई और 6 वर्ष बाद राज्यों के पुनर्गठन के समय आबू व देलवाड़ा को राजस्थान को देना पड़ा।

7. अजमेर का विलय (1 नवम्बर, 1956)—देश की आजादी के बाद धीरे-धीरे छोटी-बड़ी रियासतों का एकीकरण हुआ और राजस्थान राज्य का विशाल स्वरूप बना किन्तु अभी तक अजमेर शामिल नहीं हुआ। भारत सरकार द्वारा फलजी अली की अध्यक्षता में गठित राज्य पुर्नगठन आयोग की शिफारिशों के आधार पर 1 नवम्बर 1956 को तत्कालीन अजमेर-मेरवाड़ा राज्य को भी राजस्थान में सम्मिलित कर लिया गया। जो कि अब तक केन्द्र शामिल 'सी' श्रेणी का राज्य था और जिसकी पृथक् मन्त्री परिषद् और विधानसभा थी। साथ में मंदसौर (मध्यप्रदेश) की मानपुर

तहसील का सुनेल टप्पा गाँव राजस्थान प्रदेश में शामिल कर लिया गया और राजस्थान के झालावाड़ जिले का सिरौंज उपजिला नये मध्यप्रदेश को सौंप दिया गया। इस प्रकार वर्तमान राजस्थान के निर्माण की प्रक्रिया सात चरणों में सम्पूर्ण हुई तथा 19 देशी रियासतों और तीन चीफशिप वाले क्षेत्रों की जनता (एकाकी) एकतंत्र से मुक्त होकर लोकतन्त्र की मुख्यधारा में शामिल हुई।[1] इसी स्वरूप को अंगीकार करते हुए राजस्थान प्रदेश नाम हुआ जो आज सामाजिक, राजनीतिक एवं वैधानिक रूप लिये हुए है, जिसमें पूर्वी क्षेत्र की व्यापकता में करौली व सवाई माधोपुर एक पूर्वांचल क्षेत्र के लोक साहित्य का मैं विश्लेषणात्मक अनुसंधान कर रहा हूँ।

पूर्वी राजस्थान में करौली—पूर्वी राजस्थान में धौलपुर, सवाई माधोपुर, भरतपुर और करौली जिलें आते हैं। शत-शत नमन राजस्थान के पूर्वांचल के यशस्वी यदुवंशियों की राजधानी करौली व माता कैला देवी को राजपूतों की पुरानी राजधानी माना है जो कि वर्तमान में राजस्थान का 32 वां जिला है। करौली, सवाई माधोपुर, धौलपुर, कुछ भरतपुर के आस-पास का क्षेत्र इसमें आता है। करौली को फारसी में शिकार व शिकार गाह कहते हैं। हिन्दी शब्द कोश में करौली को तलवार बताया गया है। 'भद्रावती नदी के किनारे' जहाँ नैसर्गिक शत्रुतापूर्ण (शेर-भेड़) एक साथ एक ही घाट पर पानी पीते मिले तो राजा अर्जुन देव को यह विचार आना स्वाभाविक था कि यह स्थान निश्चय ही कल्याणकारी होगा। सिंह पौर पर बाहर शिव परिवार खड़े गणेश जी का मंदिर स्थापित कर 1348 में कल्याणकारी नाम रखा, जो कालान्तर में करौली नाम प्रचलित हुआ।[2] राजा अर्जुन देव करौली स्थापना से पूर्व मंडरायल दुर्ग पर काबिज थे। इनके वंशज तिमनपाल जी तिमनगढ़ (मासलपुर) पर 1100 ई. में काबिज थे इसी कारण से करौली का इतिहास तिमनगढ़ दुर्ग से शुरू माना जाता है।

---

1. सीताराम झालानी — राजस्थान नूतन पुरातन सप्तम संस्करण, पृ. 113-117
2. हरिचरण लाल गुप्ता — करौली राजपूतों का इतिहास, पृ. 5

डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने 'राजस्थान का इतिहास' पुस्तक में तिमनगढ़ को त्रिभुरानगरी बताया है।[1]

इन सभी तथ्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन व अन्वेषण करने से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि तिमनगढ़ दुर्ग से करौली के अंतिम महाराज से गणेशपाल तक के शासन काल को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम पूर्व मध्य युग द्वितीय दिल्ली सल्तनत बादशाह तथा तृतीय मुगलकाल के सम्राट् और चतुर्थ भाग 1761 से 1947 का विवरण यानि कि करौली राजपूताने की सभ्य, परिवेश व संस्कृति सिंहावलोकन का यथार्थपरक विश्लेषण।

करौली राजपूताने का समाज दो वर्गों में विभक्त था। पहला उपभोक्ता तथा दूसरा उत्पादक वर्ग। उपभोक्ता वर्ग में शाही परिवार, सरदार अमीर, सरकारी कर्मचारी, व्यापारी आदि को सम्मलित कर सकते हैं। उच्च वर्ग भोगविलास में लिप्त था। कामतृप्ति हेतु नृत्यांगनाएँ, वेश्याएँ व रण्डियाँ मुजरे महफिलें करती थी। पण्डित, ज्योतिषियों व संगीतज्ञों को विशिष्ट सम्मान था। ड्योढियों पर कृपा पात्र व सेविकाएँ रखी जाती थी। करौली के चोबयों का विशेष महत्त्व था। कुँवर (राजकुमार) कुँवरानी (पुत्रवधु) होती थी। ठाकुरों का जोर रहता था। राजा बहादुर का काँसा बहुत प्रसिद्ध था जिसमें मन सवामन के करीब भोज्यपदार्थ रहता था। गरीब ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा प्रचलित थी। मृतकर्मचारी के वारिस को नौकरी देने का प्रावधान था।

दूसरा वर्ग कृषक, व्यापारी, शिल्पकार, कारीगर, दस्तकार था, जो दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तु बनाते थे। कृषक वर्ग अधिकांश राज्य में थे गुर्जर, माली, मीणा, जाट, प्रजापत व काछी जाति का उल्लेख मिलता है। करौली हिण्डौन के पत्थर से कीमती प्रतिमाएँ बनाई जाती थी। सभी जातियों में एकता का भाव था। हिन्दु व

---

1. गोपीनाथ शर्मा — राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 6

मुस्लिम धर्मों का प्रचलन था। करौली परकोटे में 12 दरवाजे थे। धार्मिक दृष्टि से करौली अध्यात्म का केन्द्र था। इसे धार्मिक नगरी के नाम से भी जानते हैं। 400 मंदिर व 15 मस्जिदें थी। कबीर शाह की मस्जिद वजीरपुर गेट के पास है। वस्त्र व आभूषणों का प्रचलन स्वर्ण की अपेक्षा चाँदी के अधिक थे। जयपुर की तर्ज पर करौली में भी गणगौर पूजन यहाँ राज्य की पूजा थी जो राजा मानकपाल की रानी अंगर कंवर ने सर्वप्रथम सन् 1779 में चालू की थी।[1]

पर्दा प्रथा का प्रचलन था। मकानों की अपेक्षा पाटोर (पत्थर) की छाँया थी। यहाँ पर मीणा जो कि खड़ी बोली बोलते थे तथा चोबया (चौबे), जो कि ब्रज संस्कृति के कायल थे। यहाँ के राजाओं का निकास मथुरा के आस-पास होने से ब्रज भाषा का प्रभाव रहा। उस समय राजभाषा उर्दू फारसी थी। सभी त्यौंहारों का प्रचलन था तथा कैला मैय्या का मेला मनाया जाता था तथा राजकीय अवकाश रहता था। फाल्गुन महिने में शिवरात्री (सोरती) को राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश प्रांतों से पशुओं का क्रय-विक्रय का लक्खी मेला लगता था। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार कंस द्वारा वसुदेव के छः पुत्रों को मारने पर सातवें पुत्र बलराम जी को योगमाया ने संकर्षण द्वारा रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया एवं आठवें गर्भ में स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने जन्म लिया। आठवाँ पुत्र स्वयं कंस के काल के रूप में हुए। बिजली के अलौकिक प्रकाश के रूप में माया ने कैला मैय्या का रूप लिया। यह मूर्ति गागरौन के राजा मुकुन्ददास खींची के बाद करौली के राजाओं की आराध्य देवी है।

मदनमोहन मंदिर

पूर्वी राजस्थान के करौली जिला मुख्यालय में स्थित है। यादव कुल परम्परा प्राचीन मानी जाती रही है। श्रीकृष्ण भी इनके पूर्वज रहे हैं। करौली राज्य का मूल पुरुष

---

1. हरीचरण लाल गुप्ता : करौली राजपूताने का इतिहास, पृ. 11

विजयपाल रहा है, जिसने अपनी राजधानी मथुरा से हटाकर मानी पर्वत पर 'विजयगढ़' या 'विजयमन्दिर' के नाम से वि.सं. 1097 में स्थापित की। नल्ल कवि द्वारा रचित 'विजयपाल रासो' इसी विजयपाल से सम्बन्धित था।[1] विजयपाल के पुत्र तंवरपाल या तिमनपाल ने तिमनगढ़ को बनवाया और आस-पास के राज्य जीते। बाद में मण्डरायल और बहादुरपुर के गढ़ों का निर्माण हुआ। यादववंशी निरन्तर मुसलमानों से आक्रान्त होकर इधर-उधर वनों में शरण पाते रहे। जादोवाटी और डाँगी ब्रजभाषा यहाँ की बोलियाँ है। वर्तमान करौली की स्थापना सं. 1405 में महाराज अर्जुनपाल द्वारा हुई।[2] भरतपुर, धौलपुर, हिण्डौन व आस-पास के अचंल में हिण्डौन स्टेशन, भरतपुर, सवाई माधोपुर सब डिवीजन दिल्ली बम्बई रेल मार्ग पर आते हैं। महाराज गोपालसिंह की अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर जयपुर के मदन मोहन जी ने स्वप्न में करौली आने का दृष्टान्त दिया जो कि जयपुर नरेश ने आँखों पर पट्टी बाँधे हुए तीन मूर्तियों में से मदन मोहन जी को पहचानने की शर्त रखी। इस शर्त में करोली के राजा सफल हुए। 1742 में गुसाई सावलदास को साथ लेकर करौली पधारे। 1748 में प्राण प्रतिष्ठा की गई। स्वतन्त्रता पूर्व मन्दिर का प्रवेश द्वार पूर्व दिशा से था। स्वतन्त्रता के बाद भक्तगणों की आवाजाही के कारण पश्चिम में एक अन्य दरवाजा खोल दिया गया। मदन मोहन जी के मन्दिर में विशाल 3 कक्ष है। मुगल कक्ष बन्द रहता है। मन्दिर परिसर में सिंह पोल के बरामदें में उत्तर-पूर्व कोने में केशराय जी, बीच में जगन्नाथ जी एवं दक्षिण पूर्व में आटाव वाले राधा कृष्ण की प्राचीन प्रतिमायें भी स्थित है। भक्तिमयी मीराँ ने भी इनकी आराधना इस रूप में की हैं।

टेढी कटि ढेटी कर मुरली टेढी पात्र लर अटके।
देखत रूप मदन मोहन का, पियत पीयूष न भटके।।[3]

---

1. हरिचरण गुप्ता — करौली राजपूताना का इतिहास, पृ. 6
2. हरिचरण गुप्ता — करौली राजपूताना का इतिहास, पृ. 6
3. करौली राजपूताने का इतिहास, हरिचरण लाल गुप्ता, पृ. 17

दर्शन आरतियों का कार्यक्रम

क्र. सं.	नाम आरती	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु	शीत ऋतु
		वैशाख कृष्ण प्रतिपदा	अश्विन कृष्ण प्रतिपदा	कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा
1.	प्रात: कालीन मंगला	4:00 प्रात:	4:30 प्रात:	5:00 प्रात:
2.	धूप	9:00 प्रात:	9:30 प्रात:	10:00 प्रात:
3.	श्रृंगार	9:30 प्रात:	10:00 प्रात:	10:30 प्रात:
4.	राजभोग	11:30 मध्याह्न 11:30 पट मंगल	11:30 मध्याह्न 12:00 पट मंगल	12:00 मध्याह्न 12:30 पट मंगल
5.	संध्याकालीन बाढ़ा	6:30 सांय	6:00 सांय	5:30 सांय
6.	धूप	6:50 सांय	6:20 सांय	5:50 सांय
7.	सन्ध्या	7:10 सांय	6:40 सांय	6:10 सांय
8.	उल्लई	7:30 से 8 रात्रि	7 से 7:30 रात्रि	6:30 से 7:00
9.	शयन मंगल पट	8:30 रात्रि 9:00 पट मंगल	8:00 रात्रि 8:30 पटमंगल	7:30 रात्रि 8:00 पटमंगल

श्रीकृष्ण भगवान् की महिमा का अद्वितीय सौन्दर्य इन स्तुतियों द्वारा साकार होता दिखाई देता है।

श्रीराधा मदनमोहन जी महाराज की आरती

हे मदन मोहन तेरी आरती गाऊँ। आरती गाऊँ प्यारे तुमको रिझाऊँ।।

मोर मुकुट याके शीश पै सोहे, प्यारी वंशी मेरो मन मोहे।

देख छवि बलिहारी में जाऊँ। हे मदनमोहन तेरी ....

राधा ललिता संग विराजें, शुभ शृंगार सहित ये साजें।
शोभा निरख सदा सुख पाऊँ। हे मदनमोहन तेरी ....
चरणों से निकली गंगा प्यारी, जिसने सारी दुनियां तारी।
उन चरणों के मैं दर्शन पाऊँ। हे मदनमोहन तेरी ....
दास अनाथ के नाथ आप हो, सुख दु:ख जीवन साथी आप हो
उन चरणों को मैं शीश नभाऊँ। हे मदनमोहन तेरी ....
बलदाऊ कौ छोटो भैया, कनुआ कह के बोले मैया
माखन मिश्री को भोग लगाऊँ। हे मदनमोहन तेरी ....
श्री हरिदास के प्यारे तुम हो मेरे मोहन जीवन धन हो।
प्यारी छवि तेरी मन में वसाऊँ। हे मदनमोहन तेरी ....।[1]

अज्ञात कवि केशव जी की मदनमोहन स्तुति जो मदनमोहन जी के मन्दिर में मंगला आरती एवं सुबह, शाम, धूप आरती पर गाई जाती है।

श्रीमदनमोहन प्राण प्यारे श्यामसुन्दर नन्द के।
दु:ख हरण अशरन शरन श्री पद कमल ब्रज चन्द के।।
मो दीन की है लाज तेरे हाथ मोहन ब्रजपति।
मझधार में नैया पड़ी कर पार मोहन जगपति।
संसार के ये खेल तमासे जो कछू सब भूलियो।
नरकों से बचने के लिए वस ध्यान तेरों ही कियो।
इतनी कृपा अब तक करी आगे भी नाथ निभाईयो।
काम क्रोध मद लोभ से जल्दी से नाथ छुड़ाईयों।[2]

× × ×

1. मदनमोहन मंदिर की आरती के समय एकत्रित लोगों से साक्षात्कार द्वारा।
2. अज्ञात कवि केशव : स्तुति व झांला आरती

तुम हो मेरे गुरुदेव हो माता–पिता सर्वस्व हो।।
पतिदेव हो चाहे प्राण जीवन आप ही सर्वज्ञ हो।
कुमती निवारण मदन मोहन नाथ सब संकट हरो।
लक्ष्मी शरण राधा रमन रुक्मणि हरन मम मन वसो।।
यहूँ चिता चित् द्रोपति सुता चित् चोर कहयों प्रभु मोर कहाँ है।
भीष्म द्रोण खडे दोउ देखत खींचत अम्बर दुष्ट महा है।
पांचो पती थकहेर रहे ब्रज नाथ उवारन देर कहा है।
भरी सभा में उघारी करे मेरो चार भुजा को मुरारी कहाँ है।
मंत्र जप्यों नहि तंत्र करयों नहि वेद पुराण सुन्यो न वखान्यों
बीत गये दिन योंही सभी बस मोहन मोहन ही पहचान्यों।
तेरो कहावत तेरो कहावत दूसर कोई में नहि जान्यो।
केतो गरीबन लेउ निभा नहि छोड़ो गरीबन बाज कहानो।
कंचन महल अटारी तजी तज दीन महा कुब्जा सी दासी।
राधा तजी सत् भामा तजी तजि रुक्मणि नारि तजे ब्रज वासी।
बंशी तजी सत् भामा तजी जजि रुक्मणि नारि तजे ब्रज वासी।
टेर सुनी जब द्रोपति की तब दौड के आये द्वारिका वासी।
छोटे–से आप विशाल सी सूरत ये सुत कौन के ठाडे री माई।
मोर पंख हरि के सिर सोहत इन्द्र घटा छा बूंदन आई।
चातुर से हौ चातुर से हौ जादिन मोहन वंशी बजाई।
मानस देह की कौन कहे चार घड़ी जमुना ठहराई।।
बीच समन्दर नाव परी पतवार बिना वहि जात है सारी।
लाज के लंगर टूट गयो तब आशा बढी गोविन्द तिहारी।।
कर छुटकाय दियो मलहा ने डूबत है विन दामन चेरी।
पार लगे तो लगाओ नाथ नाहि लोग हँसेंगे बजाय हतेरी।।[1]

---

1. मुरारी लाल गुप्ता (सेवानिवृत्त शिक्षक) : मदनमोहन की महिमा, पृ. 4

प्रस्तुत दोहों के माध्यम से मैंने आराध्य राधाकृष्ण की अनुपम छटा के माध्यम से मन को विरक्ति से हटाकर आसक्ति कीओर जोड़ा है—

दोहा—

राधा राधा कहत ही, भव बाधा मिट जाय।
कोटि जनम की आपदा, नाम लिये सौं नसाय।।
वृन्दावन वंशी बजी, मोहे तीनों लोक।
वे तीनो माहे नहीं, रहे कौन-से लोक।।
वृन्दावन वानिक वन्यो, भँवर करे गुंजार।
दुलहन रानी राधिका, दूलह नन्दकुमार।।
सीतापति की कोटरी चन्दन जडे किवाड़।
तारे लागे प्रेम के खोलो कृष्ण मुरारि।।
राम झरोखा बैठके सबको मुजरो ले।
जैसी जाकी चाकरी जैसो ही जाकू दे।।
जल में बसै कमोदनी चन्द्र बसै आकाश।
जो तेरे शरणे वसै वाकी तोकू लाज।
दीनदयाल विरद संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।

प्रस्तुत भजन के माध्यम से वात्सल्य रस की अनूठी अनुभूति द्रष्टव्य है—

भजन

यशोदा मैया झूंठो है लाड़ तुम्हारो। मेरी भोरी भैया झूंठो है लाड़ तुम्हारो।
अपनी कोख से जनमो हो तो करती लाड़ हमारो। यशोदा मैया ...
एक को नाम धरो तैने दाऊ, दूजे को कनुआ कारौ-2
तू ना जाने सब कोई जाने बृज को रहवे वारौ। यशोदा मैया ...
दूध-पूत के नाम पै तेरे, पूत बतायो प्यारो-2

ऊनत दूध छोड़कर भागी, लाल धरण पै डारौ। यशोदा मैया ...
राख्यो अनपढ़ बना ग्वारिया, ना चटसार बैठारौ–2
रुखी रोटी बाँध गाँठ में गैयन संग सिधारो। यशोदा मैया ...
दूध–दही घर में बहुतेरे, गाँव में करत बिखरो–2
खावे कूँ दीन्हों होतो तो, काहे कूँ लूटतो प्यारो। यशोदा मैया ...
काली दह में कूद पड़ो, तैने रुधन मचायो भारो–2
तू क्यों ना कूदी जमुना में, कूदो नैनन तारो। यशोदा मैया ...
जादिन बाँध दियो ऊखल से, रोवत रहयो बिचारो–2
राख्यो सब से प्रेम बढायके लाल जगत् उजियारो। यशोदा मैया ...
यसोदा मैया झूठो है लाड तुम्हारो, मेरी भोरी मैया झूठो है लाड़।[1]

प्रस्तुत भजन के माध्यम से विरह वर्णन को प्रस्तुत किया है—

भजन

अरे नागनिया बन के डस गई रे मोहन तेरी बांसुरिया।

1. रिमझिम–रिमझिम मेघा बरसे, चमके बिजुरिया।
   मैं कैसे आऊँ श्याम कि मेरी भींगे चुनरिया। अरे नागनिया ...
2. सास हटीली ननद छबीली, रोके डगरिया।
   मैं कैसे आऊँ श्याम कि मेरी बाजे पायलिया। अरे नागनिया ...
3. मैं यमुना जल भरन गई, मेरे सिर पर गगरिया।
   अरे पीछे से मारी कंकड़िया, मेरी फूटी गगरिया। अरे नागनिया ...
4. बैठ कदम पर बंशी बजाबे, मोह लई सखियाँ।
   अरे मेरो दीयो कलेजा तोड़, जिगर में बस गई बांसुरिया। अरे नागनिया ...
5. घर छोडया घर बार बाबुल, घर छोड़ी मायड़िया।

---

1. साक्षात्कार : गायक धवले मीणा से।

अरे मैंने गोद खिलन्ते बीरन छोड़े हो गई बावरिया। अरे नागनिया ...

6. घर छोडया घर बार ससुर, घर छोड़ी सासुलिया
अरी मैंने पलना झुलन्ते ललना छोड़े हो गई बाबरिया। अरे नागनिया ...।[1]

भजन

मेरे बाँके बिहारी सुध लेना, दर्शन को तरस रहे नैना।
राधामदनमोहन सुध लेना, दर्शन को तरस रहे नैना।

1. पापी कपटी मैं हूँ स्वामी, सब जानत हो अन्तरयामी
अपराध क्षमा कर देना, दर्शन को तरह रहे नैना। मेरे ....

2. मैं निर्बल दीन खड़ा द्वारे, तुम निर्धन के हो रखवारे।
मेरी अरज प्रभु सुन लेना, दर्शन को तरस रहे नैना। मेरे ....

3. माया का फन्दा उलझ रहा और कबहू न तेरा नाम लिया।
जप तप कछु धर्म बने ना, दर्शन को तरस रहे नैना। मेरे ....

4. मेरी बीच भँवर में नाव पड़ी, और तेरे बिन कौन खिवैया है।
मेरी नाव पार कर देना। दर्शन को तरस रहे नैना।
मेरे बाँके बिहारी सुध लेना, दर्शन को तरस रहे नैना।[2]

प्रस्तुत लोकगीत में राधा कृष्ण की होली खेलने के प्रसंगों से यह भजन रोचकता उत्पन्न करता है—

होली

मैया बरसाने में होली है, मोय प्रेम सन्देशो आयो है ...2
मोय प्रेम सन्देशों आयो है, बृषभान सुता ने बुलायो है।
मैया बरसाने में ...

---

1. साक्षात्कार : मुरारीलाल गुप्ता से।
2. साक्षात्कार : मुरारीलाल गुप्ता से।

(1) मेरे लाल तू है भोरो भारो, बरसाने की नारि बड़ी चपला।
मत करियो रार होरी में ...
तोड—ग्वालन कू यों समझायो है। मैया बरसाने में होली है...

(2) पहुँचे बरसाने नन्द नंदन ...2 पहुंचत ही घेर लिये सखीयन ...2
फिर नार बनाई बरजोरी ...2
तोड—चोली लहंगा पहनायो। मैया बरसाने में होलह है...

(3) सुरमा नयनन में डार सखी ...2 नकुअन बिच नथनी पहनाई ...2
कानन कुंडल गल चन्द्रहार ...2
तोड—भुज बाजू बन्द पहनायो है। मैया बरसाने में होली है ...

(4) मेहँदी माहबर बिन्दीया कुमकुम ...2 पायन पैजनिया पहनाई
बृषभान लली ने माँग भरी ...2
तोड—रंग प्रेम का बिछुआ पहनायो है। मैया बरसाने में होली है ...

(5) निज नयनन चौबे छब निरखें ...2 सब देव हँसे देदेतारी ...2
बरसाने अति आनन्द भयो ...2
तोड— बैकुण्ठ यहाँ चल आयो है। मैया बरसाने में होली है ...।[1]

लोकजीवन से जुड़े करौली, सवाई माधोपुर अंचवासियों द्वारा होली के उत्सव पर गाये जाने वाले लोकगीतों को प्रस्तुत किया है—

होली

मैं तो तोही संग होली खेलूंगी ...2

1. लोक लाज को मोय डर नहीं है। दुनियां के बोलन ने लहलऊँगी।
मैं तो तोही संग ...

---

1. लोकवासियों से साक्षात्कार।

2. सास लडो चाहे जिठानी लडो। बलमा के बोलन ने सहलऊँगी।
   मैं तो तोही संग ...
3. नाय चहिये तेरे महल अटारी। मैं तो टूटी झोपड़ी में रहलऊँगी।
   मैं तो तोही संग ...
4. नाय चाहिये तेरे माखन मिश्री। मैं तो सूखी रोटीनने खायलऊँगी।
   मैं तो तोही संग ...
5. पुरुषोत्तम पिया मेरे घर अईयो। मैं तो भक्ति की बतराय लऊँगी।
   मैं तो तोही संग ...।[1]

करौली दुर्ग का महत्त्व

शहर के हृदय स्थल पर बना करौली किला (रावल), धौलपुर, भरतपुर, आमेर के राजमहलों से भी कहीं ज्यादा मूल्यवान एवं सुन्दर है। प्रात: काल एवं सांय काल की बेला में सूर्य की रक्ताभ रश्मियों से प्रतिबिम्बित यह किला अपनी स्वर्णिम आभा से दर्शकों का मन मोह लेता हे। लाल सफेद पत्थरों का यह सामूहिक सौन्दर्य अनोखे आकर्षण की सृष्टि करता है। जिसे बार-बार देखने का मन करता है।

इस किले के चारों ओर पहले धूलकोट था। बाद में फूटाकोट तक कोट बना। कोट फूट जाने से बाद में उसका नाम फूटाकोट पड़ गया। महाराजा गोपाल सिंह ने सर्वप्रथम करौली के चारों ओर लाल पत्थरों से पक्का परकोटा सन् 1730 में बनवाया। जिसमें 40 फीट ऊँची 32 बुर्जे एवं प्राचीर में दीवारों में दो छिद्र (आले) रखे जिनमें एक से दुश्मन की सेना पर तीर एवं गोलियों से प्रहार किया जा सके।

दूसरे छिद्र से शत्रु सेना को आँखों से देखा जा सके व अग्नि वर्षा करने के लिए प्राचीर पर चढ़कर शत्रु को घायल किया जा सके। बुर्जों पर चढ़ने के लिये

---

1. ग्रामीण स्त्री-पुरुषों द्वारा किया गया साक्षात्कार।

सीढ़ियों का निर्माण किया गया। इस परकोटे में 6 दरवाजे एवं 12 खिड़कियाँ रखी गई। जिनके किवाड़ों पर लोहे की कीलों से सुरक्षा कायम की गई है। दोनों एक-दूसरे से जुड़े हुये हैं। इसमें पहले एक रास्ता सिंह द्वार से दूसरा रास्ता मुख्य दरवाजें से होकर था। रियासत समाप्त होने के बाद सिंहद्वार वाला रास्ता बन्द कर दिया गया। बड़े रावल सिंह द्वार से घुसते ही पहले श्रीजी (मदन मोहन जी) मंदिर का चौक आता है। चौक से एक दरवाजे से पौली बरामदा पार कर दहलान दिखाई पड़ता है। जहाँ एक ओर अश्वशाला हाथियों को बांधने के खूँटे गड़े हुये दिखाई देते हैं। इस अंचल में 122 वर्गफीट चौड़ा चबूतरा है। जिसका इतिहास है कि करौली बसने से पूर्व यहाँ मचा (मच्या) मीण रहते थे। जिन्होंने रावल बनाने का विरोध किया। राजा ने चतुराई एवं वीरता से कुँआ खुदवाने हेतु लगे मीणाओं को चबूतरे के अन्दर खड्डे में डालकर चबूतरा पटवा दिया। इस चबूतरे पर अश्वों को दाना डाला जाता था। अश्वशाला के बगल में एक खिड़की निकाली गई। जो शहर जाने हेतु गुप्त रास्ता बनाती है। चौक के बगल में जनानी रावल दिखाई पड़ती है। बड़े दरवाजे के अगल-बगल में कामदारों के कार्यालय बनाये गये। जनानी रावल में दासियाँ (पात्रायें) रहती थीं। इस रावल में मन्दिर था। जिसमें गोपाल जी की मूर्ति (दौलताबाद दक्षिण विजय से लाई गई) रखी गई। बाद में वहाँ से नये मन्दिर में स्थापित की गई।

छोटे रावल को जाने हेतु दरवाजे अर्थात् रंगमहल के नीचे से गुजरना पड़ता था। इस बड़े दरवाजे पर पीतल की चादर एवं कीलें जड़ी हुई है तथा कलात्मक चितराम बना हुआ है। दरवाजे से निकलते ही चौक दिखाई पड़ता है। जहाँ सर्वोच्च शक्ति का वास था। मुख्य दरवाजे से निकलने पर बाहर तोपखाना दूसरी ओर महलों की दीवार के सहारे थाना चौकी के बगल में नाहर कटहरा एवं महलों का पिछवाड़ा दिखाई पड़ता है। आजकल इस रास्ते के बगल में मदन मोहन जी के मन्दिर का रास्ता बना दिया गया है।

पुन: मुख्य दरवाजे पर आते हैं, जहाँ सैनिकों की पहरेदारी हेतु दोनों बगल में क्वाटर्स है। इनके बगल में 'भँवर बैंक' जमादार खाना है। जहाँ कर्मचारियों को वेतन आदि मिलता था। यहीं पर एक चबूतरा है। जिस पर एक लोह की लम्बी छड़ लगी हुई है। राजा शेर का शिकार कर मरे शेर को यहाँ जनता को दिखाने हेतु डालता था। भँवर बैंक के बगल में सीढ़ियाँ ऊपर गेंदधर को जाती है। सीढ़ियों के बगल में त्रिपोलिया गेट है। जिस गेट के आले में एक अंग्रेज का नग्न चित्र बना है। किवाड़ों पर पीतल की कीलों व चद्दर चढ़ी है। अन्दर नजर बगीची दिखाई पड़ती है। नजर बगीची के चारों ओर घूमकर महलों की बनावट को देखकर ब्रिटिश सरकार के कर्नल कोंटिग ने कहा "In the same respect the linest building of the fort" यह दिल्ली शिल्प पर बना हुआ है। कहते हैं इसे देखकर दिल्ली बादशाह नाराज हो गया। बाद में गोपाल सिंह राजा ने अपनी चतुराई से बादशाह की नाराजगी दूर कर दी।

इस प्रकार बगीची से अन्त:पुर में आने व मानिक महलों में जाने हेतु कई रास्ते हैं, जो किवाड़ों द्वारा ढँके हुये हैं। नजर बगीची में एक सीढ़ीनुमा कुण्ड है, जिसमें फब्बारा लगा हुआ है। कुण्ड में रंग-बिरंगा पानी भरा रहता था। पानी के निकास के लिये पाईप लाइन अन्दर डली हुई थी। जो शहर के बाहर निकल जाता था। नजर बगीची के सामने गोपाल मन्दिर, बारहदरी जिसमें 22 खम्बे है। जिसमें उत्कृष्ट चितराम बारीक बेलबूटे बने हुये व सामने राजा भँवर पाल का फोटो जिसमें दो शेरों पर हाथ रखे बैठा हुआ तथा 4 बड़े शीशे लगे हुये थे। जिसे दीवान-ए-आम कहा जाता है। यहाँ पर राजा फरियादी की फरियाद सुनता था। यही दरबार लगाता था व बाहर नजर बगीची में न्यौछावर भेंट होती रहती थी। होली के अवसर पर जनता विशेष लुफ्त उठाती थी।

मानिक भवन, गोपाल अखाड़े, बारूद खाना व सुरंग हेतु गेलेरी से जाना पड़ता है। गैलेरी के बाद चौक दिखाई पड़ता है, जहाँ बहुत नरम घास थी। बगल में

फौज कचहरी, किरकिरी खाना यानि चिड़ियाघर एवं बगल में मुरली मनोहर जी का मन्दिर जहाँ प्रतिवर्ष अन्नकूट होता था, जिसे जनता देखने जाती थी।

चौक के बीच में टेडा कुआँ के सामने गोपाल अखाड़ा है। जिसके अन्दर देखने पर अब भी नरम–नरम मिट्टी मानो अभी गोठ् लगाई हो मिलती है। अखाड़ा चारों ओर से बन्द है। दीवार पत्थर पर जालीदार जिसमें पशु–पक्षियों, फूल बेलों की बेशकीमती शिल्प देखने को मिलती है। अखाड़े में मुगद्र अब भी रखे हुये हैं।

गोपाल अखाड़े के ऊपर तीसरी मंजिल पर सफेद पत्थरों द्वारा निर्मित मानिक भवन है। जिसमें गढ़वाल शिल्प में लकड़ी का गुम्बज जिस पर सोने का कलश था। इतनी ऊँचाई पर है कि पूरा करौली शहर दिखाई देता हैं। इस भवन में जो चितराम है। उसमें बिलायती मेमों के इंगलिश कलर में अर्धनग्न भित्ति चित्र है। जो उत्तम चित्रकला व दस्तकारी की मिसाल है। इससे राजा मानिक पास के कला एवं विलासिता प्रिय होने का संकेत मिलता है। गोपाल अखाड़े के बगल में मकानाते हैं, जिसमें एक जाली से सुरंग दिखाई देती है। यह सुरंग शिकार गंज तक जाती है। जो शहर से 3 मील दूरी पर है। यह आजकल बन्द है। पुन: नजर बगीची आते हैं।

यहाँ से कई रास्ते सीढ़ियों द्वारा महलों की ऊपर मंजिलों पर जाते हैं जिसमें जनानी ड्योड़ियों, ज्ञान बँगला, शीशमहल, मोतीमहल, हर विलास, रंगमहल आदि हैं। ज्ञान बँगला में राजा भँवर पाल ध्यान जप करता था। प्रात: विद्वानों से धर्म की चर्चा करता। अन्त:पुर में रानियों से मिलता। शीशमहल जहाँ सोने चाँदी के पानी का काम व काँच के टुकड़ों से बना हुआ है। दीवारों पर बड़े–बड़े शीशे लगे हुये थे, जो आज भी देखने में काबिले तारीफ है। यहाँ निजी गुमट थी, जिसमें रानियों के जेवरात रहते थे। महाराजा निवास, खुली छतें, प्रेक्षगृह, गेंदघर (जहाँ राजा बेंडमिन्टन खेला करता था) आकर्षक था। इन सभी महलों में पत्थर की जालियाँ, फूलबूटें, पक्षियों, जानवरों की आकृति की जालियाँ, कमान दार झरोंखे (इन में भी कई उपखण्ड)

खम्बों में गणितीय बरामदें सीढ़ियाँ बनाई गई, जिससे एक से दूसरे महलों में आसानी से आया जा सकता था। महलों में गुप्त वार्ता करने अन्दर ही अन्दर किसी को भी बुलाया जा सकता था। भीषण गर्मी में भी शीतल हवा के झोखें इन महलों में आते रहते हैं। जिससे थकान दूर हो जाती है।

रंगमहल

दोनों रावलों को जोड़ते हुए बड़े दरवाजे के ऊपर रंगमहल है। इसका निर्माण राजा मदन पाल ने करवाया। इसमें सुंरगनुमा गेलेरी बड़े सुन्दर झरोखे एवं कमरों का निर्माण है। जिसमें बेल बूटे चमकीली कौडी पालिश फर्श व छत की दीवारों पर काँच की सुन्दर पच्चीकारी सुनहरी कलम का मनमोहक काम किया हुआ है। काँच के टुकड़े इस प्रकार लगाये गये हैं कि देखने वाले के फोटो ही फोटो दिखाई पड़ते हैं। जो अनूठे सौन्दर्य व कला प्रेम का परिचायक है। इसकी तुलना आमेर के शीश महल से करे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

काल के थपेड़ों ने इस दुर्ग को जर्जर कर दिया है, परन्तु इसका स्थापत्य आज भी पर्यटकों को उनकी जिज्ञासाओं के लिये आकर्षित करता है। राजा रानियों के दर्प से देदीप्यमान इन राज प्रसादों को आज काल की कालिमा ने घेर लिया है। रियासतों का विलय करते वक्त भारत सरकार ने यह घोषणा की थी कि रियासतों के स्वरूप को खराब नहीं होने दिया जावेगा। आज तब पुरातत्व में सभी दुर्गो का समावेश कर संरक्षण किया जा रहा है। करौली के इन राजप्रसाद पर कोई ध्यान नहीं दिया है। कई सौ वर्षो के शानदार इतिहास एवं गौरवशाली संस्कृति का प्रतीक करौली किला वक्त की किताब के मध्य रखा एक फूल है जिसकी खुशबू बनाये रखना सरकार/रियासत के वासियों का परम कर्त्तव्य है।

अप्रैल 1902 वायसराय दिल्ली का खलीता आया। जिसमें एडवर्ड सप्तम की ताजपोशी पर दिल्ली बुलाया गया। खलीता पर नीचे लिखा –''योर हाइनेस का

मुखलिस दोस्त कर्जन''। महाराजा ने दिल्ली जाने की स्वीकृति दी। दिनांक 25.12.1902 को महाराजा 500 हमराहियों के साथ स्पेशल ट्रेन से दिल्ली पहुँचे। स्वागत के लिये प्लेटफार्म पर पोलिटिकल एजेन्ट मौजूद थे। 17 तोपों की सलामी दी गई। वायसराय भी दूसरी ट्रेन से उतरे। 31 तोपों की सलामी दी गई। उतरते ही महाराज से हाथ मिलाया। इतनी देर में एक स्पेशल ट्रेन आ गई, जिसमें देयर रॉयल हाईनेसेज ड्यूक पधारे। जिनसे वायसराय ने हाथ मिलाया। सभी राजा अपने-अपने हाथियों पर बैठकर सर्किट हाउस जहाँ राजपूताने के अन्य राजाओं की ठहरने की व्यवस्था थी पहुँच गये। फिर तोपों की आवाजें आने लगी। वसन्त हाथी जिस पर करौली महाराज बैठे हुये थे। वह डरा नहीं, हिला नहीं। बाकि राजाओं के हाथी डर गये। राजा के हाथी पर जबकि दो जीवित शेर अगल-बगल में जिन पर राजा का हाथ रखा था फिर भी हाथी तोपों की आवाज से नहीं डरा। ये नजारा देखकर ड्यूक वायसराय दंग रह गये। वायसराय ने महाराज से बाद में हाथी माँगना जिस पर चौधरी जी बोल पड़े महाराजा का हाथी बहरा है सुनता नहीं है। बस हाथी वायसराय ने नहीं लिया। इस प्रकार महाराजा हाथी को बचाकर करौली ले आने में सफल रहे। अगले दिन मिलिट्री की परेड़ देखने शरीक हुये। जहाँ दीवाने-ए-आम में आनर्स बाँटे गये। महाराजा करौली को के.सी. का तमगा ड्यूक ऑफ कनाट ने पहनाया। बाद में दरबार समाप्ति की घोषणा की गई।

सभी तहसील मुख्यालयों पर अस्पताल, प्राइमरी स्कूल, डाकघर, जनाने अस्पताल। सुपरिटेन्डेन्ट जेल, अपील ज्यूडीशियल मेम्बर करौली में नगर पालिका स्थापित की। करौली महलों में ज्ञान बँगला, जनानी रहवास शीश महल व गेंद घर आदि बनवाये। नगाड़ खाना किले से गुप्त सुरंग बनवाई। आप दिनांक 3.8.1927 श्रावण सुदी 6 सम्वत 1884 में गोलोक वासी हो गये। राजा भले मर गये परन्तु

उनका इतिहास कभी नहीं मरता। शव की क्रिया कर्म करते वक्त घोड़ों व हाथियों तक ने रुदन किया। यहाँ तक कि रियाया कह उठी–

लूट लिया भँवर ने उपवन।
लुटी न लेकिन गंध फूल की।।
खोता कुछ भी नहीं यहाँ पर।
केवल जिल्द बदलती पोथी।।

सिटी पैलेस

यह महल करौली का आकर्षण है जिसका निर्माण अर्जुनपाल ने 14वीं शताब्दी में करवाया। इसके वर्तमान स्वरूप का श्रेय राजा गोपाल सिंह को जाता है। लाल बलुआ पत्थर से बने इस महल में सफेद पत्थरों का भी खूबसूरती से प्रयोग किया गया है। दीवाने–ए–आम की जालियाँ और रंगीन काँच से बने झरोखे दृष्टव्य हैं। 1950 में महल मदनमोहन ट्रस्ट को सौंप दिया गया।[1]

पशुमेला

करौली में फरवरी माह में आयोजित पशु मेले में पूर्वी राजस्थान ही नहीं वरन् सम्पूर्ण प्रदेश के पशुओं का क्रय–विक्रय होता है। इस मेले में पशु दौड़ का आयोजन भी किया जाता है। नागौरी माला व जोधपुरी पीतल विशेष रूप से मेले में मिलती है। करौली, सवाई माधोपुर, धौलपुर, भरतपुर, हिण्डौन क्षेत्र ही नहीं वरन् अन्य प्रदेश के लोग भी मसाला खरीदने आते हैं।

कैलादेवी अभयारण्य

यह अभयारण्य करौली जिला मुख्यालय से 23 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में स्थित है। इसकी सीमा कैलादेवी मंदिर के समीप से प्रारम्भ होकर कर्णपुर, माधोपुर के अभ्यारण्य तक जुड़ी हुई है। यहाँ मुख्यतया नीलगाय, तेंदुए, सियार, किंगफिशर व

---

1. करौली जिला दर्शन। (विकीपीडिया से उद्धृत)

कभी-कभी बाघ भी दिखाई देते हैं। पर्यावरण की दृष्टि से स्वच्छ व हरा-भरा अभयारण्य है।

तिमनगढ किला (मासलपुर)

पूर्वी राजस्थान के करौली जिला मुख्यालय से 40 किलोमीटर दूर अवस्थित है। इस किले का निर्माण 12वीं शताब्दी के मध्य हुआ है। अपने काल में तिमनगढ़ स्थानीय सत्ता का केन्द्र था। 1196 में यहाँ के राजा कुँवरपाल को हराकर मौहम्मद गौरी और उनके सेनापति कुतुबुद्दीन ने इस पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। किले की विशेषता यह है कि मुख्यद्वार पर मुगल स्थापत्यकला का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। इसकी खण्डहर दीवारें, देवालय तथा बाजार अपने मौलिक रूप को प्रकट करते हैं। किले से सागर तालाब (झील) का विहंगम दृश्य भी दिखाई देता है, जिसके सन्दर्भ में एक किंवदंती है कि तालाब में पारस पत्थर है।

पौराणिक दन्तकथाओं के माध्यम से अंचलवासियों ने छोटे-छोटे लोकगीतों का निर्माण किया है। इन गीतों की छटाएँ अविरल धारा से प्रदेशवासियों में प्रेमभाव का संचार करती है।

कैलादेवी का लक्खी मेला

करौली जिला मुख्यालय से 23 कि.मी. दक्षिण में पठार एवं नदियों से घिरी तपोभूमि कैला मैय्या के मन्दिर में विशाल प्रांगण में भक्तों का जमावड़ा होता तथा भक्तगण उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, आगरा, दिल्ली एवं गुजरात व आस-पास के सभी क्षेत्रों से चैत्र माह की कृष्ण द्वादशी से शुक्ल पक्ष की द्वादशी तक मेला भरता है। सामन्ती शासन में राजा-महाराजा, सैनिक पदाति सभी दर्शन के लिए आते रहे हैं, देवी माँ के जागरण भी होते हैं तथा जयकारों से पूरा परिसर गूँज उठता है।

कैलामैय्या की आरती की झलक दृष्टव्य है—

आरती श्री कैलाजी

जय अम्बे गौरी, मैया जय कैला गौरी।।टेक।।
माता जी को सब जग ध्यावे ब्रह्मा विष्णु हरी।
जय अम्बे गौरी ॥
माँग सिन्दूर विराजत टीको मृग मद को।
उज्ज्वल से दो नैना चन्द्रवदन नीको।।
जय अम्बे गौरी ॥
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर साजे।
रक्त पुष्प की माला कण्ठ मधु साजे।
जय अम्बे गौरी ॥
केहरि वाहन राजत खड्ग खपर धारी।
सुर नर मुनि जन सेवत, तिनके दुख हारी।।
जय अम्बे गौरी ॥
कानन कुण्डल शोभित नासाग्रे मोती।
कोटिक चन्द्र दिवाकर, राजत सम ज्योति।।
जय अम्बे गौरी ॥
शम्भु निशम्भु बिडारे महिषासुर घाती।
धूम्र विलोचन नैना निशदिन मदमाती।।
जय अम्बे गौरी ॥
चौंसठ योगिनि मंगल गावत नृत्य करत भैरों।
बाजत ताल मृदंग और बाजे डमरू।।
जय अम्बे गौरी ॥
भुजा चार अति शोभित खड्ग खप्पर धारी।
मन वाँछित फल पावै सेवक नर–नारी।।
जय अम्बे गौरी ॥

कञ्चन थाल विराजत अगर कपूर बाती।
धोलागढ़ में राजे कोटि रतन ज्योती।।
जय अम्बे गौरी ॥
माताजी की आरती निशिदिन जो ध्यावै।
कहत सदानन्द स्वामी, मन वांछित फल पावै।।
जय अम्बे गौरी ॥

प्रस्तुत आरती के माध्यम से लोकजीवन में नित्य की जाने वाली आरती में नवदुर्गा रूप की साधना प्रकट होती है—

आरती श्री अम्बे जी

अम्बे तू है जगदम्बे काली, जय दुर्गे खप्पर वाली
तेरे ही गुण गावें भारती।
ओ मइय्या हम सब उतारें तेरी आरती।।
तेरे जगत् के भक्त जनों पै भीड़ पड़ी है भारी
मइय्या भीड़ पड़ी है भारी।
दानव दल पर टूट पड़ौ माँ करके सिंहसवारी।।
सौ-सौ सिंहों सी तू बलशाली अष्ट भुजाओं वाली
दुष्टों को तुम ललकारती
औ मय्या हम सब उतारें तेरी आरती
अम्बे तू है जगदम्बे .....।।
माँ-बेटे का इस जग में है बड़ा ही निर्मल नाता,
मइय्या बड़ा निर्मल नाता
पूत कपूत सुने बहुतेरे, माता भई न कुमाता

सब पर करुणा बरसाने वाली, विपदा मिटाने वाली
मैया भँवर से तू उबरती
ओ मइय्या हम सब उतारें तेरी आरती।
अम्बे तू है जगदम्बे ....।।
नहीं माँगते धन और दौलत न चाँदी ना सोना
मइय्या ना चाँदी ना सोना
हम तो माँगे माँ तेरे मन का एक छोटा-सा कोना
सब पर अमृत बरसाने वाली मन को हरसाने वाली
सतियों के सत् को सँवारती
ओ मय्या हम सब उतारें तेरी आरती।
अम्बे तू है जगदम्बे ...।।
रतन जड़ित सिंहासन बैठी है जग राजदुलारी
मइय्या है जग राजदुलारी
माथे-मुकेट कान में कुण्डल, शोभा अद्‌भुत न्यारी
न्यारी शोभ है अपरम्पारी वरनी न जाये दुलारी,
भारी से संकट टारती
ओ मइय्या हम सब उतारें तेरी आरती
अम्बे तू है जगदम्बे ...।।
घनन-घनन होय भवन में लाल ध्वजा मन्दिर में
चौमुख दिवला जले आँगन में करे बढ़ोत्तरी धन में
तोकूँ ध्यावत नर और नारी, करके तेरी अज्ञारी
कारज बिगड़े सँवारती

ओ मइय्या हम सबे उतारें तेरी आरती

अम्बे तू है जगदम्बे ...।।

पान फूल सब लेकर आती श्रद्धा भक्त चढ़ाती

मइय्या श्रद्धा भक्त चढ़ाती

गाती हूँ मैं भेंट तुम्हारी खुश हो जा मेरी महतारी

भक्तन की तू रखवाली लक्ष्मी से डर भर डारती

ओ मइय्या हम सब उतारें तेरी आरती

अम्बे तू है जगदम्बे ...।।

छोटा-सा परिवार हमारा इसे बनाये रखना

मइय्या इसे बनाये रखना

इस बगिया में सदा खुशी के फूल खिलाती रहना।

अम्बे तू है जगदम्बे ...।।

सदा भवानी दाहिने सन्मुख रहत गणेश।

पाँच देवरक्षा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश।।

माँ दाता हम मंगला माँ को दियो खायँ।

माँ सी दाता छोड़के मांगन किस घर जायँ।।

मइय्या इतना दीजियो जामें कुटुम्ब समाय।

साधु ठाड़े द्वार पर वो भी न भूखा जाये।।

बैल चढ़े शंकर मिले, गरुढ़ चढ़े भगवान्।

सिंह चढ़ी दुर्गे मिले, हो गये पूरन काम।।

माता के दरबार में टनटन जी घनघोर।

जाती ठाड़े द्वार पर दर्शन दीजो मोय।।

मानव की भाँति देवी-देवताओं को भी भोजन, शयन व अन्य प्रकार की पूजा का विधान है जो लोक संस्कृति की झलक को प्रकट करता है। यहाँ पर देवी के भोग के समय की जाने वाली आरती को प्रस्तुत किया गया है—[1]

भोग की आरती

रुचि रुचि भोग लगाओ री मेरी मैया
प्रेम से भोग लगाओ मेरी कैला मैया
पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
चारों दिशा से चली आ ओरी मेरी कैला मैया
रुचि-रुचि .....
रूखा सूखा भोग हमारों, माँ करो गुजारो
जइये प्रेम से खाओ री मेरी कैया कैला मैया
रुचि-रुचि .....
वीणा बतासे का भोग हमारों
पचमेल मिठाई का भोग तुम्हारो
जइये प्रेम से पायो री मेरी मैया
रुचि-रुचि .....
आप भी खाओ नौ बहिनों को खिलाओ
शेख बचे कट वायो री मेरी मैया
रुचि-रुचि .....
ऐसो भोग लगाओ मेरी कैला मैया
सब अमृत है जाये री मेरी कैला मैया
रुचि-रुचि .....

1. साक्षात्कार : पुजारी श्री कैलादेवी मंदिर से किया।

राजस्थान के करौली जिले में कैलादेवी स्थान के महत्त्व को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि अंचलवासियों की देवी-देवताओं में असीम श्रद्धा है। वह नवग्रह देवताओं को भी आरती द्वारा प्रसन्न कर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं तथा लोगों के सुखी जीवन एवं दीर्घायु की मंगल कामना करते हैं। शनिदेव जी की आरती दृष्टव्य है—

श्री शनिदेवजी की आरती

जय जय श्री शनि देव भक्तन हितकारी।
सूरज के पुत्र प्रभु छाया महतारी॥ जय जय..
श्याम अंग वक्र दृष्ट चतुर्भुज धारी।
नीलाम्बर धार जाप गज की असवारी॥ जय जय..
क्रीट मुकुट शीश रजित दिपत हे लिलारी।
मुक्तन की माला गले शोभित बलिहारी॥ जय जय..
मोदक मिष्ठान पान चढ़त हैं सुपारी।
लोहा तिल तेल उड़द महिषी अति प्यारी॥ जय जय..
देव दनुज ऋषि मुनि सुमरित नर नारी।
विश्वनाथ धरत ध्यान शरण हैं तुम्हारी॥ जय जय..

देवनगरी करौली में वैसे तो बारह महिनों सत्संग होते हैं किन्तु चैत्र के नवरात्रा का विशेष महत्त्व है। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता है। अंचल के नर-नारी भक्तिमय संगीत की तान में मदमस्त हो जाते हैं तथा अन्य प्रदेशों से आने वाले भक्तगण भी उनके साथ भक्तिभाव में तिरोहित हुए बिना नहीं रहते। सम्पूर्ण नगरी लांगुरियों व जगरातों से पूरित होकर आरती को महाआरती का रूप दे देती है—

एक लाँगुरियाँ की झलक

गिनी के बीच अकेलो लाँगुरिया

छोटी जोगनी यो कहे काँटा लाय दे मोय

× × ×

दै दै लम्बो चौक लगुरियाँ बरस दिना आमेंगे।

मैया नवरात्रों में

टेक—मैया नवरात्रों में जब धरती पे आती है-2

किसको क्या देना है-2 ये सोच के आती है।

पहले नवरात्रे में, माँ सबकी खबर लेती है

दूजे नवरात्रे में, अपने खाते में लिख लेती है

तीजे नवरात्रे में, बात आगे बढ़ाती है।। मैया .....

चौथे नवरात्रे में, माँ आसन लगाती है

पाँचवे नवरात्रे में, आ गई हूँ बताती है।

छठे नवरात्रे में, सबको दर्शन कराती है।। मैया .....

सातवें नवरात्रे में, खोल देती खजाने हैं

आठवें नवरात्रे में, लग जाती लुटाने है

नवे नवरात्रे में, दोनों हाथों से लुटाती है। मैया .....

दसवें दिन माँ की विदाई जब आती है

सारे धरती के लोगों की जब आँख भर आती है

भक्तों फिर आऊँगी, वादा करके चली जाती है। मैया .....

राजस्थान प्रदेश के पूर्वांचल के पवित्र तीर्थों में कैलामैय्या का अपना महत्त्व है। यहाँ भक्तगण बारहमास दर्शनार्थ आकर अपने को धन्य मानते हैं तथा आशीर्वाद ग्रहण करते हैं किन्तु श्रावण मास की हरियाली का अनूठा संगम दृष्टिगोचर होता है—

सावन में बरसे बदरिया

सावन की बरसे बदरिया माँ की भीजे चुंदरिया
माँ की .....
लाल चोला मैय्या का चमचम चमके
माथे की बिंदिया दमदम दमके
हाथों में झलके मुंदरिया।
माँ की .....
छाई हरियाली झूमे अम्बुआ की डाली
होके मतवाली कूके कोयलिया काली
बादल में कड़के बिजिरया।
माँ की .....
ऊँचा भवन है तेरा ऊँचा है डेरा
कैसे चढूँ पाँ फिसले हैं मेरा
टेढ़ी मेढ़ी है डगरिया।
माँ की .....
काली घटा पानी बरसा के लाई
झूला झूले मेरी वैश्नो माई
भक्तों पै माँ की नजरिया।
माँ की .....

सवाई माधोपुर एक परिचय

पूर्वांचल की तपोभूमि में सवाई माधोपुर पूर्वी राजस्थान का गढ मुक्तेश्वर नाम से सुविख्यात राणा हम्मीर की नगर है, जिसके चारों ओर हरियाली की घटाओं से

यहाँ का वातावरण देखते ही बनता है। सवाई माधोपुर को बसाने का श्रेय जयपुर नरेश सवाई माधोसिंह प्रथम (1650–1667 ई.) को है।[1] सवाई माधोपुर जिले में पूर्वी राजस्थान के करौली रियासत और जयपुर राज्य की तीन निजामतें, जिनमें सवाई माधोपुर, गंगापुर तथा हिण्डौन सम्मिलित थी। वर्तमान में इस जिले में गंगापुर, बामणवास और बोली एवं माधोपुर उपखण्डों में विभाजित है।[2]

इतिहास प्रसिद्ध व पौराणिक आराध्यदेव त्रिनेत्र **गढ़गणेश** का विश्व विख्यात मंदिर है जो कि अतिप्राचीन है। यहाँ सवाईमाधोपुर ही नहीं, सम्पूर्ण राजस्थान के नर–नारी प्रथम देव के रूप में मानते हैं तथा मांगलिक कार्य (विवाह) निमन्त्रण डाक द्वारा/व्यक्तिगत प्रथम निमन्त्रण देने के बाद ही शुभकार्य प्रारम्भ करते हैं। ऐसी राजस्थानी संस्कृति की पुरातन परम्परा है जो आज भी प्रत्येक समाज द्वारा अनुकरणीय है।

सवाई माधोपुर को लेकर पुरातन इतिहास के प्रमाण मिलते हैं। यह इतिहास प्रसिद्ध रणथम्भोर दुर्ग सवाई माधोपुर से 13 किलोमीटर घने जंगलों में अवस्थित है। दुर्ग के तीनों ओर एक विशाल खाई अवस्थित है, जो जलयुक्त है। यहाँ का किला सुदृढ़ है तथा परकोटा भी मजबूत है। नामकरण में पर्याप्त भिन्नताएँ दृष्टिगोचर हैं। इस दुर्ग का निर्माण चौहानों द्वारा किया गया है। जनश्रुति के अनुसार इस दुर्ग के समीप पद्मला सरोवर था, जिसके तट पर पद्म ऋषि ने तपस्या की। दो प्रतिभाशाली राजकुमार जयन्त और रणधीर के शिकार खेलने के समय ऋषि की उपस्थिति में इस दुर्ग का नाम रणस्तम्भपुर रखा।[3]

---

1. जिलेवार सांस्कृतिक सर्वेक्षण, जवाहर कला केन्द्र जयपुर, 1995
2. जिलेवार सांस्कृतिक सर्वेक्षण, जवाहर कला केन्द्र जयपुर, 1995
3. जिलेवार सांस्कृतिक सर्वेक्षण, जवाहर कला केन्द्र जयपुर, 1995

भारतीय संस्कृति की परम्परा के अनुसार किसी भी कार्य का शुभारम्भ मांगलिक स्तर पर गणेश वन्दना से किया जाता है। अत: मैं भी उसी परम्परा के अनुरूप वन्दना करता हूँ—

आरती
श्री गणेश जी

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा।
माता जाकी पार्वती पिता महादेवा।
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा, लडुवन को भोग लागे संत करे सेवा। जय...
एक दन्त दयावंत चार भुजाधारी, मस्तक पे सिंदूर सोहे मूसे की सेवारी। जय ...
अन्धेन कू आँख देत कोढिन को काया। बाँझन को पुत्र देत निर्धन को माया। जय...
दीनन की लाज राखो, शम्भु सुतवारी, कामना को पूरी करो जग बलिहारी। जय...[1]

गीत गणेश जी

सब देवों ने फूल बरसाये, मेरे आज गजानन्द आये।
देवा कौन तुम्हारी माता, और कौन पिता तुम्हारे।
देवा गौरा हमारी माता, भोले बाबा पिता हमारे, मेरे आज गजानन्द आये।
देवा काहे के वस्त्र तुम्हारे, काहे को तिलक लगाए।
देवा रेशम के वस्त्र तुम्हारे, और चन्दन तिलक लगाए।
देवा काहे की पूजा तुम्हारी, और काहे का भोग लगाए।
देवा अगर कपूर की पूजा, लडुवन भोग लगाए।
देवा काहे की झारी तुम्हारी, और कोनस पीवन हारे।
देवा ताँबे की झारी तुम्हारी, गजानन्द पीवन वारे, मेरे आज गजानन्द आये।[2]

---

1. साक्षात्कार, गणेश मंदिर पुजारी से।
2. साक्षात्कार, गणेश मंदिर पुजारी से।

पूर्वी राजस्थान के दक्षिण पूर्व में सवाई माधोपुर जिले की इन्द्रगढ़, जो कि पवित्र पौराणिक देवस्थान है, जिसमें अंचल के ही नहीं सम्पूर्ण भारत के नर–नारी यहाँ आकर माता के माथा टेक कर मन्नतें माँगते हैं, जिसे बीजासनी नाम से जाना जाता है—

माता बीजासनी

सांची सांची है बीजासनी मेरी माय, इन्दरगढ़ बाँको है
बाँके बाकी खारी है, खोर बीच मड़ त्यारौ, सकल मड़ त्यारौ है।
वे तो राजा गणेश पाल आवै, तेरी जात जंगिया ने त्यारौ, भरोसो मैया त्यारौ है।
वे तो सब रानी लागे त्यारे पाँव, चुड़ला में चित त्यारी
नैनन को सुरमा त्यारौ, माथे की बिन्दिया त्यारी,
पैरन के बिछुआ त्यारे, गोद जडूला त्यारौ है, भरोसो मैया त्यारौ है।
साँची साँची है बीजासनी मेरी माय।

माता बरवासन

इतरी अमर गढ़, इतरी गोठरा, तौ बीच सकल मड़ त्यारौ वरवासन,
एक बरवासन, एक लासन बाकी खोर घणी।
याही रै अमरगढ़ की महतौ भी आयौ तो, लायौ है दाढ़ी वारो भोग। बरसावन ...
याही रै करौली को राजा भी आयो तो लायौ है छत्र घने बरवासन...
याही री नगर के यात्री जी आये, तो लाये है पान बताशे बरवासन,
एकलासन बाकी खोर घणी–
नारियल री भेट बरवासन एकलासन बाकी ...
याही री नगर की बहू बेटी भी आई।
तो लाई है वामन नौ बरवासन एक लासन बाकी...
बामन कू मैया पूडी लापसी, साधून भोग घने बरवासन
तेरे भवन मैया प्यास लगत है, तो काली सिल नदिया बहाई बिरवासन

तेरे भवन मैया धूप लगत है, आड़े टेढ़े तम्बू बनाये बिरवासन
तेरे भवन मैया भूख लगत है, आड़ी हाट जुड़ाई बिरवासन
एकलासन बाकी खोर घणी।[1]

सवाई माधोपुर से जयपुर रेलमार्ग पर अवस्थित 'चौथ का बरवाड़ा' में चौथ माता का मंदिर है। वहाँ का मंदिर देवभूमि के रूप में सुविख्यात है जो कि 'ईशरदा' के समीप है जहाँ एकादशवा शिवलिंग है, जिसे 'धुश्मेश्वर' महादेव के रूप में पूजते हैं और फिर माता की महाआरती में नर-नारी संगीत व नृत्य को भजनों का रूप देकर अरदास करते हैं। करवाचौथ को कार्तिक मास में महिलाएँ व पुरुष व्रत रखते हैं तथा स्त्रियाँ अपने पति की लम्बी उम्र की कामना करती है। आज के भौतिकवादी वातावरण, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के बाद भी भारतीय संस्कृति की परम्परा ईश्वर के प्रति आस्था विद्यमान है—

तेरे मन्दिर में आशा

तेरे मन्दिर में आशा के दीप जलाने आया हूँ।
करोगी पूर्ण अभिलाषा यही उम्मीद लाया हूँ।।
तेरी गौरवमयी गाथा को, वेद और शास्त्र गाते हैं।
मैं सुनके महिमा महामाया शरण में तेरी आया हूँ।।
तेरे मन्दिर में आशा .....
ना पूजा-पाठ कुछ जानूँ, ना सेवा अर्चन चिन्तन।
मैं तेरा तुच्छ सेवक बनके, सेवा भाव लाया हूँ।।
तेरे मन्दिर में आशा .....
हृदय में प्रीत चरणों की करूँ दिन-रात आराधन।

---

1. लालजी राम मीना (आड़ाडूँगर) से साक्षात्कार।

करो स्वीकार आराधन, मैं किस्मत का सताया हूँ।।

तेरे मन्दिर में आशा .....

हैं टूटे तार वीणा के मगर झन्कार बाकी है।

मैं टूटे तारों पर सरगम, सुनाने मन की आया हूँ।।

तेरे मन्दिर में आशा .....

दर बदर ठोकरें खाकर के अपनी माँ को पाया है

बसाने माँ के चरणों में, नया संसार आया हूँ।।

तेरे मन्दिर में आशा .....

ये माँ बेटे का दुनिया में बड़ा ही उच्च नाता है।

क्षमा मैं त्रुटियाँ कराने अपनी, माँ से आया हूँ।।

तेरे मन्दिर में आशा .....

निष्कर्ष

राजस्थानी गौरवशाली परम्परा में पूर्वी अंचल की धरोहर वीरता, त्याग ओज के कारण सदैव वन्दनीय रही है। पुरातन इतिहास इस तथ्य का ज्वलंत उदाहरण है कि यहाँ की मिट्टी के कण-कण में शौर्य, पराक्रम, त्याग, तप और स्वाभिमान की प्रमुखता रही है। राजस्थान प्रदेश का पूर्वी अंचल हरी-भरी खेती-खलिहानों से पूरित सर्वसमाज में सामंजस्य की एक छटा ग्रामीण लोक जीवन की संस्कृति सापेक्ष मन:स्थिति का द्योतक है। पुरातन एवं अधुनातन संस्कृति के मध्य व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक परिवर्तन निरन्तर हुए हैं। अंग्रेजों, मुसलमानों, ईसाई मिशनरियों ने राज किया किन्तु मूल संस्कृति का तनिक भी ह्रास करने की ताकत उन दुर्शक्तियों में नहीं पनप पाई। आपसी सद्भाव, त्याग, प्रेम, परोपकार आदि भावों के कारण अन्य प्रान्तों की अपेक्षा राजस्थानी संस्कृति पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण तक की वीरता के

विविध उदाहरण प्रस्तुत करती है। माता कैलादेवी का चमत्कार राजस्थान ही नहीं, सम्पूर्ण देश की जनता, यहाँ तक कि मुसलमान धर्मावलम्बी भी मानते हैं। दूसरा मदनमोहन जी का मंदिर युगों पुराना है कि ब्रजधाम से कम नहीं है। आज वही परम्परा नाथद्वारा के श्रीनाथ जी तथा जयपुर के गोविन्द देव जी की है। इस प्रकार राजस्थानी संस्कृति का कण–कण सद्भाव, प्रेम व परोपकार से मिश्रित व कल्याणकारी दृष्टिगोचर है। आज परिवर्तन मानवीय विचारों का हुआ है, लोगों की श्रद्धा, विश्वास आस्था के कारण सभ्यता व संस्कृति वही है। वैज्ञानिक युग होते हुए भी दैवीय आस्था निरन्तर बढ़ रही है।

❑

अध्याय–द्वितीय

राजस्थान एवं पूर्वी राजस्थान का लोक साहित्य

भारतीय संस्कृति की सामर्थ्यवान, ऊर्जावान शक्तियाँ लोक साहित्य में स्थित है। विभिन्न संस्कृतियों की अपनी परम्पराएँ हैं, जो निरन्तर चली आ रही हैं। इतिहास इन सभी तथ्यों को प्रमाणित करता है। इसी सन्दर्भ में राजस्थान प्रदेश की संस्कृति में लोक जीवन, लोक परम्पराओं का अपना महत्त्व है। पूर्वी राजस्थान का लोक साहित्य अमूल्य निधि है। प्रदेश में प्रचलित रुढ़ियों परम्पराओं के अद्‌भुत शौर्य, पराक्रम सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों का महत्त्व है। राजस्थान में अकाल, वर्षा की कमी, कृषि की पैदावार में कमी होने पर भी राजस्थान वासियों के ओज, वीरता और आत्मविश्वास को कम नहीं कर सके। अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए आन–बान, शान और बलिदान देने में पीछे नहीं है। यह पवित्र भूमि वीरों को जन्म देने वाली है। नारियों का जौहर, पुरुषों का पौरुष, वाणी, त्याग, बलिदान और समर्पण का भाव यहाँ प्रत्येक व्यक्ति में समाया हुआ है। गाँव–गाँव में तथा घर–घर में राजस्थान लोक–कला व लोक–साहित्य की स्पन्दन पूर्ण क्षति के दर्शन होते हैं। प्रेम, त्याग, रोमांस कथाओं 'ढोला मारूरा दूहा' 'जलाल बूनना', 'नागजनी नगवन्ती', 'रिसालू पौपदे', 'निहालदे सुलतान', 'अचलदास खींची री वचनिका', 'बेलि कृष्ण रुकमणी री कथा', 'पाबूजी वीरात्मक काव्य', 'परिहारी सूवटियों', 'ओल्यूँ' जैसे लोक गीतों का अक्षय भण्डार राजस्थान के लोक साहित्य की समृद्धि है। इन लोक सांस्कृतिक विरासत में सहज एवम् सरल मनोभावों को व्यक्त करने वाले लांगुरिये मानों कमल खिलते हुए प्रतीत हो रहे हैं।

भारतीय संस्कृति के गुलदस्ते में संगठित फूलों में लोक साहित्य गुलदस्ते की भूमिका के सन्दर्भ में चर्चा करें तो, एक फूल राजस्थानी लोक साहित्य की महक देता

है। वेद, वेदांग, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, बौद्य व जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में लोक वाङ्मय की पृष्ठभूमि के सहज दर्शन होने लगते हैं। कथासरित-सागर, वृहत्कथा, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि साहित्यक कृतियों का भी अपना महत्त्व है। लोक में प्रचलित मौखिक परम्पराओं को इन युगों में साहित्यिक स्वरूप देने का प्रयास किया गया और उनके स्वस्थ एवं उज्ज्वल अभिव्यंजना को शास्त्रीय काव्याधर बनाया गया।[1]

लोक साहित्य वार्ता का महत्त्वपूर्ण अंग है। अंग्रेजों के शासन काव्य में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी एवम् कुछ चर्च के पादरियों ने भी सबसे पहले भारतीय लोक साहित्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। कर्नल टॉड, सी.ई. ग्रोवर, फेर्ब्स रेवरेड एस हिलस्प आदि इस क्षेत्र में प्रमुख रहें।[2] इसी काल में हिन्दी क्षेत्रों में लोकवार्ता सम्बन्धी कार्य हुआ।

लोक शब्द का व्युत्पति परक अर्थ

लोक शब्द 'लोक दर्शने' धातु में धञ् प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' होता है। इस निष्पत्ति के अनुसार जो समस्त जन समुदाय को देखने का कार्य सम्पन्न करता है, लोक कहलाता है। लोक शब्द के कई अर्थ मिलते हैं, जैसे विश्व, भुवर, स्वर्ग, पृथ्वी[3], पाताल, विश्व का एक भाग संसार, भू-भाग, लोक, समाज, प्रजा, समूह, मानव, जाति, यश, दिशा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और प्राणी आदि। पर विशेषत: दो अर्थ अधिक प्रचलित है। एक अर्थ है, जिससे लोक-परलोक और तीन लोक का ज्ञान होता है। दूसरा अर्थ है प्रजा, जनता व जनसमुदाय। इसी दूसरे शब्दार्थ का वाचक 'लोक' शब्द साहित्यालंकार है।[4]

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 13-14
2. नानूराम संस्कर्त्ता राजस्थानी लोक साहित्य पृ. 15
3. सोहनदान चारण 'राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन' पृ. 1-2
4. नानूराम 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 1, 2, 4

ऋग्वेद में सुप्रसिद्ध पुरूष सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग जीव एवं स्थान दोनों अर्थों में हुआ है—

''नाम्या आसीदन्तरिक्षं शीष्णोर द्यौ समवर्तत।
पदम्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन।।

ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है– 'यश्में य इमे रोदसी उमे अहमिद्रमतुष्टवं। विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मोदं भारतं जनं' यजुर्वेद में लोक (समाज) की विराट् कल्पना की है। महर्षि वेदव्यास ने 'लोक शब्द का प्रयोग जन साधारण के अर्थ में किया है –'**प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर।**'[1]

श्रीमत् भागवत् गीता में श्रीकृष्ण ने लोक संग्रह पर बल देते हुए अर्जुन को उपदेश कुछ इस प्रकार दिया:–

''कर्मणेवे हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमहर्षी।''[2]

लोक शब्द व्यापक अर्थ लिए हुए है। इस शब्द का प्रयोग वैदिक कालीन सभ्यता व संस्कृति में भी प्रयुक्त हुआ है। कालान्तर में धीरे–धीरे समाज में प्रचलित हो गया और आज भी व्यापक सन्दर्भों को लिए हुए है। **डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल** के अनुसार ''किसी व्रत नियम या छन्द के भीतर बँधा हुआ जो धार्मिक जीवन है, वह शास्त्रीय या मार्गीय या नियमानुगत कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त जो शास्त्रीय सीमाओं और व्रतों से व्यक्तिरिक्त है, जिसे अथर्ववेद के शब्दों में व्रात्य जीवन कहेंगे। वह लोक धरातल पर विकसित होने वाले समाज का विराट जीवन माना जायेगा।" शास्त्र परिष्कृत उपवन है और लोक अरण्य है। शास्त्र की दृष्टि बुद्धि

---

1. सोहनदान चारण 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 1, 2, 4
2. श्रीमत भागवत गीता अध्याय 3/20 श्लोक

के मंथन हृदय और बुद्धि का अंतर ही लोक और शास्त्र का अन्तर है, जैसा कि गोसाई ने कहा है ''**हृदय सिन्धु मति सीप समाना**।''[1]

एक जगह और लोक शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यावसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार है और निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी का मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।''[2]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार–लोक मनुष्य–समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है। यह एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं वे लोक तत्त्व कहलाते हैं।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी के शब्दों में ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गावों में फैली हुई समूची जनता है। जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो कुछ भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।''[4]

---

1. वासुदेव शरण अग्रवाल : वरदा (पत्रिका) भारतीय संस्कृति लोकतत्व जनवरी 1958 अंक 1 पृ. 3, 4
2. संस्कर्त्ता नानूराम 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 4
3. स. धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग–1 पृ.स. 747
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद अंक 1 पृ. 65

रामनाथ सुमन ने महाकवि तुलसी दास की उक्ति को इस प्रकार दोहराया है ''लोक की वेद बडेरो कहा है।''[1] **डॉ. सत्ये** ने लोक शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है ''लोक मानवजाति का वह एक समूह है, जो ग्रामीण संस्कार, उन्नत सभ्यता, निरक्षर किन्तु संस्कारों में मंडित तथा कथित शिक्षा अनभिज्ञा और साथ-ही-साथ सवर्ण सभ्यता के घमण्ड से बहुत दूर है तथा प्राचीन परम्परा की अटूट धारा में अखण्ड किलोलें करता रहता है। उसकी वाणी में रस है, अनिवर्चनीय सुख है और उसकी सहृदयता पर सुनहली छाप है।''[2]

लोक शब्द का अर्थ मेरी विनम्र सम्मति "ग्रामीण व शहरी परिवेश में व्याप्त समुदाय के लिए प्रयुक्त होना चाहिए। जिसमें बिना भेद भाव के जाति धर्म एवम् लिंग भेद के परे आम आदमी के कल्याण की भावना हो, वह समूह ही लोक कहलाता है।"

भाषाविज्ञान में डॉ. **भोलानाथ तिवारी** ने लोक शब्द के लिए ग्राम शब्द सीमित माना है 'जन' अपेक्षा निकट है किन्तु लोक का समीचीन पर्यायवाची शब्द फोक है। फोक शब्द ऐग्लो सैक्सन् शब्द FOLC का विकसित रूप है। जर्मन में यह VOLK हो गया है। फोकलौर के सन्दर्भ में फोक का अर्थ 'असंस्कृत लोग' है। दूसरा शब्द लोकर एँग्लो सैक्सन् LOR से निकला है और इसका अर्थ होता है वह जो सीखा जाये। इस प्रकार फोकलोर का शाब्दिक अर्थ असंस्कृत लोगों का ज्ञान है।''[3]

भक्तिकालीन निर्गुणधारा के प्रवर्तक कवि महात्मा कबीरदास जी ने बहुप्रचलित लोक शब्द की व्याख्या निम्नानुसार की है। ''जब मैं अज्ञानवश लोक व

---

1. रामनाथ सुमन सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) लेख 2010 पृ. 35
2. संस्कर्त्ता नानूराम 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 1
3. रामनाथ सुमन सम्मेलन पत्रिका लोक संस्कृति विशेषाक सं. 2010 पृ. 433

वेद का सहारा लेकर, सर्वसाधारण के पीछे लगा चला जा रहा था, कि मार्ग में सद्गुरु मिल गये और उन्होंने मेरे हाथ में ज्ञान का दीपक थमा दिया।''[1]

मेरी विनम्र सम्मति में लोक शब्द परम्परागत जनश्रुतियों में मिलता है। यदा-कदा दो संस्कृतियों के संघर्ष में किसी अन्य अर्थ के संकेत तैयार हो जाते हैं। भारत में आर्यों के आगमन पर अनार्य और आर्य संघर्ष हुआ। वेद वेदेत्तर संघर्ष प्रमुख हैं।

पाश्चात्य मतानुसार :- 'लोक' का आंगल प्रति शब्द फोक (Folk) है। इस (Folk) शब्द को मध्ययुगीन अंग्रेजी में (Folc) कहा जाता था एवं यही एंग्लो-सेक्सन् भाषा में (Volk) नाम से प्रचलित रहा। सामान्य जन का एक शब्द में व्यक्त करने के लिए 'फोक शब्द' का प्रयोग किया गया, किन्तु आम जन की सांस्कृतिक धरोहर को शास्त्रीय रूपों में विभाजित करने का प्रश्न आया तो 'लोक अथवा' 'फोक' का अर्थ गँवार ग्रामीण (हीन अर्थ) में मूढ़ के रूप में भी किया गया किन्तु यह अर्थत्व संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक था।

एनसाइक्लोपीड़िया ब्रिटेनिका में कहा गया है ''कि किसी भी राष्ट्र की नगरेत्तर सांस्कृतिक धारा को 'फोक' के अन्तर्गत स्वीकार करना होगा।''[2]

डॉ. बार्कर के अनुसार ''फोक से तात्पर्य सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। परन्तु इसका विस्तृत अर्थ लेती। किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के समग्र लोग इसी नाम से पुकारे जायेंगे।''[3]

वर्तमान में लोक का अर्थ :- लोक भारतीय समाज की नागरिक और ग्रामीण दोनों अभिन्न संस्कृतियों में व्याप्त है। केवल ग्राम की परिधि में लोक को बाँधना उचित नहीं है, क्योंकि ग्राम और नगर का भेद तो इतिहास की पिछली कतिपय सदियों

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 2, 3
2. संस्कर्त्ता नानूराम 'राजस्थानी लोक साहित्य' पृ. 4
3. सोहनदास चारण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन पृ. 7

में ही स्थापित हुआ है। अत: यही लोक नामक संज्ञा जन समाज का उद्योगी एवं गतिशील अंग है।

लोक साहित्य का स्वरूप

साहित्य शब्द अपने आपमें व्यापक अर्थ लिए हुए है। जो लोक और साहित्य में समन्वयात्मक दृष्टिकोण से अभिप्रेरित है। सम्पूर्ण जीवन जगत की चेतना सम्पन्न अभिव्यक्ति को स्पष्ट करता है। समस्त जीवन लोक के ज्ञान को अर्जित कर आत्मसात करने की प्रबल कल्पना द्वारा शब्द संयोजन शक्ति, व्यक्ति विशेष की अपेक्षा जाति व समाज द्वारा ही संभव है। यही कारण है कि समाज की क्रियान्विति अपने लोक साहित्य के आधार पर होती है। प्रस्तुत विकास क्रम की विषमता को परिभाषित करना बड़ा दर्लभ कार्य है, उसका उल्लेख किया जाना आवश्यक है। साहित्य शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द में षयञ् प्रत्यय लगने से बनता है। जिसका अर्थ है हित सहित होना। ''**सहितस्य भाव: साहित्य**'' अर्थात् साहित्य उस रचना को कहेंगे जिसमें हितकर भावना व्याप्त हो। अर्थात् साहित्य को भावों और विचारों का सुन्दर चयन या शब्दार्थ का सुन्दर समन्वय कह सकते हैं।

काव्यशास्त्र के अनुसार ''**हितेन सह सहितंत तस्य भाव: साहित्यम्**''[1] में व्यापक अर्थ की व्याख्या करें तो लोक हित की अभिव्यक्ति करने वाली समृद्ध रचना साहित्य की कोटि में आती है। जिसमें सम्पूर्ण वाङ्मय समावेशित हो जाता है। सीमित अर्थ की बात करें तो 'काव्यशास्त्र' का वाचक है तथा अंग्रेजी के 'लिटरेचर' शब्द का पर्यायवाची है।

विद्वानों द्वारा साहित्य की विविध परिभाषाएँ दी गई हैं:- **आचार्य कुन्तक** ने वक्रोक्तिजीवितम् काव्य-ग्रंथ में लिखा है कि ''किसी भी विद्वान् ने अभी तक साहित्य के परमार्थ की व्याख्या नहीं की है। यह कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न किया गया है।

---

1. सत्यदेव चौधरी, शांति स्वरूप गुप्त 'भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र का संक्षिप्त विवेचन पृ. 319

''साहित्य मनयो: शोभाशालितां प्रति काप्यसौ
अन्यूनानतिरिक्तत्वं–मनोहारिण्य व स्थिति।।
(वक्रोक्तिजीवितम्)

रविन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार

'**साहित्य** शब्द में मिलन का एक भाव दृष्टिगोचर होता है। वह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ, ग्रन्थ का ग्रन्थ के साथ मिलन है। यही नहीं वरन् यह भी बतलाता है कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का दूर के साथ निकट का मिलन कैसा होता है?

प्रेमचन्द के अनुसार :– साहित्य जीवन की आलोचना है चाहे वह निबन्ध के रूप में हो चाहे कहानी के या काव्य के रूप में, उसमें हमारे जीवन की व्याख्या होनी चाहिए।

आचार्य महावीर प्रसार द्विवेदी के अनुसार :– 'साहित्य की महत्ता' शीर्षक में लिखा है कि ''ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है।''

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार :– जो मनुष्य को दुर्गति हीनता और परमुखा पेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न कर सके, जो उसके हृदय को परदु:खकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।[1]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार :– "आत्माभिव्यक्ति ही वह मूल है जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य बन पाती है।"

डॉ. भगवानदास के अनुसार :– "साहित्य एवं काव्य से हमारा तात्पर्य ललित साहित्य की विशिष्ट रचना से होता है।"

---

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : साहित्य की महत्ता पृ. 15

डॉ. गणपतिचन्द गुप्त के अनुसार :- साहित्य भाषा के माध्यम से रचित वह सौन्दर्य या आकर्षण से युक्त रचना है, जिसके अर्थ बोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती है। मेरी विनम्र सम्मति में साहित्य में जीवन एवं जगत् की सौंन्दर्यमय झाँकी और ज्ञान स्वरूप के शिवत्व का समावेश होता है, अत: वाङमय ही कल्याणकारी साहित्य है। ''गति ही जीवन है। गति नहीं तो जीवन समाप्त है, इसलिए लोक-साहित्य, जीवन का साहित्य है, वह जीवन से अलग नहीं, जो पूर्व संस्कृति की उत्तम निधि के सहित वर्तमान शिष्टता एवं सभ्यता के मंगलप्रद अभ्युदय का सूचक है।[1]

मेरी विनम्र सम्मति में निष्कर्ष रूप में लोक-साहित्य लोक-मानस की परम्परा से विरचित वह साहित्य है जो जनगण की वाणी से मुखरित होता है। जिसमें जीवन की सहज संवेदनाओं की अकृत्रिम अभिव्यक्ति होती है। यह सामाजिक शब्द करौली व सवाई माधोपुर के ग्रामीण अंचल से जुडा हुआ है तथा डांग क्षेत्र की लोक संस्कृति लोक साहित्य, लोक संगीत का समावेश निहित है। ऐतिहासिक किवदंतियों, पौराणिक तथ्यों को आधार बनाकर लोक जीवन, लोक रूढ़ियों एवं लोक विश्वासों के रूप में समाज में आज भी प्रचलित हैं तथा नवीन परम्पराओं का सृजन करते हुए प्रतीत होते हैं। इन्हीं लोकरूढ़ियों, विश्वासों एवं मान्यताओं के आधार पर ही लोकसाहित्य का विश्लेषण करना है।

राजस्थानी लोक साहित्य की अवधारणाएँ

लोक-साहित्य का स्वरूप अपने आप में व्यापक सन्दर्भों को लिए हुए है। लोक जीवन से जुड़ी विविध रीति-रिवाजों, रूढ़ियों व परम्पराओं का उल्लेख साहित्य में विद्यमान है। किन्तु राजस्थानी साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस धारणा को पुष्ट करता है कि पुरातन रूढ़ियों, परम्पराओं, संस्कारों, ग्रामीण और शहरी संस्कृति में आये परिवर्तन को युग सापेक्ष मानते हुए भी संस्कृति की विराट्

1. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य पृ. 3

समन्वयता आज भी विद्यमान है। लोक साहित्य का क्षेत्र विशद रूप लिए हुए है। भारतीय समाज में व्याप्त टोने-टोटकों, अनुष्ठानों, संस्कारों उत्सवों की परम्परा है, जो राजस्थानी लोक-साहित्य में रंगा हुआ है। भोपा, देवी-देवताओं, पीर, पितृ, भूतों व भूत आत्माओं, हवाओं सन्तों की वाणियों धूणी, मसान विविध देवियाँ व उन पर की जाने वाली बलियाँ। एक और तो टोटके हैं, दूसरी और उनकी पूजा का प्रावधान है।

एक ही परिवार में अनुष्ठानों के पक्ष एवम् विपक्ष में वैचारिक भिन्नता रहती है। सुधारवृत्ति का संस्कार भी दिखाई देता है। राजस्थानी समाज में प्रत्येक स्तर के अनुकूल चित्र रचना, मूर्ति विधान कथा कहानी, संगीत नृत्य, पूजा-पाठ, भोजन व्यवस्था, शरीर तथा गृह की सज्जा आदि तत्त्व भी मिलेंगे। यूँ तो सोलह संस्कार बनाये गये हैं किन्तु जन्म विवाह और मृत्यु तीज त्यौहारों का उल्लेख राजस्थानी साहित्य में वर्णित है। सामाजिक रूढ़ियों चौथ का व्रत (करवाचौथ) गणेश पूजा शंकर चौथ आदि विषयों का लोक जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित है। नागपूजा, वृक्षपूजा, जूआ खेलना तथा घूमर नृत्य करती मनभावन स्त्री का प्रेम कथा, विरह की व्यथा राजस्थानी लोकसाहित्य की मूल अवधारणा है। जिसने राजस्थानी सभ्यता, संस्कृति व परिवेश से ओत-प्रोत विविधता में एकता के दर्शन होते हैं। लोक संस्कृति का मुख्य रूप, लोकगीतों, लोकगाथाओं, लोककथाओं एवं लोकनाट्यों तक फैला हुआ है। साथ-ही-साथ यहाँ के तीज त्यौहारों, व्रतों व सोलह संस्कारों में लोक संस्कृति का विराट स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित है।

डॉ. रामप्रसाद दाधीच के अनुसार ''व्रत त्यौहार उत्सव मेले राजस्थानी लोक जीवन के अटूट अंग हैं। देवी-देवताओं में अटूट विश्वास यहाँ के लोक समाज की विशेषता है।''[1] आज युग परिवर्तन होने पर इस विश्वासी धारणा को पिछड़ापन,

---

1. रामप्रसाद दाधीच राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति पृ. 77

अनपढ़ और अन्धविश्वासी कहा जाता है लेकिन मेरी विनम्र सम्मति में लोक का स्वरूप प्रकृति में रमा हुआ है। **डॉ. सत्ये ने लोक संस्कृति को शरीर, मन व मनोदिनी तीन रूपों में व्यक्त किया है।** लोक देवी देवताओं की पूजा ग्रामीण सीमाओं के बाहर भी पूजा करने की परम्परा है। इस सन्दर्भ में **कल्याण सिंह शेखावत** का कथन स्पष्ट है ''पाबूजी, हड़बूजी, गोगाजी, तेजाजी, मल्लिनाथ जी, रामदेव आदि लोकदेवता है तथा सतियों के भी मेले आयोजित किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त करणी जी, जीणमाता, हिंगलाज माता, पपलाज आदि ऐसी देवियाँ रहीं, जिनकी स्मृति में आज भी मेले आयोजित किये जाते हैं।''[1]

राजस्थानी लोक संस्कृति में दया, प्रेम, त्याग एवं श्रद्धा अपार है। देवी-देवताओं के मंदिर चबूतरे चाहे गाँवों में या फिर जंगलों में हो इनकी पाठ-पूजा लौकिक रीति से ही किया जाता है। ये देवी देवता वे है, जिन्होंने राजस्थानी समाज व संस्कृति में जन्म लेकर यहीं देह का अर्पण किया है। यहाँ की स्त्रियाँ भी देवियाँ और मासीजा के रूप में लोकसंस्कृति का अंग बन गई। शरतचन्द्र पाण्ड्या के अनुसार ''वागड्मएं लोक देवता नी सेवा-पूजा अणा विश्वास थकी थाती रे है कि वागड़वासियाँ नां रोग दौग ने संकट आस् लोक देवता मेर करी सकै।''[2]

''ससुर के अंगना जलपूजन जाऊँगी।
सात सखी राहरे ते उतरी, हंसत खेलत मुस्कात,
चलो री सखी बाबा नन्द चालें, जसोदा ने जायो नन्दलाल।
हाथ सरेंदी, पैर पांतरी, जर रिए जनन किंवार।
चलो री सखी उलट घर चाले यां न आदर भाव।।[3]

---

1. डॉ. कल्याण सिंह शेखावत : राजस्थानी भाषा साहित्य संस्कृति पृ. 362
2. शरतचन्द्र पाण्ड्या : वागड़नी संस्कृति पृ. 86
3. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 7

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'फोक लिटरेचर फोक लोर का एक अंश है जिसका सम्बन्ध केवल लोकगीत, गाथा, कथा, नाटक, उक्ति तथा पहेली आदि से है। एक विशेष भौगोलिक सम्पूर्ण क्षेत्र के करौली सवाई माधोपुर क्षेत्र का विवरण इसी तथ्य को प्रमाणित कर मौखिक परम्परा को लिपिबद्ध करता है। कल्याण सिंह शेखावत के मत का समर्थन कर लोक अवधारणा की प्रतिपुष्टि निम्नानुसार सम्प्रेषित करता हूँ

लोकसाहित्य का वर्गीकरण

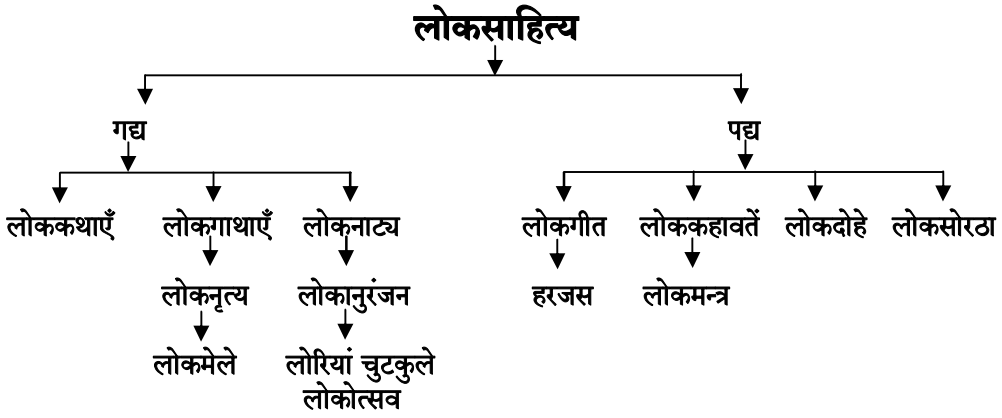

राजस्थानी लोकसंस्कृति की गौरवशाली महिमा का बखान इन गद्य-पद्यमय गूँथी हुई कलाओं से पता लगाया जा सकता है, जो समग्र प्रदेश की एक विशिष्ट पहचान बन चुकी है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण देश को एक नयी पहचान बनाने में समर्थ है। लोकरीतियां, लोकविश्वास, परम्पराएँ, तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोने आदि के विविध उदाहरणों का उल्लेख क्रमवार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में देंगे। इस प्रकार पूर्वी अंचल के सवाई माधोपुर तथा करौली जिले की स्पष्ट तस्वीर इन्हीं बिन्दुओं के सन्दर्भ में स्पष्ट परिलक्षित है। शिवाड़, महावीर जी, मदनमोहन जी, कैला मैया आदि देवी-देवताओं की कथाक्रम स्तुतिवन्दन को भी यथास्थान प्रस्तुत किया है।

वर्गीकरण – पद्य

(1) लोकगीत :- मानव उपलब्धियों में गीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्भवत: आदिम मानव ने वाणी का प्रथम दर्शन 'गीत' के रूप में ही किया था। जितना गीत मानव के स्वभाविक भावनात्मक स्पन्दनों से संबंद्ध है, उतना वाणी का कोई और रूप नहीं। आवेग एक सकल शरीरी प्रक्रिया है। शरीर का प्रत्येक अवयव ही आवेग से आक्रांत होकर गत्यात्मकता युक्त हो जाता है। इसी के अधीन कण्ठ स्वर फूटता है। यह आवेग लययुक्त होता है। लय और ताल स्वर से परिचय होता है। सवृंत और विवृत्त स्वर के बाद शब्द का प्रवेश हुआ इस प्रकार लोकगीत में स्वर और शब्द परस्पर गुँथे रहते हैं।

लोकगीतों की परम्परा बहुत पुरानी है। संस्कृत विद्वान् कवियों तथा हिन्दी के भक्तिकालीन कवियों का समय निश्चित है पर गीतों की रचनाओं का कोई निश्चित समय नहीं है। गीतों की प्राचीनता चिन्हित है। ऋग्वेद में गाथिक शब्द है।[1] वह गाने के काम में लिया गया है। ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में इस समय की अनेक गाथाओं से लोकगीतों की साकारता के प्रमाण मिलते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋक को देवी और गाथा को मानवी से सम्बन्धित बताया गया है।

शब्द या स्वर :- सभी लोक गीतों में सामान्यत: यह बात मिलती है कि शब्द गौण होते हैं। लय (Tunes) से और इसी कारण कभी-कभी यह कहा जाता है कि यह लय है जिसका सर्वापेक्षता अधिक महत्त्व था। यह विश्वास सत्य से बहुत दूर है। सच्चाई यह है कि कण्ठ से कण्ठ पर उतरते हुए शब्दों ने क्रमश: लघु विकारों और संशोधनों को झेला है। संगीत अधिक यथावत् रूप में स्मृत रहा है, क्योंकि लोक नायक के लिए गीत का सम्पूर्ण अर्थ आवेग सम्पृक्त (Emotional) होता है

1. संस्कृर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य पृ. 43

उतना नैगमिक (Logical) नहीं।[1] आवेगों की पूर्णता ही स्वरों की प्रधानता को प्रकट करती है। भारत में दो रूपों में देखने को मिलते हैं : एक स्फुट दूसरा प्रबन्धमय। सामान्यत: स्फुट व मुक्तक रूपों में स्वर गौरव की अपनी विशेषता रहती है; लेकिन प्रबन्धमय रूपों में शब्द गौरव बढ़ जाता है। मुक्तकों अथवा स्फुट गीतों में अर्थ अथवा शब्द गीत या स्वर के बीच महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

लोकगीत की परिभाषा :- वह गीत जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोक मान सभास भी हो लोकगीत के अन्तर्गत आएगा। [2]पाश्चात्य विद्वानों ने फ्रांस के गीत या तो सुन्दर (स्वादु) होते हैं या नाटकीय जर्मनगीत बोझिल एवं हृदयस्पर्शी, सामान्य योरोपीय गीत गेय, गुनगुनाने योग्य पुष्ट एवं असम्बद्ध, रूसी गीत उदास और अनगढ़, स्पेनी मंद और स्वप्निल तथा हिबू गीत आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी निग्रो गीत विलक्षण सुन्दर एवं गहरी मार्मिकता लिए हुए होते हैं।[3]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने '**हिन्दी साहित्य की भूमिका**' में लिखा है। लोकगीत की एक-एक बहु के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ खंडिताएँ और धाराएँ न्यौछावर की जा सकती है, क्योंकि निरलंकार होने पर भी प्राणमयी है और अलंकारों से लदी हुई भी निष्प्राण है। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं है और अपने आप में परिपूर्ण है।[4]

डॉ. सुदेश बत्रा के अनुसार "लोकगीत कवि की परिक्षानुभूतिपरक दृष्टिकोण से सहजरूप में अद्‌भुत संगीतात्मक शब्द योजना को कहा जा सकता है।"[5]

---

1. डॉ. सत्ये : लोक साहित्य विज्ञान में लेख पोइट्री एण्ड द पीपल पृ. 184
2. डॉ. सत्ये : लोक साहित्य विज्ञान् पृ. 315
3. श्याम परमार : भारतीय लोक साहित्य
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी : हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ. 138
5. डॉ. सुदेश बत्रा : राजस्थानी व पंजाबी संस्कार गीत प्र.स. 2004 पृ. 4

श्री रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'लोकगीत प्रकृति के उदगार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है, छन्द नहीं केवल लय हैं, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। प्रकृति जब तरंग में आती है, तब वह गान करती है। उसके गीतों में हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण श्रद्धा में विश्वास और करूणा में कोमलता। प्रकृति के गान में मनुष्य समाज इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है। जैसे कविता में कवि क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग।'[1]

बृज सुन्दर शर्मा के अनुसार 'लोकगीत लोक-मानस के प्रतिबिम्ब हैं। विजय दान देथा ने लोकगीत सामुहिक जनमानस की अचेतन भावधार का प्रतिफलन माना है।'[2] देखे तुलसी कवितावली में बधाई का उल्लेख।

''जायो कुल मंगल बधावनो बजायो पुनि।
भयो परिताप पाप जननी जनक को।।''

शिवसिंह चोयल के अनुसार 'लोकगीत मानव जीवन का आदरणीय व अपूर्व संगीत है। मानव हृदय एवं मानव जीवन की अशेष भावनाओं का एक विश्वास संग्रहालय है।'[3]

पुरुषोत्तम लाल मैनारिया के अनुसार 'लोकगीत हमारी जनता के स्वाभाविक उदगार हैं, जिनका प्रादूर्भाव सुख दु:ख, हर्ष-शोक आदि विविध अनुभूतियों के परिणाम स्वरूप हुआ हैं।'[4]

लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत के अनुसार 'साहित्य अन्तरात्मा की आवाज है, ज्ञानमय दृष्टि है, विचारों की सृष्टि है। उसी साहित्य का विशिष्ट अंग है लोक-साहित्य, लोकवार्ता और लोकगीत। जिसका सृजन लोक-मानस से बनता है। एक

---

1. डॉ. सुदेश बत्रा : राजस्थानी व पंजाबी संस्कार गीत प्र.स. 2004, पृ. 6, 7
2. सं. विजयदान देथा : राजस्थानी लोक गीत पृ. 9
3. शिवसिंह चोयल समपा. राजस्थानी लोकगीत भाग-2 पृ. 3
4. पुरुषोत्तम लाल मेनारिया : राजस्थानी लोकगीत प्र.स. दिसम्वरावडप ई.पृ. 1

व्यक्ति की सामूहिक सामाजिक अभिव्यक्ति होती है। लोकमानस की इसलिए यह लोक–मानस का दर्पण है। लोकगीतों में संस्कृति का सच्चा इतिहास है।'[1]

डॉ. तारा प्रकाश जो प्रसिद्ध गीतकार के अनुसार 'लोकगीत सांस्कृतिक सृजन है, जो समाज में प्रेम एवं पूज्य भाव को जन्म देते हैं।'[2]

डॉ. अशोक शास्त्री के अनुसार 'लोक यानी ग्रामीण अंचल में व्याप्त सामाजिक प्रेम, द्वेष व अन्य विचारों को परिवेश से जोड़ा जाता है। वहीं लोक संस्कृति का परिचय देने वाले गीतों का समूह लोकगीत कहलाता है।'[3]

भारतीय प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों ने लोक गीतों के सन्दर्भ में परिभाषाएँ लिखी है जिनमें मेरी विनम्र सम्मति में लोक जीवन संघर्ष, परम्पराएँ, पौराणिक जीवन से जुड़े गीतों को लोक गीत कहना ही सर्वोचित रहेगा। पाश्चात्य विचारकों में पैटी, सिजविक व ग्रिम जैसे प्रतिमा सम्पन्न विचारकों ने लोक जीवन में होने वाले गीतों के विषय में पर्याप्त लिखा है पैटी ने 'लोकगीत आदि सृष्टि साहित्य की सृष्टि से यहाँ तक वर्णमाला की सृष्टि से पहले का है। वह अनुश्रुति का अंग है।[4]

राजस्थानी लोकगीतों का विकास क्रम

मरूधरा की मृगमरीचिका साहित्य में ही नहीं वरन् मानव जीवन को लोकगीतों के माध्यम से यथार्थ से अवगत कराने में सक्षम हैं। राजस्थानी मिट्टी के कण–कण में त्याग, प्रेम एवं समर्पण व बलिदान का भाव देखने को मिलता है। सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक विविधताओं के होते हुए भी एकता के दर्शन लोकगीतों के

---

1. विद्याभूषण महर्षि मुरारीलाल (संग्रहकर्ता) पारम्परिक मांगलिक लोकगीत जयपुर संस्करण प्रथम 1 जून 2001 पृ. सं. 2–9
2. डॉ. तारा प्रकाश जोशी एक साक्षात्कार
3. हिन्दी नयी कविता में राजस्थान का योगदान डॉ. अशोक शास्त्री
4. कु. उर्मिला सैनी : राजस्थानी संस्कृति में चित्रित संस्कृति समाज शोध प्रबन्धी पृ. 42

मिठास में देखने व सुनने को मिलती है। मधुर भाषा में 'गैर तथा घूमर' नृत्यों से राजस्थानी गीत परम्परा को चार चाँद लगा दिए हैं। गर्मी की रातों में सहारे ही पूरी करते हैं। श्रावण भाद्रों की बरसात की रातों में जब 'तीजणी' प्रियतम की राह देखती बेचैन हो उठती है, तो विरह लोक गीतों में उद्‌गार प्रकट करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। वीररस का प्रयोग राजस्थानी लोकगीतों में पर्याप्त देखा गया है।

लोक गीतों का सम्बन्ध समाज व परिवार से है। मांगलिक शुभ अवसरों पर भी लोक गीत गाने की परम्परा है। शादी, जन्म, तीज, त्यौहारों पर देवताओं के व अन्य लोकगीतों को गाने की पुरातन परम्परा आज भी विद्यमान है। किसान हल चलाते समय, कीली देते समय, चरखा व ऊँट लड्‌डा चलाते समय लोकगीतों की धुन गुन-गुनाते हैं। लोकगीतों का सृजन समूह समाज ही जिसमें पर्वोत्सवों पर भी लोक गीतों के गाने का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

लोकगीतों में लय का अपना महत्त्व होता है। वह इनकी आत्मा है। सरल अभिव्यक्ति द्वारा गाये जाने वाले गीत ही लोक गीत कहना मेरी सम्मति में समीचीन है। हृदय की अभिव्यक्ति सरल शब्दों के माध्यम से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की आवश्यकता को महत्त्व नहीं देती है। प्रत्येक कड़ी को कम-से-कम दो बार दोहराने से पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति भी प्रकट होती है। गीतों के माध्यम से सामाजिक व व्यावहारिक ज्ञान की उपलब्धि भी होती है। वर्तमान जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार घूसखोरी से उद्विग्न हो एक लोक कवि अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त करता है—

'बलम जी मेरी समझ में नाय परी, जै कैसो भयो स्वराज।
बालम मेरे चोर पंच तो बन गये, प्युसियन को बन्यो समाज।।

बालम जी घूस लेते चौपार पै जै कैसो भयो भारत को राज।
बलम मेरे अत्याचार ज्यादा हो रहयो, भारत को डूबेगो जहाज।।

लोक गीत व उनके प्रकार

लोक गीतों का वर्गीकरण करना दुर्लभ है। लोक जीवन व संस्कृति, सभ्यता, परिवेश को मुखाकार करने का कार्य लोकगीतों का ही है। मैंने इनका सम्यक् अध्ययन व विश्लेषण करने पर 14 प्रकारों को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है, जो निम्नानुसार है (1) संस्कार गीत (2) ऋतुओं के गीत (3) देवी-देवताओं के गीत, लोक देवताओं के गीत (4) रातीजुगा के गीत (5) संयोग के गीत (6) वियोग के गीत (7) विदाई के गीत (8) स्थान के महत्त्व के गीत (9) श्रम के गीत (10) वीरगति (11) जातीय गीत (12) संतो या सिद्धों के गीत (13) मेले के गीत (14) घुड़ले के गीत आदि प्रमुख हैं। लोक साहित्य तो वैसे सम्पूर्ण राजस्थान प्रदेश के क्षेत्र का ही श्लाघनीय है किन्तु मेरा शोध कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण राजस्थान प्रदेश की अपेक्षा पूर्वी राजस्थान के करौली, सवाई माधोपुर क्षेत्र के लोकगीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन है। पूर्वी अंचल के लोकगीतों में इन्हीं स्वरूपों को देखा गया है। यद्यपि भाषा बोली में भिन्नता है; लेकिन अर्थ स्वरूप व परम्परा का मिश्रण एक ही है। स्त्रियों की त्रासदी से विक्षुब्ध होकर कवि कहता है।

'भारत में अबलान की हो रही मिट्टी खार।
होय अनादर कुटुम्ब में, पावे नहीं सत्कार।।'[1]

लोकगीत

लोकगीतों का ब्रज प्रदेश में अपार भण्डार है। ब्रज में प्रत्येक अवसर के प्रत्येक संस्कार के गीत प्रचलित हैं। ब्रज के लोकगीतों को डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती ने दो वर्गों में विभाजित किया है—

1. अनुष्ठान या आचार सम्बन्धी

2. मनोरंजन-परक

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीय राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य पृ. 47

अनुष्ठान या आचार-सम्बन्धी गीत मनुष्य के किसी-न-किसी संस्कार से सम्बद्ध होते हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार मनुष्य के जीवन में सोलह संस्कारों की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। इन सोलह संस्कारों में से तीन अत्यन्त महत्त्व के हैं—जन्म, विवाह तथा मृत्यु। ये मानव जीवन के विशेष अवसर हैं। शेष अन्य संस्कार मुण्डन, उपनयन, कर्णछेदरन आदि इतने अधिक महत्त्व के नहीं है। ये शेष तेरह संस्कार मुख्य तीन संस्कारों से भिन्न भूमिका रखते हैं। प्रत्येक संस्कार के हमें दो रूप दिखाई देते हैं। एक पौरोहित्य सम्बन्धी दूसरा लौकिक। पौरोहित्य प वह है, जो किसी पुरोहित के द्वारा मन्त्र आदि के द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। लौकिक वह है, जिसे लोकाचार के आधार पर किया जाता है। उसका उल्लेख किसी स्मृति में नहीं मिला, न ही उसका सम्पादन करने के लिए किसी पुरोहित की आवश्यकता होती है। इसे बहुधा स्त्रियाँ ही कर लेती हैं। घर की स्त्रियाँ परिजनों के यहाँ एवं मोहल्ले-पड़ोस में बुलावा भेजकर घर पर आयोजन करती है और मिल-बैठकर अवसरानुकूल गीत गाती हैं। मनोरंजनपरक गीतों में किसी-न-किसी लोकप्रचलित कथा का पुट रहता है। कुछ गीत तो बहुत लम्बे होते हैं। जैसे—ढोला।

(क) जन्म गीत

ब्रजप्रदेश में जन्म सम्बन्धी अनुष्ठानों का लम्बाकार्यक्रम होता है। गर्भाधान से प्रसव तक का संस्कार 'पुंसवन' संस्कार होता है। यह संस्कार लोक समाज में इस संस्कार के नाम से विख्यात नहीं है। वहीं इसे 'साध पूजना' कहा जाता है। लोक की प्रतीक शैली में इसे 'चौक' भी कहते हैं। गर्भ के सातवें मास में यह संस्कार होता है। पति और पत्नी को चौक पर बिठाया जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सौहर' कहा जाता है। 'सौहर' गीतों में एक गीता ऐसा होता है जो गर्भिणी की प्रत्येक मास की दशा को वर्णित करता है।

पहला महीना जब लागिए, बाकौ फूलु गह्यो फलु लागिए
ए बाई दुजौ महीना जब लागिए
राजे तीजौ महीना जब लागिए, बकौ खीर खांड मन आइए।

(ख) विवाह गीत

जन्म के उपरान्त विवाह संस्कार ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। विवाह संस्कार का आरम्भ 'पक्की' से होता है। पक्की हो जाने के उपरान्त सगाई होती है। लड़की वाला कुछ भेंट नाई तथा ब्राह्मण के हाथ भेजता है। 'लड़का' चौक पर बैठकर उस भेंट को ग्रहण करता है। जो सम्बन्धी वहाँ आते हैं, उन्हें सगाई चढ़ जाने पर पान के बीड़े तथा बताशे बाँटे जाते हैं। सगाई पर यह गीत गाया जाता है—

चंदनऊ की चंदन पलिकिया गढ़ि लाऊ लाल लुहारके।
अंचनवि–मंचवनि मँमर डराये, पाटिन अरसी लगाद् ए।
रेसम बान बुनाई पालिकिया, दौनि लगाई मखतुल की।
आदूत–पादूत गिड़ुआऔ लागै, सबाउ दरियाए की सौरिए।
जा पर बैठ दोऊ मिलि साजन खेलत झुझना सारिए।

वैवाहिक मंगल कार्यों का आरम्भ 'पीली चिट्ठी' से होता है। कन्या पक्ष से 'पीली चिट्ठी' आती है। उसमें विवाह की तिथि निश्चित होती है तथा लगुन की तिथि भी तय होती है। इसके उपरान्त बुआ एवं बेटी–बहिनों को निमन्त्रण भेजे जाते हैं। ये सभी लगुन लिखे जाने से पहले ही विवाह वाले घर में आ जाते हैं। निश्चित तिथि को 'लग्नपत्रिका' आती है। यह विधिवत् लड़की के हाथ पर रखी जाती है। उधर वर पत्रिका लड़की के हाथ पर रखी जाने के पश्चात् लड़के के यहाँ आती है। 'लग्नपत्रिका' पंडित लिखता है जिसमें विवाह का पूरा कार्यक्रम लिखा होता है। लगुन लिखकर जिस लड़की का विवाह होता है, उसके हाथ पर रोली–अक्षत लगाकर कलाई से बाँधकर लगुन रखी जाती है। उस समय महिलाएँ लगुन गीत गाती है—

लगुन गीत–हाथ डंडा मुख और खेलत है चौहान मनोहर साँवरे।
घर आओ न लाल लड़ाइते, लगुनादूत ऊबे हार मनोहर साँवरे।
लला कौन रुके तुम नौतियाँ, और कौन बबुल के पूत, मनोहर सांवरे।
लला अपुने अजुल के नौतिया, अरु अपने बबुल रजपूत मनोहर सांवरे।

इस लगुन गीत में सम्पूर्ण वंश जैसे बाबा, ताऊ, पिता, चाचा, दादी, ताई, माता, चाची, बहन आदि के वर्णन मिलते हैं। पूरा परिवार इस विवाह से प्रसन्न है और कन्या पक्ष के लोगों को लगता है कि अब तो बेटी परायी हो रही है।

भाँवर गीत

हिन्दू संस्कृति में भाँवर (फेरे) लेने पर कन्या पत्नी के रूप में पति की हो जाती है। मीन मेख मृदंग बाजै, गीत मुनियर पराहि भाँवर सबरी, अजुध्या, मिथिलापुरी को राज रामचन्द्र सीता भाँवर–परै।

पहली भवरियाँ जेऊ बेटी बाप की,
दूजी भवरियाँ जेऊ बेटी बाप की।
तीजे भवरियाँ जेऊ बेटी बाप की,
चौथी भवरियाँ जेऊ बेटी बाप की,
× × ×
सातवीं भवरियाँ अब बेटी ससुर की।[1]

विवाह के अवसर पर होने वाले सभी रीति–रिवाजों व रस्मों के पश्चात् अन्त में लड़की की विदाई होती है। यह विवाह का सबसे हृदयस्पर्शी, मार्मिक, दर्दभरा समय होता है कि लड़की अपने घर के सभी सदस्यों माँ–बाप, भाई–बहन, भाभी, दादा–दादी, चाचा–चाची, ताऊ–ताई को छोड़कर अपने पिया के घर जाती है। इस अवसर पर स्त्रियाँ विदाई गीत गाती है—

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 12

ओहो मेरी सोनू चिरैया उड़ चली
बाबूल तैने दई मै निकार
जैसे जल की माछरी
मैया मेरी रखियो दुलार
चाचा मेरे दईऊँ निकार
जैसे जल की माछरी
चाची ने राखियो दुलार
जैसे गुर की माथरी।[1]

एक विदाई गीत —

और हे कौरे गुड़िया ओ घोड़ी।
रोवत घोड़ी सहेलीरी।।
अपनो बाबुल कौ देस छोड़यो।
अपने ससुर के साथ चाली।
ले न बासुल घर आपनौ।
छोटे बिरन पकरौ रथ को डंडा।
हमारी बहन कहाँ जाइ।
छोड़ौ बिरन मेरे रथ कौ डंडा।।
अपनी परायी पराई अपनी।
जै कलियुग ब्यौहारु।।

(ग) व्रत–त्यौहार और देवी गीत

ब्रज लोकगीतों के व्रत–धर्म एवं देवी–गीतों का विशेष स्थान है। मूलत: ब्रज का लोकजीवन धार्मिक आस्थाओं पर आधारित जीवन है। अत: इस जीवन में व्रत, त्यौहारों, उत्सवों का अपना विशेष महत्त्व है। व्रत, अनुष्ठान ब्रज जीवन में प्राय: होते रहते हैं। प्रत्येक मास में कोई–न–कोई व्रत एवं त्यौहार ब्रजवासी धूमधाम से मनाते हैं,

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 12

जिनमें इन अवसरों पर सामूहिक या एकाकी रूप में लोक भजन आदि गाते हैं। इन भजनों का रूप गीतों जैसा ही होता है। करौली व सवाई माधोपुर जिलों में अनेक देवी, देवताओं के गीत गाये जाते हैं—

देवीगीत

ब्रज लोक जीवन वैसे तो कृष्णमय जीवन है परन्तु यहाँ प्रत्येक देवी-देवता को महत्त्व दिया जाता है। लोकजीवन देवी पूजा, आराधना तथा भक्ति भी तन्मय होकर करता है। ब्रज में नव दुर्गा अथवा नवरात्रि चैत्र मास में होती है। इस अवसर पर देवी जागरण, देवी दर्शन आदि किया जाता है। रात-रात भर जागकर देवी के गीत गाये जाते हैं। घर-घर में देवी पूजा होती है। व्रत रखे जाते हैं। कन्या लांगुरा जिमाये (खिलाये) जाते हैं। देवी जागरण के गीत भगत कहलाते हैं। देवी गीत स्त्री और पुरुष सभी गाते हैं। इन गीतों में देवी के प्रति भक्ति, माता की उदारता एवं माता के जनकल्याणरूप का ही वर्णन रहता है। देवी पुत्रविहीना महिला को पुत्र देती है—

मैया रही है नंदन वन छाय फूलन को लोभिमियां
मैया लै द्वारे पल बाँस पुलार ठाडी मैया देऊ पूत घर जाय
मैया के द्वारै परु निरधन पुलार ठाडौ, मैया देऊ अन्न धन घर जाय।

लागुरियाँ

राजस्थान स्थित करौली नामक नगर में कैला देवी का प्रसिद्ध मन्दिर एक पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ भक्तों के ठहरने के लिए आस-पास अनेक धर्मशालाएँ भी बनी हुई हैं। यहाँ आस-पास चारों ओर घने जंगल हैं तथा काली सिंध नदी पास से निकलती है।

ब्रज के लोकजीवन में कैला माँ की उपासना का बहुत महत्त्व है। ब्रज लोक जीवन में लागुरियां गीत बहुत प्रचलित हैं। इन गीतों की धुन बड़ी सरल व रसीली है। नवरात्रियों में घर-घर लागुरियां गाया जाता है। लागुरियां के विषय में यह कहा जाता

है कि वह देवी का विशेष उपासक था। वह सदा देवी की सेवा में रहता था। करौली में कैला देवी के मंदिर के बाहर लागुरियां की मूर्ति देवी की ओर मुख किये खड़ी है। यात्री लागुरियां के भी दर्शन करते हैं।

गीतों में बालकों तथा पुरुषों के लिए लागुरियां शब्द का प्रयोग किया जाता है तथा स्त्री–भक्तजनों को जोगिन कहा जाता है। कैला देवी के मंदिर में जात देने वालों का तांता बना रहता है। कहा जाता है कि लांगुरिया की उपासना से मन की साध भी पूरी होती है।

हारे लंगुरियां जात करन तेरी हम आये
हम ठाडे तेरे द्वार लंगुरियां, जात करन तेरी हम आये।
तेरी मूरत कैसी प्यारी है। तेरी सूरत पर बलिहारी है।
रे लंगुरियां अरज करन तेरी हम आये। हाँ लंगुरियां
तेरी परकम्मा में भीर भरी, सब लोग लुगाई नाचत है।

लाँगुरिया गीत—

दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लाँगुरिया,
छोटी जोगनी यों कहें काँटा लाय दे मोय।
बड़ी जोगनी यों कहें जूड़ा लायदे मोय।
दो–दो जोगनी ...
छोटी जोगनी यों कहे हरवा लायदे मोय।
बड़ी जोगीनी यों कहे सेन्डिल लाय दे मोय।।
दो–दो जोगनी ...
छोटी जोगनी यों कहे मोटर लायदे मोय।
बड़ी जोगीनी यों कहे हेलीकोप्टर लाय दे मोय।।
दो–दो जोगनी ...

थाली भरा भोजन मिला पानी भरा गिलास।
माता तेरी याद में भूख लगे न प्यास।।
दो–दो जोगनी ...
डोरी डालू तो महल चढ़ आइयो लाँगुरिया।
चढ़ आइयो लाँगुरिया लड्डू खडयो लाँगुरिया।।
दो–दो जोगनी ...
चूला चला ससुराल को पीकर नौमन तेल।
हाथी घोड़े अगल–बगल कन्धे पर है रेल।।
दो–दो जोगनी ...
चींटी चली बाजार को बाँध गले में ईंट।
सब बजाज यों कहे लट्ठा लेगी के छींट।।
दो–दो जोगनी ...
माताजी के द्वार पर भई भक्तन की भीड़।
शरण इन्हीं के पड़े रहो सबकी हरेगी पीर।।
दो–दो जोगनी ...
नैनों से नीर जारी माँ शरण हूँ तिहारी।
प्यास हूँ दर्शनों को दर्शन दो माँ एकबारी।।
दो–दो जोगनी ...

लाँगुरिया गीत—

माता मैया के भवन में घुटवन खेल लांगुरिया।
घुटवन खेले लांगुरिया रे सरपट दौड़े लांगुरिया।
कैला मैया के भवन ...
माता तेरी गैल में चार जोगिनी जाय।
दो गौरी दो सांवरी रे जोड़ा बिछड़ों जाय।।1।।
कैला मैया के भवन ...

मैयो तेरी गैल में लम्बो पेड़ खजूर।
चढ़े तो मीठे फल चखे और गिने तो चकनाचूर।।2।।
कैला मैया के भवन ...
मैया दर्शन दीजिए चढ़कर सिंह सवार।
एक हाथ में खप्पर लेकर एक हाथ में तलवार।।3।।
कैला मैया के भवन ...
मैया तेरे भवन में नौबत बजती द्वार।
घन्टन की घनघोर ध्वनि है रही जय जयकार।।4।।
कैला मैया के भवन ...
संगमरमर के महल में कैला रही बिराज।
चामुण्डा माँ संग में तीन लोक में राज।।5।।
कैला मैया के भवन ...

श्री मधुर उप्रेती ने अपनी पुस्तक 'ब्रज लोक साहित्य' में लगुरियां गीतों के सम्बन्ध मेंलिखा है—'जब लोग तीर्थयात्रा करने के लिए जाते हैं, तो मार्ग की थकावट दूर करने के लिए और दूसरे उस देव की आराधना में एक विशेष प्रकार के समयोचित लोकगीतों का आयोजन कर वन्दना के रूप में उस देवता को प्रसन्न करते हैं। जैसे शिवयात्रा में 'बम्बो से'। ब्रज में समय-समय पर गाये जाने वाले लोकगीतों में देवी के साथ 'लंगुरिया' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। लंगुरिया करौली, वरैयावारी, नगरकोटवारी, बैलोनवारी, इटौरावारी, साँचौलीवारी आदि देवी की जातों के लिए जाते समय गाते हैं। जोगिन नाचती है; लांगुरिया ताल देता है और जाती (यात्री) गाते हैं।

दै दै लम्बे चौक लंगुरिया बरसन दिनों में आमिंगे।
अबकै तो हम दूकले ही आये
अबकी जोगिन संग लै आमिंगै। दै दै।

जाहरपीर की ज्योति

ब्रज में जाहरपीर की ज्योति भी जगायी जाती है। देवी जागरण की भाँति इसका भी जागरण होता है। भाद्रपद में गुरु जुग्गा का जन्म होने के कारण इस मास में प्राय: 'ज्योति' जगायी जाती है। इसमें जाहिरपीर का गीत गाया जाता है, जो इस प्रकार है—

गुरु गैला गुरु बाबरा करै गुरून की सेवा है
गुरु ते चेला अति बड़ा तौऊ करै गुरु की सेवा है।

होई आठे के गीत

यह व्रत कार्तिक बदी अष्टमी को स्त्रियाँ रखती हैं। चावल के आटे से चित्र बनाकर उसकी पूजा की जाती है। अहोई देवी के चित्र के साथ बच्चे के चित्र भी बनाये जाते हैं। ये बच्चों की मंगल कामना हेतु पूजन है। केवल पुत्रवती माताएँ ही पूजन करती हैं। माताएँ पूरे दिन उपवास करने के उपरान्त रात्रि में चन्द्रमा और तारों को सात बार अर्घ्य देती है।

न्हौरीं न्हौरीं हम फिरै, अहोई रात की रात।
अहोई मइया अब जुहार फिर जुहार खसम पूत की आस।।

करवा चौथ

कार्तिक कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को यह व्रत किया जाता है। करवा चौथ का व्रत पूजन स्त्रियाँ अपने सौभाग्य के लिए करती है। स्त्रियाँ दीवार पर करवा चौथ बनाती हैं। स्त्रियाँ पूजन करते समय चूड़ी, मेहन्दी, बिन्दी, बिछुआ, महावर आदि रखकर पूजा करती है। करवा चौथ में सात भाइयों की इकलौती बहन भी बनाई जाती है। करवे, कुम्हारिन, महावर लगाने वाली नाइन चूड़ी पहनाने वाली मनिहारिन इसमें बनाई जाती है। इसकी एक प्रचलित कथा भी है। पूजन करते समय स्त्रियाँ गाती है—

करुवा ले करुवा ले
वीर पियारी करुवा ले
बाप भाई की खट्टी खानी
करुवा ले करुवा ले
धोले नाड़े, धोले साढ़े
तेरौ जनम जाइयो
करुवा ले करुवा ले।

एक अन्य गीत के माध्यम से भी करवा चौथ व्रत की महिमा का गुणगान किया गया है—

वीरा कुडिये करवड़ा
सर्व सुहागन करवड़ा
ए कही ना अटेरी ना
× × ×
बहन प्यारी वीरा
ले सर्व सुहागन करवड़ा।

शीतला देवी

करौली व सवाईमाधोपुर में भी चेचक की बीमारी को शीतला माता के नाम से पुकारा जाता है। जनमानस का मानना है कि शीतला माता के प्रकोप से ही लोगों को चेचक निकलती है। यहाँ के लोग इस बीमारी में कोई औषधि नहीं देते बल्कि बीमार आदमी को देवी माँ की कृपा पर छोड़ दिया जाता है। देवी माँ की पूजा कर उनके गीत गाकर, उनकी प्रशंसा कर उस बीमार आदमी के स्वस्थ करने की प्रार्थना की जाती है। जिस घर में किसी व्यक्ति पर शीतला माता का प्रकोप होता है, उस घर में अनेक कड़े नियमों का पालन किया जाता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

चलौ मैंना शीतला पूजन को
माता देवी को आओ पूजन को।
जासी दया से संकट नासें।
दुःख दारिद्र सब जासे त्रासे।
ऐसी मैया को आओ पूजन को,
चलौ मैना शीतला पूजन को।।

होली गीत

फाल्गुन महीने में होली का त्यौहार भारतवर्ष में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर ब्रजवासी बसन्त के उन्माद में मदमस्त होकर होली और रसिया गाते हैं। इन गीतों में प्रेम और यौवन का चित्रण अधिक मात्रा में देखने को मिलता है। ब्रज में बसन्त पंचमी के दिन से ही होली का आरम्भ हो जाता है। जगह-जगह होली के डांडे लगा दिये जाते हैं। गुलाल की होली आरम्भ हो जाती है।

बसन्त के आगमन के साथ ही लोकजीवन में होली के डफ बजने प्रारम्भ हो जाते हैं। मन में उत्साह, नयनों में नवीन ज्योत, साँसों में सुगन्ध इस अवसर पर सभी के मन में उतर आती है। श्रीकृष्ण व राधा की होली खेलने का वर्णन इन लोकगीतों में अत्यधिक रहता है। करौली व सवाई माधोपुर जिले में होली का त्यौहार विशेष रूप से मनाया जाता है। इसे रंगों का त्यौहार भी कहते हैं—

ऐसे स्यामु खिलार, रंग में रंग हारी
काहै को पचरंग बनायौ-काहै को
काहे की पिचकारी, रंग में रंग डारी
ऐसे स्यामु खिलार, रंग में रंग डारी।

एक अन्य गीत—

होली

आ जईयो श्याम बरसाने गाँव तोय होरी खूब खिलाय दऊंगी
तोय रंग में खूब रंगाय दऊंगी।

1. **कान्हा यो मत जाने भोरी है। हम बरसाने की गोरी हैं।**
   तेरे कर सोलह शृंगार श्याम तोय नर से नारि बनाय दऊंगी।
   तोय होरी खूब खिलाय दऊंगी। आ जईयो श्याम ...
2. **ये बंसी सौत हमारी है। तेरे प्राणन से प्यारी है।**
   तेरे पतले–पतले होठ, होठ पै लाली चटक लगाय दऊंगी।
   तोय होरी खूब खिलाय दऊंगी। आ जईयो श्याम ...
3. **तोय लहंगा चोली पहनाऊंगी। तेरे माथे बिंदियां लगाऊंगी।**
   तोय पहनाके पायल, उढाके चूंदर ठुमक ठुमक नयवाय दऊंगी
   तोय होरी खूब खिलाय दऊंगी। आ जईयो श्याम ...
4. **तोय सखा मनसुखा प्यारों है। तेरी आंखन को तारों है।**
   तेरे श्याम सलोने गाल, गाल पै रोरी खूब लगाय दऊंगी।
   तोय होरी खूब खिलाय दऊंगी। आ जईयो श्याम ...

लोक कहावतें

कहावत कुछ शब्दों का समूह है जो विशिष्ट सांकेतिक अर्थ की व्यंजना के लिए जन सामान्य द्वारा प्रयुक्त है। वस्तुत: कहावत एक 'शब्द है जो विशिष्टार्थ व्यंजना को अपने में समावेशित करती प्रतीत होती है। सामाजिक प्रचलन के कारण उसी अर्थ को स्वीकार कर लेता है। सूक्तियों के पीछे सामाजिक अनुभव की अचेतन सत्ता कार्य करती है। विभिन्न कार्यों के दौरान घटनाओं में प्रकृति के कार्य व्यापारों में पशु–पक्षियों के व्यवहारों में और मानसिक उद्वेलन की स्थितियों में सादृश्य या विरोधमूलकता शाब्दिक श्लेष या शब्द वैचित्र्य प्रास था तुक कल्पना से अनुभूत सव्यक्ति वाक्य या पद में निर्मित हो जाता है। निश्चित है कि इस प्रकृति का जन्म वाणी या भाषा के साथ ही हो गया होगा और मनुष्य के विकास के क्रम में उसने नित्य नवीनता ग्रहण की होगी।

लोकोक्ति या कहावतें लोक साहित्य की महत्त्वपूर्ण निधि हैं। कहावत शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य व हिन्दी लोक साहित्य में प्रयुक्त होता है। वैदिक कालीन तथा पौराणिक कालीन काव्य में लोक गीतों, लोक कथाओं व लोक उक्तियों व कहावतों का प्रयोग बहुतायत देखने को मिलता है। प्रस्तुत शब्दों का वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं हुआ हैं। प्रथम नीति मंजरी नामक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।[1] प्रस्तुत मंजरी के आठ अध्यायों में दो सौ श्लोक हैं। श्लोक के पूर्व में कोई सूक्ति या कहावत है और उत्तरार्द्ध में ऋग्वेद की कथा का स्पष्टीकरण है। सूक्तियाँ और सुभाषित शब्द कहावत या लोकोक्ति दृष्टिगोचर होती हैं। जनसाधारण में कहावतों का विशिष्ट महत्त्व प्रतिपादित है।

कहावत शब्द को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतमतान्तर हैं। **डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल** प्राकृत 'कहाप' धातु से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए 'त' प्रत्यय जोड़कर 'कहावत' होना सिद्ध करते हैं। **रामदहिन मिश्र** के अनुसार 'कहावत' से कहावत शब्द की व्युत्पति माना है। कतिपय विद्वान् कह धातु के आगे अरबी का 'आवत' प्रत्यय लगाकर 'कहावत' शब्द की व्युत्पति मानते हैं। अन्य 'कथापत्य' कथापुत्र 'कहाउत' आदि अनुमानिक शब्दों से कहावत की व्युत्पति मानी है। कह + आवत से कहावत के लिए कहनावति शब्द को अपनाया है। डॉ. कन्हैया लाल सहल ने कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में दो बातें कहीं है। प्रथम तो कहावत शब्द किसी संस्कृत के शब्द से आया है तो 'कथावत' शब्द से ही इसका घनिष्ठ सम्बन्ध बैठता है। दूसरा यदि कहावत शब्द सादृश्य के आधार पर प्रचलित हुआ है तो लिखावट, सजावट आदि के सादृश्य के आधार पर कहावट (कहावत) शब्द का बन सकना असंभव नहीं है।[2] कहावतों का मूल आधार पुरातन परिपाटियों या क्षेत्रीय रूढ़ियों को भी महत्त्व प्रदान करती है। भाषा चाहे हिन्दी हो या राजस्थानी। यदि राजस्थानी भाषा–विज्ञान की चर्चा करें तो 'कहावत' शब्द के लिए 'कैवत' केहावत, कुहावट, कुवावट व कुहावत शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'कहावत' का हिन्दी

---

1. नानूराम संस्कर्त्ता : राजस्थानी लोक साहित्य पृ. 149
2. सं. कन्हैया लाल सहल : राजस्थानी कहावतें द्वितीय संस्करण 2005 पृ. 44

पर्यायवाची लोकोक्ति ही है। इसके अतिरिक्त अपने कथन की पुष्टि हेतु तर्क स्वरूप जब किसी कहावत को व्यवहार में लाया जाता है तो कभी-कभी कहावत के उच्चारण से पूर्व भिन्न दो वाक्याशों का प्रयोग प्राय: सुनने में आता है।[1] निष्कर्ष रूप में कहावत वह पारम्परिक वाक्य है जिसमें पिता का अनुभव अन्तनिर्हित है एवं वह अनुभव कथन पुत्र का मार्ग दर्शन करता रहता है। (यहाँ पिता पुत्र से जो अर्थ लगाया है वह विगत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों पीढ़ियों से है।) इस प्रकार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में कहावतों का हस्तान्तरण होता है और विविध भाषाओं में नया-नया रूप धारण करते हैं। इस विद्या में शब्द शक्तियों का प्रयोग बहुतायत देखा गया है।

परिभाषाएँ :- भारतीय विद्वानों के मतानुसार

डॉ. सत्ये के अनुसार :- लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर लोकोक्ति के दो प्रकार माने जा सकते हैं - 'एक पहेली, दूसरा कहावतें।'[2]

डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार 'लोकोक्तियाँ' अनुभूत ज्ञान की निधि हैं।[3]

डॉ. शंकर लाल यादव के अनुसार 'लोकोक्ति वह लोकाभिव्यक्ति है जो ईमानदारी के साथ लोक के अनुभव को लेकर कही गई है।[4]

रामेश्वर अशान्त के अनुसार 'कहावतें हमारे देश की निधि हैं, जो प्राचीन महानता की परिचायक हैं।'[5]

नानूराम संस्कर्त्ता के अनुसार 'कहावत कतिपय शब्दों के समूह हैं, जो विशिष्ट सांकेतिक अर्थ की व्यंजना के लिए जनसामान्य द्वारा प्रयोग में लिया जाता है।

---

1. संस्कृति नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य द्वितीय संशोधित संस्करण वर्ष 2000 पृ. 151, 152
2. वहीं पृ. 154
3. वही पृ. 154
4. वही पृ. 154
5. वही, पृ. 154

इन शब्दों से प्राप्य अभिद्यार्थ सहज दिखाता हो किन्तु प्रसंगानुकूल उनकी व्यंजना किसी सामाजिक रूप से अनुभूत सत्य को व्यक्त करती हैं।'[1]

डॉ. कन्हैया लाल सहल के अनुसार 'अपने कथन की पुष्टि में किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से किसी बात को किसी की आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपलम्भ देने से किसी पर व्यंग्य कराने के लिए अपने में स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस सारगर्भित लोक प्रचलित संक्षिप्त उक्ति का लोग प्रयोग करते हैं, उसे सामान्यत: कहावत का नाम दिया जा सकता है।'[2]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार

अरस्तु के मतानुसार :- तत्त्व ज्ञान के खण्डरों में से चुनकर निकाले हुए टुकड़े/बचा लिए अंश कहावते हैं।[3]

हावेल के अनुसार :- कहावतें जनता की वाणी है।[4]

फीस्ते के अनुसार :- कहावतें व्यावहारिक जीवन के मार्ग दर्शक है।[5]

रिवारोल के अनुसार :- कहावतें जनता के अनुभवों का फल, एक वाक्य में बंद किया हुआ अनेक युगों का चातुर्य है।[6]

ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी डिक्सनरी के अनुसार :- जनता में प्रचलित कोई छोटा सारगर्भित वचन अनुभव अथवा निरीक्षण निश्चित या सबको ज्ञात किसी सत्य को प्रकट करने वाली कोई संक्षिप्त उक्ति कहावतें है।[7]

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य, 2000 पृ. 152
2. सं. कन्हैया लाल सहल : राजस्थानी लोक कहावतें द्वितीय संशोधित संस्करण 2005 पृ. 44
3. सोहनदास चारण : राजस्थान लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन पृ. 322
4. वही पृ. 322
5. वही पृ. 322
6. वही पृ. 322
7. सोहनदास चारण : राजस्थान लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन, पृ. 153

अंत में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मत मतान्तरों का विश्लेषणात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कहावतें एक विस्तृत जन समूह रूपी जननी की कोख से जन्म लेती है। जिनका महत्त्व सर्वकालिक और सार्वदेशिक है। जो आडम्बर रहित और मार्गदर्शक के रूप में विख्यात है।

राजस्थानी लोक कहावतें

राजस्थानी साहित्य में लोक कहावतों का अपना महत्त्व है। विद्वानों के विविध मतों के पश्चात् निष्कर्ष रूप में लोक कहावतों का वर्गीकरण सम्यक् रूप को आलोकित करता है। डॉ. कन्हैया लाल सहल के मतानुसार 'रूप और वर्ण्य विषय दोनों को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक छन्द, अलंकार, लौकिक न्याय, अध्याहार, संवाद, संख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्त्वों पर विचार किया है जिन्होंने राजस्थानी कहावतों के रूप को किसी-न-किसी अंश में प्रभावित किया है। वर्ण्य विषय को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का निम्न लिखित वर्णन किया है[1]:-

(1) राजस्थानी

(2) स्थान सम्बन्धी

(3) राजस्थानी कहावतें में समाज के चित्र को जाति व नारी सम्बन्धों से जोड़ा है।

(4) राजस्थानी कहावतें

(5) धर्म और जीवन दर्शन

(क) धर्म और ईश्वर सम्बन्धी कहावतें

(ख) शकुन सम्बन्धी कहावतें

(ग) लोक विश्वास विषयक कहावतें

(घ) जीवन दर्शन सम्बन्धी कहावतें

---

1. डॉ. सत्ये : लोक वार्ता की पगडण्डियां प्रथम संस्करण 1974 पृ. 176

(6) कृषि विषयक कहावतें

(7) वर्षा विषयक कहावतें

(8) परकीर्ण कहावतें आदि प्रमुख गुण हैं।

लोक पहेलियाँ

'पहेली' शब्द मूलत: संस्कृत के 'प्रहेलिका' शब्द का विकसित रूप है। जिसका तात्पर्य "अभिप्राय सूचन की अर्थ प्रतीति होती है। इसे दुर्विज्ञानार्थ प्रश्न और कूटार्थ भाषा कथा जैसी संज्ञाओं से भी अभिहित किया गया है। इसमें व्यक्त अर्थ कुछ और ही होता है और मुख्यार्थ का स्वरूप गोप्य होता है। पहेली का अर्थ किसी को कठिन समस्या में या उलझन में डाल देना।"[1] **डॉ. मनोहर शर्मा व नानूराम** ने राजस्थानी में पहेलियों को 'आडी', 'अडबी' या 'पाली' कहा है।[2] 'आड़ी' का अर्थ वाग्रोक (किश्त) दे देना होता है और पाली 'पाल' अथवा सीमा को कहते हैं। जिसमें किसी व्यक्ति को पहेली पूछकर कब्जे में (कैद) करके अर्थ में बाँध दिया जाता है। राजस्थान की यही 'पाली' हिन्दी में 'फाली' कहलाती है।[3] आज भी राजस्थान प्रदेश में बड़े बुजुर्गों द्वारा नानी द्वारा बच्चों को फाली (पाली) के विषय में तर्क-वितर्क करते सुना जाता है।

शिक्षाविद् एवं आलोचक पं. नानूराम ने 'पहेली' शब्द संस्कृत के उसी ब्रह्मोदय का पर्याय एवं प्रहेलिका का तद्भव रूप है। हमारे देश में इसका प्रचलन वैदिक काल से पाया जाता है। **फ्रेजर** के अनुसार पहेलियों की रचना अथवा उदय

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य द्वितीय संस्करण 2000 पृ. 189
2. मनोहर शर्मा : राजस्थानी लोक साहित्य प्रथम संस्करण 1982 पृ. 84
3. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य द्वितीय संस्करण 2000 पृ. 189

उस समय हुआ होगा, जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन होगी।[1] रीतिकालीन कवि केशव के अनुसार :-

''बरनियवस्तु दुराय जहं कीनहुं एक प्रकार।
तासौ कहत प्रहलिका कवि कल बुद्धि उदार।।

आगे कवि बांकीदास द्वारा कही हुई उक्ति दृष्टव्य है :-

''काढै दौसण कायवां बातां दियै विगोय।
पूछे अरथ पहेलियां सभ्य मजाकी सौय।।''

बृहत्त हिन्दी कोश के अनुसार :- पहेली किसी की बुद्धि या समझ की परीक्षा लेने के काम का एक प्रकार का प्रश्न वाक्य या वर्णन है। जिसमें किसी वस्तु का भ्रामक या टेढ़ा-मेढ़ा लक्षण देकर उसे बूझने या अभिप्रेत वस्तु का नाम बताने को कहा जाता है।[2]

पं. रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार इन्होंने बूझोवल की पहेली का पर्याय मानते हुए लिखा है कि 'बच्चों की बुद्धि पर ज्ञान चढ़ाने के लिए गावों में बहुत-सी पहेलियाँ जिन्हें बुझौबल कहते हैं, प्रचलित है। बुझैवल बड़े गूढार्थक होते हैं।'[3]

डॉ. सोहन दास चारण के अनुसार :- पहेली अभिव्यक्ति का वह प्रकार है, जिसमें अर्थज्ञान के लिए लक्षणा या व्यंजना का सहारा लेना पड़ता है। पहेली में बहुत-से ऐसे शब्दों की योजना रहती हैं जिनका अर्थ प्रस्तुत में कुछ नहीं होता और होता भी है तो भ्रामक या अस्पष्ट परन्तु प्रकरण में आकर उन्हीं शब्दों में अर्थ द्योतकता आ जाती है।[4]

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य द्वितीय संस्करण 2000 पृ. 183, 184
2. सोहन दास चारण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन, पृ. 344
3. वही पृ. 344
4. सोहन दास चारण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन, पृ. 345

लोक पहेलियाँ

1.	ऐसा क्या है जिसका आना भी खराब और जाना भी खराब।	**आँख आना**
2.	लाल घोड़ा रुका रहे, काला घोड़ा भागता जाए, बताओ कौन।	**आग, धुआँ**
3.	काली है पर काग नहीं, लम्बी है पर नाग नहीं, बलखाती है पर डोर नहीं, बाँधते हैं पर डौर नहीं।	**चोटी**
4.	पूछो भैया एक पहेली, जब कटाओ तो नयी नवेली।	**पैन्सिल**
5.	काली काली माँ, लाल-लाल बच्चे, जिधर जाए माँ, उधर जाये बच्चे।	**ट्रेन**
6.	मैं मरू मैं कटू, तुम क्यों रोते हो, बताओ मैं कौन हूँ।	**प्याज**
7.	बीमार नहीं रहती मैं, फिर भी खाती हूँ गोली, बच्चे बूढ़े सभी डर जाते हैं, सुनकर इसकी बोली।	**बन्दूक**
8.	अगर नाक पर चढ़ जाऊ, कान पकड़ कर तुम्हें पठाऊँ, बताओ मैं क्या हूँ।	**चश्मा**
9.	दुनिया भर की करता सैर, धरती पै न रखता पैर, दिन में सोता रात में जागता, रात अंधेरी मेरी बगैर। जल्दी बताओ मैं कौन?	**चन्द्रमा**
10.	काला घोड़ा, सफेद सवारी, एक उतरा दूसरे की बारी।	**तवा रोटी**
11.	ऐसी कौन-सी चीज है, जिसे जितना खींचों वो उतरी ही छोटी होती है।	**बीड़ी और सिगरेट**
12.	लड़की के पास वो कौन-सी चीज है जो उसके पास शादी से पहले होती है और शादी के बाद भी पर शादी वाले दिन नहीं होती।	**सरनेम (उपनाम)**

13. खरीदने पर काला, जलाने पर लाल, फेंकने पर सफेद। **कोयला**
बताओ ये क्या है?

14. एक राजा की अनोखी रानी, दम के सहारे पीती पानी। **दिया (दीपक)**

15. एक फूल है काले रंग का, सिर पर हमेशा सुआए, **छाता**
तेज धूप में खिल खिल जाता, पर छाया में मुरझाए।

16. तुम न बुलाओ मैं आ जाऊँगी, न भाड़ा न किराया दूँगी, **हवा**
घर के हर कमरे में रहूँगी, पकड़ न मुझको तुम पाओगे,
मेरे बिन तुम रह न पाओगे।

17. गर्मी में तुम मुझको खाते, मुझको पीना हरदम चाहते, **पानी**
मुझसे प्यार बहुत करते हो, पर भाप बनू तो डरते भी हो।

18. मुझे में भार सदा ही रहता, जगह घेरना मुझको आता, **गैस**
हर वस्तु से गहरा रिश्ता, हर जगह में पाया जाता।

19. हरी डण्डी, लाल कमान, तोबा तोबा करे इन्सान। **लाल मिर्च**

20. दो सुंदर लड़के, दोनों एक रंग के। **जूता**
एक बिछुड़ जाए तो दूसरा काम न आए।

21. पढ़ने में लिखने में, दोनों में ही आता काम **चश्मा**
पेन नहीं कागज नहीं, क्या है मेरा नाम

22. सीने से सीने मिले, मिले छेद से छेद **आटा चक्की**
ढच्चर ढच्चर होके, निकले सफेद सफेद।

लोक साहित्य का विश्लेषणात्मक परीक्षण एवं अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पहेली' फाली लोक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है जो बुद्धि मापक

यंत्र का कार्य भी करता है। मेरी विनम्र सम्मति में 'फाली' मनोविज्ञान जगत् सें जुड़ी किंवदंतियों का वह एक हिस्सा है, जो मानव मस्तिष्क सृजन पर अपना प्रभाव छोड़ती है। उपमेय उपमान (प्रस्तुत) अप्रस्तुत की माँग करता है। इनका वर्गीकरण निम्नानुसार है:- (1) खेत सम्बन्धी (2) भोजन (3) घरेलू वस्तु (4) प्राणी, प्रकृति अंग प्रत्यय और अन्य।

लोक गाथा (पवाड़े)

गद्य

लोक शब्द के अर्थ में व्यष्टि भाव-समष्टि भाव में विलीन हो जाता है। अत: लोक + गाथा शब्द विशेष अर्थ ग्रहण किया हुआ है। गाथा के लिए संस्कृत भाषा में 'गाथ:' शब्द मिलता है। गाथा शब्द को गाथ: से सम्बन्धित कर कोषकार ने इसे 'गै' धातु से व्युत्पन्न माना है। 'गै' का अभिप्राय है 'गाना'।[1] मेरी विनम्र सम्मति में गीत शब्द से ही गाथा बनता है। गीत पुरातन ग्रन्थों को भी दृष्टिगत होता है। गीत अर्थ में गाथा शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वेदों में देखने को मिलता है। ऋग्वेद का एक उदाहरण इस व्युत्पति परक अर्थ की गूढ़ता को स्पष्ट करता है।

''त गाथया पुराण्या पुनानम्यनूषत।
उतो कृपत धीतयो देवानां नाम विभ्रमसी।।''[2]

गेयता को संक्षिप्त कथानक को द्योतक कहना सर्वथोचित है। आधुनिक गाथा शब्द का विश्लेषणात्मक अर्थ स्पष्ट करें तो विशालता, गेयता तथा काव्यात्मकता आदि की त्रिवेणी प्रवाहित होकर लोकगाथा को नव्यता प्रदान करती है। आग्लं भाषा के 'Ballad' (बैलेड़) शब्द का समानार्थी शब्द है लोकगाथा। यह 'बैलेड़' शब्द लेटिन भाषा के Ballare के शब्द से बनता है। मूल अर्थ की बात करें हो अर्थ

---

1. सं. कृष्ण कुमार शर्मा, महेन्द्र भानावत : राजस्थानी लोक गाथाऐं प्र.सं. 1968 पृ. 03
2. ऋग्वेद 9/99/4

'नाचना' होता है।[1] भारतीय विचारकों एवं पाश्चात्य विचारकों ने विविध ग्रन्थों के विश्लेषणात्मक अध्ययन पर्यन्त परिभाषाएँ दी हैं जो निम्नानुसार हैं। पौराणिक ग्रन्थों में भी लोकगाथा विषय के सन्दर्भ में कहा है। 'रामायण' में महर्षि वाल्मीकि ने एक प्रसंग में 'लोक प्रवाद' के अर्थ में लौकिक गाथा (गाथेयं लौकिकी) का प्रयोग किया है। उदाहरण दृष्टव्य है:-

''कल्याणीवत गाथेयं लौकिकी प्रतिमातिमें।
ऐति जीवन्तमानन्दो नरं वर्ष शतादपि।।''[2]

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार हिन्दी में लोकगाथा शब्द वृतांत या जीवनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गाथाओं में आख्यानों का सूक्ष्म उल्लेख या संकेत होने पर कालान्तर में यह शब्द आख्यान, कहानी या जीवन वृत्तान्त के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा प्रतीत होता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार लोक गाथा वह गाथा या कथा है, जो गीतों में कही गयी हो।[3]

डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा के अनुसार 'लोकगाथा लोक साहित्य की वह विद्या है जिसमें किसी चरित्र नायक की सम्पूर्ण जीवन कथा स्वाभाविक रूप से वर्णित हो जिसमें लोक मानवीय प्रवृत्तियाँ हों और जिसमें गेयता हो।'[4]

झंवर चन्द मेघाणी ने लोक कथा को कथा गीत कहा है।[5]

डॉ. कृष्ण बिहारी सहल ने लोक गाथा लोक-मानस की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति कहा है।[6]

---

1. उषा कस्तूरिया : राजस्थानी वीर गाथात्मक पवाडे : संरचना एवं लोक परम्परा,1989, पृ. 5, 7, 8
2. वही पृ. 8
3. सोहनदास चरण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन, पृ. 207
4. कृष्ण कुमार शर्मा : राजस्थानी लोक कथाऐं प्रथम संस्करण 1968 पृ. 8
5. सोहन दास चारण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन पृ. 208
6. कृष्ण बिहारी सहल : राजस्थनी लोक गाथाऐं और निहालदे सुलतान पृ. 3

ब्रिटेनिका शब्द कोष में लोक गाथा एक ऐसी पद्य शैली है जिसका रचयिता अज्ञात होता है, जिसमें साधारण उपाख्यान का वर्णन हो और जो सरल मौखिक परम्परा के लिए तथा ललित कला की सूक्ष्मताओं से रहित हो।

प्रो. कीटीज के अनुसार बैलेड़ वह कथा है जो गीतों में कही गयी हो। हैजालिट लोकगाथा को गीतात्मक आख्यान माना है। निष्कर्ष रूप मं लोकगाथा साहित्य के सन्दर्भ में भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के तर्कों व परिभाषओं के विश्लेषण परक अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि लोक–मानस की भावनाओं की सहज मौखिक रूप में अभिव्यक्ति गीत के माध्यम से ही संभव है। लोक कथा या गाथा का अनुसंधनात्मक अध्ययन से तत्त्वों का सम्यक् विवेचन संभव है जो चरित्रनायक की सम्पूर्ण कथा गेयता लोक आदर्श का निरुपण लोक मानवीय प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक प्रवाह आदि का होना आवश्यक है।

राजस्थानी साहित्य की विधाओं में लोकगाथा का अपना विशेष महत्त्व है। गाथा साहित्य का लोक साहित्य में महत्त्व निम्न विशेषताओं से ओत–प्रोत प्रतीत होता है।

(1) मंगलाचरण :– निर्विघ्न समाप्ति हेतु किसी भी रचना में मंगलाचरण होता है जो लोक संस्कृति ही नहीं (वैदिक लौकिक) संस्कृत, हिन्दी भाषा के साहित्य सृजन में प्रथम पद ईश्वर के नाम या स्तुति, कल्याण की कामना से किया जाता है। यह सब भारतीय संस्कृति की परम्परा है। राजस्थानी लोकदेवताओं से पूर्व गणेश स्तुति व अन्य देवी देवताओं की स्तुति की जाती है। वैसे भी लोक गाथाओं में पौराणिक देवताओं व लोक देवताओं व देवियों की स्तुति की गई है। इसे मौखिक साहित्य भी कह सकते हैं। पूर्वी राजस्थान के करौली, माधोपुर क्षेत्र में देवी देवताओं को लेकर गीत, गाथाएँ खूब प्रचलित हैं तथा करौली में कैलामय्या, माधोपुर में रणथम्भोर स्थित गणेश जी को आज भी विवाह आदि उत्सवों में प्रथम निमन्त्रण दिया जाता है ताकि विवाह आदि शुभ कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो सकें। लोक कथाओं को

रोचक और प्रभावी बनाने हेतु मंगलाचरण में एकाध कथा (अर्न्तकथा) को भी जोड़ दिया जाता है। जैसे पश्चिम राजस्थान में '**पाबूजी की फड़**' में फोपे के द्वारा प्रारंभ में गणेश स्तुति करके वाहन मूषक के दाम्पत्य जीवन का वर्णन करना आदि प्रमुख है।

(2) साम्प्रदायिक भावना का अभाव :- लोक गाथा ऐसी सरल एवं सुन्दर विद्या है जिसमें जाति, लिंग, भेद, धर्म, सम्प्रदाय से परे हिन्दी मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई किसी भी धर्म के देवी देवताओं का आह्वान किया जाता है। हिन्दू धर्म के लोग करौली वाली माता को मानते हैं किन्तु जैन मंदिर महावीर जी में भी लोगों की आस्था है जो मेलों में जाकर आनन्द उठाते हैं। अत: गाथा के श्रवण में जाति, लिंग, धर्म का भेदभाव नहीं है।

(3) प्रचलित जनभाषा का प्रयोग :- राजस्थानी लोक संस्कृति बहुरंगी है जिसमें जाति, धर्म, लिंग का भेद नहीं है। राजस्थानी भाषा की बोलियों की मिठास क्षेत्रवार देखने को मिलेगी। साहित्यकार वाचक, संगीतकार साहित्य भाषा की अपेक्षा राजस्थानी के क्षेत्रीय रूप में गीत गाता है। जैसे करौली, माधोपुर, धौलपुर, भरतपुर के आस-पास के हिस्से में होली के गीत। कैला माई गीतों में क्षेत्रीय डांग क्षेत्र की ब्रज का प्रभाव देखने को मिलता है।

(4) सन्दिग्ध ऐतिहासिकता :- राजस्थानी लोक गाथाओं में ऐतिहासिकता है। इनकी कथाओं का मूल आधार इतिहास है किन्तु कुछेक रचनाएँ पौराणिक सन्दर्भों को भी छूती हैं। इनकी घटनाओं व स्थानों में अनिश्चितता होने के कारण संदिग्ध मानी जाती हैं। जिनका कारण गाथा के रचनाकार का अनपढ़ होना है। इतिहास का ज्ञान तो वे श्रुत परम्परा से ही करते हैं। अत: घटनाओं का विकृत होना स्वाभाविक है।

(5) संगीतात्मकता :- गाथा परम्परा का महत्त्वपूर्ण बिन्दु गेयता है जो उसका धर्म है। प्रत्येक गाथा ताल, लय एवं राग में ही प्रस्तुत करते हैं। इसमें वाद्य के रूप में 'रावण हत्था', डेरूँ, थाली, चंग, तन्दुरा आदि लोक वाद्यों का प्रयोग किया

जाता है। वाद्य गायक का कण्ठ माधुर्य तथा कथा सौन्दर्य से परमानन्द की प्राप्ति होती है। इनकी रचना मुक्त छन्द में की जाती है।

(6) गाथा के रूपात्मक गठन में भिन्नता :- किसी गाथा के रूपात्मक गठन का आधार एक जैसा नहीं होता है। यद्यपि राजस्थानी गाथाओं में शास्त्रीय छन्दों का प्रयोग न हुआ हो पर इन सभी में अपना-अपना छन्द विधान है। इनमें समानता भी विद्यमान है और वह है टेक पदों की पुनरावृत्ति। ये टेक पद कभी तो कथा के प्रारंभ की ही एक पंक्ति होते हैं और कभी वर्णन विशेष में तत्सम्बन्धी प्रारंभिक पद्य की प्रथम पंक्ति। कई तौर पर परमात्मा के नाम से नवीन शब्द जोड़ लिये जाते हैं। इन गाथाओं की अभिव्यक्ति कला में भी पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जैसे बगडावत की गाथा अलग ढंग से 'तेजाजी' की अलग तरह से, पाबूजी की फड अलग ढंग है तो निहालदे का अपना अलग तरीका है।

(7) गीतांशों के बीच में गाद्यावतरणों का प्रयोग :- पूर्वी राजस्थान में प्रचलित लोकगीतों में पद्यमयता के साथ-साथ शब्द विन्यास कर गद्यावतरणों को भी प्रस्तुत किया गया है। खण्डों को जोड़कर कथा भी कह दी जाती है तथा गीत में आगे की कथा का विवेचन मिलता है। करौली, सवाई माधोपुर के लोक साहित्य में प्रमुख घटनाएँ गेयरूप में वर्णित है। गाते समय पद्य के बाद कथा कहकर स्वरगति से आगे की ओर बढ़ जाता है। 'पद दंगल, कन्हैया, कीर्तन सुड्डा आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

(8) ऐतिहासिकता का प्रयोग जन प्रचलित भाषा में :- जो गाथाएँ ऐतिहासिक होती है, उनमें केवल नायक या अन्य पात्रों के नाम ही ऐतिहासिक होते हैं। घटना व स्थानों की ऐतिहासिकता संदिग्ध होती है। इनका प्रमुख कारण निरक्षरता। गाथाकार द्वारा गायी रचना लोक भाषा में प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। चिर प्राचीन जन समुदाय में बोली जाने वाली भाषा होती है।

लोक कथाएँ

लोक जीवन से जुडी पुरातन घटनाएँ परम्परागत रूप में घटित-घटनाएँ लोकरूप में प्रचलित रहती हैं। 'मानव ने जिस समय से वाणी की सत्ता प्राप्त की ठीक उसी समय कथा कहने की आदि वृत्ति ने जन्म लिया।'[1] आबाल-वृद्ध मनोरंजन कारिणी लोक-कथा अपनी जीवन्त शक्ति के परिणामस्वरूप मानव की आदिम अवस्था से अद्यावधि तथाकथित वैज्ञानिकता एवं तर्कशक्ति प्रधान युग में भी सर्वसाधारण के कण्ठ का हार बनी हुई है। रुचि और जिज्ञासा ने लोककथा के लिए संजीवनी शक्ति का काम किया है। आदिम मानस का आहलादन् करने वाली लोक-कथा आधुनिक काल में भी मानव के मनोमोदन का प्रमुख साधन है, इससे ही इसकी कालजयी शक्ति का परिचय मिल जाता है। ''राजस्थान में लोक कथा के लिए 'बात' या 'वात' वार्ता शब्दों का प्रयोग होता है।''[2] आंग्ल भाषा का 'फोकलोर' हिन्दी में लोकवार्ता शब्द बनता है। लोकवार्ता में फोकलोर की अपेक्षा अधिक स्पष्टता, भावहीनता और बोधगम्यता है।[3]

लोक कथाओं के सूत्र भी ऋग्वेद के मण्डल 1 सूक्त 24/25 मन्त्र 30 से खोजते-खोजते, ब्राह्मण ग्रन्थों, विशिष्टता शतपथ ब्राह्मण में प्राप्य पुरुरुवा उर्वशी-कथा, ताडंव ब्राह्मण में प्राप्य च्यवन, भार्गव और सुकन्या मानवी, ऐतेरेय ब्राह्मण में शुन: शेय के आख्यान तथा उपनिषदों में गार्गी, याज्ञवल्क्य तथा सत्यकाम-जावाल, संवाद कठोपनिषद् में जनश्रुति की कथा से लेकर पुराणों की कथा-भण्डार तक खोजे जाते हैं।

पूर्वांचल की लोक कथाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन निम्नानुसार प्रस्तुत है:- (1) शिक्षा प्रद (2) धार्मिक लोक कथाएँ (3) अतिप्राकृतिक (4) संवेदनापरक (5) जातिपरक (6) क्रम संबद्ध (7) हास्यपरक लोक कथा।

---

1. कृष्ण कुमार शर्मा : राजस्थानी लोकगाथाऐं प्रथम संस्करण पृ. 19
2. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थान लोक साहित्य द्वितीय सं. पृ. 102
3. मनोहर शर्मा, मोहनलाल पुरोहित : राजस्थानी लोक साहित्य अखिल भारतीय मारवाडी सम्मेलन 1982 प्र.सं. पृ. 87

परिभाषाएँ

डॉ. सत्ये के अनुसार :- **कहानी** लोक-मानस की मूल भावना के रूप को स्थूल प्रतीक से अभिव्यक्ति करती है। यह प्रयत्न जीवन के सभी क्षेत्रों में मिलता है। अत: कहानी की सत्ता की व्यापकता सिद्ध होती है।[1]

डॉ. मनोहर शर्मा के अनुसार :- लोक-वार्ता एक ऐसा साहित्य सागर है, जिसमें गोता लगाने पर अनायास ही गोताखोर को अनेक अनमोल मोती हाथ लग सकते हैं। लोककथाएँ मनुष्य के सम्पूर्ण हृदय और मस्तिष्क का अध्ययन करने वाला शास्त्र है, जो प्रचलित धारणाओं पर आधारित है।[2]

वासुदेव शरण अग्रवाल :- लोकवार्ता एक जीवित शास्त्र है जिसमें लोक की पूर्ण अभिव्यक्ति है। लोक जीवन के बराबर लोकवार्ता का विस्तार है।[3]

हिन्दी साहित्य कोष के अनुसार :- लोकवार्ता समस्त आचार-विचार की वह सम्पत्ति जिसमें मानव का पारम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसका स्रोत लोकमानस है।[4]

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार :- पूर्वांचल की लोक वार्ता व लोक साहित्य को परिभाषित करने में हिन्दी साहित्य कोश व विद्वानों ने अपने-अपने विचार रखे। अब पाश्चात्य विद्वानों द्वारा परिभाषाएँ निम्नानुसार की है-

हेर्ष कोविट्स के अनुसार :- लोकवार्ता संस्कृति के सौन्दर्यात्मक पक्ष की वास्तविक अभिव्यक्ति है।[5]

आर.एस. बोगस :- लोकवार्ता मानवसमाज की व्यावहारिक अथवा अनुभवजन्य संस्कृति है।[6]

---

1. उषा कसूरिया : राजस्थानी वीरगाथात्मक पंवाडे संरचना एवं लोक परम्परा प्र.सं. 1989 पृ. 1
2. सोहन दास चारण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन पृ. 126
3. उपरोक्त पृ. 127
4. मनोहर शर्मा, मोहन लाल पुरोहित : राजस्थानी लोक साहित्य .सं. 1982 पृ. 92
5. उषा कस्तूरिया राजस्थानी वीरगाथात्मक पवाडे संरचना एवं लोक परम्परा प्रथम संस्करण 1989 पृ.सं. 1
6. वही पृ. 91

स्टीथ थाम्पसन के अनुसार :- परम्परा ही लोकवार्ता का मूल है।[1]

क्रेपल के अनुसार :- लोकवार्ता मनुष्य के अमूर्त इतिहास का निर्माण करती है।[2]

कारलोस वीगा के अनुसार :- लोकवार्ता अतिजीवन का विज्ञान है।[3]

सोकोलोव के अनुसार :- लोकवार्ता में प्राचीन सांस्कृतिक अवशेष संचित रहते हैं।[4]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक कथा मौखिक साहित्य का वह प्रमुख अंग है, जिसमें किसी राष्ट्र, देश, नगर या जनपद की संस्कृति का स्पष्ट पुट मिलता है, जो आदर्शवाद एवं प्रचलित धारणाओं पर आधारित होती है। लोकवार्ता में रचयिता का महत्त्व नहीं लोक मानव का प्रधान्य रहता है।

(1) शिक्षाप्रद लोक कथाएँ :- कथा साहित्य का पूर्वांचल में व्यापक प्रचार-प्रसार अन्य साहित्यों की भाँति हिन्दी साहित्य व संस्कृत साहित्य से आंग्ल, ग्रीक, चाइनीज, रूसी में बहुतायत कहानी लिखी गई। संस्कृत की हितोपदेश व पंचतन्त्र की कथाएँ इसी कोटि में हैं। मेरी सम्मति में ऐसी लोक कथाओं का जन्म उस युग में हुआ होगा जब मानव अपने बनौकस यूथ के समाज से निकलकर कृषियुग में प्रविष्ट हुआ होगा। पशुओं के साहचर्य की स्मृति बनाने के लिए उसने ऐसी कथाएँ गढ़ली होंगी। पहले कथाओं के पात्र जन सामान्य या राजावर्ग थे। फिर पशुओं से प्रेरित ऊँट सियार आदि। अपना भाग्य, भौंटिया का हस कुछ इस प्रकार की कहानियाँ हैं। अपना भाग्य को देखें।

''एक राजा ओ। वाकै सात लड़कियाँ ई। वाने सब लड़कीन कूँ इक्ठ्ठो कियो और बोल्यो कै तुम किसके भाग्य का खाती ओ? तब छै लड़की बोली कै हम तुम्हारे

---

1. उषा कस्तूरिया राजस्थानी वीरगाथात्मक पवाडे संरचना एवं लोक परम्परा प्रथम संस्करण 1989 , पृ. 91
2. वही पृ. 91
3. वही पृ. 91
4. वही पृ. 92

भाग्य का खाती हैं। पर सबते लौंरी बोली कै मैं तो अपने भाग्य का खाती ऊ। वा राजा ने बिन छः छोरीन की सादी तो बड़े धूमधाम तै करी और बिननै हंस की सवारी बैठा कै बिदा कियौ। पर वा सबते लौरी छोरी की सादी एक कोढ़ी के संग करदई और वाय पैदल बिदा कर दियौ। बिचारी तहाँ जाके वा कोढ़ी के नाम की एक पानी की लोटा ढारो करै ई, सो बू कोढी अच्छी है तो गयो।''[1] इस प्रकार की लोक कथाओं के माध्यम से राजा व रंक की सामाजिक जीवन से जुडी घटनाओं को लोक-कथाओं के माध्यम से प्रकट किया है।

भौंटिया को हम लोक-कथा में पूर्वांचल की कथा को ले सकते हैं। एक राजा के कोई पूत न औ। एक दिना वाके दरबार में एक साधु आयो। वा साधू से राजा ने अपना दुःख कहो। साधु नै कई कै अच्छा कल तो साँप महल में घुसेगा बू राजकुमार बन जावेगो। ई कह के साधु म्हा तै चल दियो। दूसरे दिना राजा के महल में एक साँप घुसो वू राजकुमार बन गयो। तो वा राजा नै वा राजकुमार को ब्याह बडे धूम धाम तै कर दियौ। ''इस प्रकार की मधुर भाषा का प्रयोग लोक कथाओं में पौराणिक व ऐतिहासिक सन्दर्भों को छूती प्रतीत होती हैं। जसराम और बिसराम की कथा में दो भाइयों की कथा है जिसमें साधारण परिवार में जन्में भाइयों को ससुराल जाने, गरीबी की व्यथा को प्रस्तुत किया है।

पशु परक शिक्षाप्रद लोक कथाओं में सियार ऊँट की कथा ''ऐक सियार और एक ऊँट भायलो। एक बिना ऊँट बोल्यो ला तोय ककरी और खरबूजा खवाय लाऊँ।'' सियार बोल्यो मोय पीठ पै ले चलीऔ। ऊँट ने हाँ भरी लई कै मैं तोय लेचलूंगों।

ऊँट ने वाय पीठ बैठायके नदिया के पार करदई ओ बे एक खरबूजा और ककरी के खेत में जाय लगे। वा सियार को पेट तो बड़ो छोटो आसो बू तो जल्दी ते

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीथ : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य पृ. 110

भर गयो पर बा ऊँट को पेट बहुत बडों सो जल्दी ते नायं भरो। इस प्रकार की मधुर भाषा में लिखित लोक कथाओं ने जनमानस को प्रभावित किया। पंचतंत्रीय कथाओं वे इन शिक्षाप्रद लोक कथाओं में थोड़ा ही अंतर है। पंचतन्त्रीय कथाओं में नैरन्तर्य है, उनका सम्पर्क सूत्र एक-दूसरे से सम्पृक्त होता है जबकि शिक्षा प्रद लोक कथाएँ अपने आप में स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। दूसरे वहाँ नीति वाक्य पहले घोषित करके फिर दृष्टान्त स्वरूप कथा प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार पूर्वांचल के प्रत्येक कोने में नीति, भक्ति व ज्ञान की गंगा प्रवाहित कर लोक साहित्य ने अनूठा संगम प्रस्तुत किया है।

राजस्थान के पूर्वांचल में पशुओं पक्षियों की लोक कथाओं के साथ-साथ ऐतिहासिक, पौराणिक व धार्मिक लोक वृत्त सम्बन्धी महात्यम को पिरोया है। सामान्य धार्मिक कथाओं लोक जीवन से जुडी धार्मिक आस्था या विश्वास के रूप में प्रस्तुत की गई है। ईश्वर कुम्हार के समक्ष तो प्रकट हो गये, परन्तु आलम्बन के प्रति दीर्घकाल से भक्ति में लीन वणिक दम्पति के समक्ष नहीं। क्योंकि वणिक दम्पति की भक्ति में स्वार्थ का समावेश था, जबकि कुम्हार ने नि:स्वार्थ भाव से भक्ति की थी। गीता में श्री कृष्ण ने निष्काम भक्ति पर बल दिया है।

सच्ची भक्ति से ओत-प्रोत उदाहरण के मुख्य अंश दृष्टव्य है - ''एक ग्राम में सेठ, सेठानी रहो करते, वे रोज पीपर की पूजा करने जाओ करते। उनके रास्ता में एक कुम्हारउ पड़तो, बू रोज बर्तन बनाते समय देखो करतो कै सेठ सेठानी रोज पीपर की पूजा करवे जायो करै, वो वाके मन में बड़ो अचरज भयौ। सो एक दिना जैसई सेठ-सेठानी वहाँ से निकरे तो कुम्हार बोल्यो, सेठजी आप कहाँ जातओ। 'सेठ जी बोले हम पीपर की पूजा करवे जाइये करें।' वहाँ पे भगवान् रहे। इतनो कहकै सेठ जी तो बस चल दिए और कुम्हार ने वाही रोज तो अन्नपानी छोड दियो और आँख मूंद के भगवान् को ध्यान करवे लग पड्यो। बाके ध्यान तै भगवान् को सिंहासन हिल

गयो, तुम या मृत्युलोक में जाकर देखो तो सही। नारद जी भगवान् के पास भागे और सारो हाल कहदियो। इतनी सुनते ही भगवान् भगत को दर्शन देवे कूँ दौर परे और लक्ष्मी जी देखती ई रह गई। भगवान् कुम्हार के आगे जाकर खड़े हो गये। कुम्हार ने जब मोर मुकुट लगाये, बंशी बजाते, चक्रचलाते भगवान् कू देख्यो तो चरन में गिर पडौ। बोलो महाराज मेरे धन्य भाग्य हैं।''[1]

राजस्थानी पूर्वांचल करौली, सवाईमाधोपुर क्षेत्र के ठेठ अंचल की लोक जीवन से जुडी विविधताओं के आवरण का स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित है। इन कथाओं में व्रत-पर्व या महात्म्य वर्णित है। लोक कथाएँ महिला जगत् की धरोहर हैं। इस दिन महिलाओं के समूह कार्य-क्रमों में भाग लेती हैं। जैसे करवाचौथ, सकटचौथ, नाग पंचमी, शिवचतुर्थदशी, अनन्त चौदस, अहोई आठे, भय्यादौज, कार्तिक, भय्यापाँच, सन्तोषी माँ की कथा-व्रत, सत्यनारायाण का व्रत, रविवार, शनिवार सोमवार का व्रत तथा सभी की कथाएँ। कुछ पर्व और त्यौहारों होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, दशहरा आदि से सम्बन्धी कथाएँ।

इन कथाओं में मंगल और समृद्धि होने का संकेत मिलता है। पालन न करने पर परलोक में भयानक और वीभत्स दण्ड का विधान कल्पित किया जा सकता है। इन व्रतों के परिप्रेक्ष्य में धार्मिक भय भी है। धर्मभीरू जनता धर्म की अवहेलना प्राय: कम ही कर पाती है। जनता ने भी उसके धार्मिक पक्ष को ही आत्मसात किया है। इस प्रकार कथाओं व व्रतों का सामाजिक महत्त्व भी धीरे-धीरे बढ़ता गया।

कार्तिक व्रत की कथा :- एक राजा ओ। जाके सात बेटा ऐ। वाके छ: बेटा तो अमीर थे। एक बेटा गरीब ओ। बू राजा बड़े छोरा के पास जाय कै बोल्यो 'मोय कातिक नवहा लाओं। झट बाकी बहु बोली कै हम नाय नवाह में। या तरह छऊ अमीर बेटा ने मनै कर दई कै हम नाय नवाह में। छोटा छोरा गरीब ओ सो राजा वाके पास झिझकतो गयो। लौरे छोरा ने कई कै हम नवहवाय दिंगे तुम रोज न्यहाय आयो

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अचंल का लोक साहित्य पृ. 114-115

करो। पूर्वांचल क्षेत्र की भाषा की मधुर शब्दावली में ग्रामीण शब्दों का पर्याप्त प्रयोग देखा गया है। जो करौली, सवाई माधोपुर क्षेत्र के अचंल में बोली जाती है।

चौथ व्रत की कथा का उदाहरण देखें :- सात भाईन के बीच में एक भइन ई। बू भाईन की बड़ी लाड़ली ई। वे भाई अपनी भैन कू पहले खाना खिलाय कै फिर खुद खायो करते। एक दिना भैन ने करवाचौथ को व्रत कियो। जब खाबे को वक्त हुओ तो भय्यान नै आई कै भैन ते खाबै की कई। भैन बोली आज तो मेरो व्रत है। मैं तो चंदाई को देख कै खानो खाबूंगी। याई सुन कै बडो भय्या जंगल गयो और वाने वहाँ जाकै घास में आग लगाई केई। बीच को भय्या बाके बीच में चालनी लै के खडो है गया। लौरे ने जाय के बहिन तै कै दई कि भैन चंदा उग आयो ए। और वाकू चंदा दिखाइ दियौ। हिन्डौन, करौली, गंगापुर, माधोपुर, सपोटरा, बयाना व कुछ भरतपुर, धौलपुर के क्षेत्र में इस भाषा का प्रयोग धार्मिक उत्सवों, व्रतों व लोक-कथाओं का मिश्रण स्पष्ट परिलक्षित है। एक बहिन अपने पति की लम्बी उम्र की कामना हेतु व्रत रखती है। ग्यारहवें व्रत में ही पति की मृत्यु हो जाती है, तब चौथमाता आती है क्या चाहिए तुझे? मेरा पति जीवित मोय सुहाग चइये। माता ने सुहाग दे दिया। इस लोक कथा से स्पष्ट है कि व्रत का खण्डन उसका उल्लंघन त्रासदायी होता है। जैसा कि प्रस्तुत कथा में पति की मृत्यु से विदित होता है। दूसरे अटूट श्रद्दा और निष्ठा से देवता प्रसन्न भी हो जाते हैं और खोया हुआ सौभाग्य, कथा नायिका की तरह पुन: प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे ही भय्यादूज की कथा का प्रसंग संवेदना और कल्याण से आप्लावित भावुक सहृदय को सहज करूणा से विगलित करने वाली है।

संकट चतुर्थी

संकट चौथ की कथा लोक कथा साहित्य में महिलाओं द्वारा परिवार की सुख समृद्धि हेतु की जाने वाली कथा व व्रत है। देवरानी जेठानी के परस्पर व्यवहार अमीरी-गरीबी एवं शारीरिक समस्याओं के कारण घर परिवार पालन में कठिनाइयों से

संघर्ष करती महिला की व्यथा कथा लोक जीवन पर प्रभाव डालने वाली है। एक पत्नी अपने पति द्वारा कठोर परिश्रम करने के बाद भी पेट के लिए तड़पना पड़ेगा।

गरीब ने शुद्धता पूर्वक घर को सजाया 'मैंने लीपा–पोती, नहाई धोई और व्रत रही सो मोय फुरसत नाय मिली। बू बोल्यों लातेरो व्रत निकासूँ। सोय बाने बाकूँ खूब मारो–पीटो और कूट–काट कै घरते भार औटान पै पटक दई। आधी सी रात पै आयो संकट देवता। बानै कई सोटा मारी, ओटरा सोती हीगूं खाँ? बू बोली फूट–फूटो घर परौ एवामें हींग आ। संकट देवता फिर आयो और बोल्यो –सोटरा मारी ओटरा सोती। पौछूँ खाँ? बू बोली मो कम बखत के लिलार ते। बाको आदमी उसो तो बाने देखो कै घर में हीरा–मोती जगमगाय रहयो ऐ। बाने अपनी औरत तै कई कै–उस। चल। देख तो सई, हमारे घर में कितोक धन परोए। संकट देवता द्वारा की गई कृपा का फल स्त्री पुरुषों के प्रति आस्था का केन्द्र है। घरेलू लडाईयों को समाप्त करने में संकट देवता की कृपा होती है। ईश्वर द्वारा दी गई भौतिक सुविधाओं धन धान्य का सुख निष्काम, निर्लोभ, निराभिमान रहने से ही प्राप्त होती है। सुपर नैचुरल टैल्स में अप्राकृतिक और अमानवीय एवं अद्‌भुत वस्तुओं का वर्णन किया जाता है। भूत, प्रेत, डायन, दानव, परी और जादूगर आदि कहानियाँ इसके अन्तर्गत आती है।

सुनेहरा तोता और राजकुमार की प्रचलित लोककथा, परियों का नाच दरिया और हंस। मैना और राजकुमार लोक–कथाओं में प्रेम, व्यवहार, शत्रुता, ईर्ष्या भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार की दन्त्यकथाओं में देखने को मिलता है। एक राजा ओ। वाके सात छोरा ऐ। एक दिन राजा ने सुपनो देखो कै कोई बातै कह रहयौ कै राजा अगर तेरे ढिग सुनहरो तोतो नाय तो तेरे ढिंग सुन्दर परेवाई नायै। भूमरे होतई ईबात राजा ने अपने छोरा नतै कई के तुम मैं तै कौन सो वा सुनहरे तोता लाय सकै। या बात कूं सुनत ही छः राजकुमार बोल्ये कै हम लाय सकै। सो बै छओ बा तोताय लैवे कूं

चल दिए। वै राजकुमार तोता की बात कूं तो भूल गये और अपनी-अपनी तबीयत चीज खरीदवे लग परे।

कई मास बीत गयै सो बा राजा कूं बड़ी चिंता भई सो बाने छोटे राजकुमार कू बुलाय कै कई कै तुम्हारे भययानै काफी दिन है गयै। का बात ऐ, कछु समझ मैं नाय परै। अब तुम जावो और वा सुनहरे तोताय लावौ। राजकुमार ने साधु से तोता माँगा। साधु ने स्नान के लिए कहा है परी मिली उसने तोता उपलब्ध करवाया घटित घटनाचक्र को छोटे राजकुमार ने सुनाया तो उसे घर से बाहर निकाल दिया। इस प्रकार परोपकार से जुडी अनेक लोक-कथाएँ प्रचलित हैं। 'परियों का नाच, दरिया और हंस' लोक-कथा रानी की स्वप्न कथा है जो हंस देख रही है। स्वप्न में बच्चा पेट में होने की बात कहती है, तोते की कीमत परी आदि की कथाएँ इस अंचल में प्रचलित है। मैना और राजकुमार की कथा। डायन और डकुरिया को छोरो, फूलन दे रानी, राजकुमार, काठ का घोड़ा और बींग बादशाह जादी। ईचक बीजक और सिंहलदीप की रानी, आदि लोक कथाओं का प्रचलन प्रर्वाचंल की पवित्र धरा की सुन्दर सोगाते रही हैं।

संवेदनापरक

वे कथाएँ हैं जिनका मूल भाव करुणाद्रेक से समन्वित होता है। कथा के साथ-साथ श्रोता या पाठक का भाव साहचर्य या साधरणीकरण होता चलता हैं। जैसे प्रथम कथा में शेर का औदार्य और ब्राह्मण की कुटिलता से, सहानुभूति शेर के प्रति हो जाती है, यों यह सहानुभूति यथार्थ की दृष्टि से असंगत भले ही लगे। दूसरी कहानी में यह सहानुभूति साहूकार की लड़की के प्रति हो जाती है। स्पष्टकीरण के लिए दो कथाएँ प्रस्तुत की जा रही है - 'बामन और शेर' की कथा कुछ ऐसी ही है 'एक बामन ओ, बू चदियाँ, तीन रोटी को चून माँग लावे सौ। एक दिन घर बारी का वामन तै बोली कै तुम इतनो सोई चून लावो करो ओ, तुम याई सोचो करो घर जवान छोरी

ऐ, बाको ब्या भी करनो ऐ। खाँ ते पइसा आवेगो? बू बिरामन घर के काम-काज ते वैसेई दुःखी रहबो करो। सोई बू बोलो 'ले तू मोय रोज-रोज छेडाकरै सो मै तो या घर में अब नाय रऊँ। इकह कै बू चल दिओ।

नाहर ने शिकार देखो। बामन आगे ते बोल्यो 'मामा-राम-राम' वा नाहर ने सोची कै मेरो भानजो खूब आयो। बा नाहर न कहु ना सुनी। बामन बोल्यो मामा जबान बेटी कै ब्याह में लगाबे को पइसा नाई। बडो दुःखी ऊँ खा ते पइसा लाऊँ। नाहर को दया आई ''मेरी खौंउ मैं गलेन रूपया ऐ तू ले जय्यो ब्याह मैं मोय बुलाय लीजो। मैं कन्यादान करूंगो। नाहर के डर से कोई भी भीतर ना घुसै। बान कू आई गुस्सा, बानै खैंच कै एक तरवार दै। नाहर चुप पर गयो। बामन बोल्यो 'ला मामा तोय विदा कर आऊँ।' नाहर बोल्यो एक तरवार और दै। वा बामन नै नाहर कै एक और तरवार दै दई। नाहर बोल्यो 'अब देख कै याको घाव पुर गयौ कै पहले बारे कौं पुर गयो' बामन बोल्यो या कौ तो पुर गयो पर पहले बारे नाय पुरो। नाहर बोल्यो 'समझ जा तू तैने मामा कह कै मेरी जबान बंद कर दई। खैर मैं अब तो चुपचाप जा रहा ऊँ। इकह कै नाहर चलौ गयो।''[1]

साहूकार जादी और बनजारे को लड़की की कथा में पूर्वांचल की वस्तुस्थिति को लोक कथाओं आख्यानों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। देखें -एक देश में एक राजा और एक साहूकार ओ। बिन दोनों न कै एक-एक छोरी ई। वे दोनों छोरी एक गुरु के पास पढ़वे कूं जाया करती। राजा की छोरी एक तांबे को टका ले जाती तो गु कहतो ला समागिन जब साहूकार छोरी नै ई बात अपने बाप तै जाय कई। साहूकार बड़ो चिंता में परो। बू बा पंडत कै पास गयो बोलो 'महाराज का बात ऐ, जब राजा की छोरी तांबे को टका लावे तो आप बाते ला समागिन कहौ, पर जब मेरी छोरी जाय तब ला अभागिन कहो। जी बात समझ में नाय आ रई।

---

1. राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य : डॉ. गोविन्द रजनीश, पृ. 142

पंडत बोल्यो 'या छोरी के भाग में मुरदा की सेवा लिखी ऐ। साहूकार ने सोची। देखूँ मेरी बेटी अभागिन कैसे ऐ। सो बू बाय लैय कै दूसरे नगर कूं चल दियो। जंगल में छोरी कू प्यास लगी, सोई बात बाने अपने पिता तै कही। सात कोटडियां में लड, हड्डियां, मुर्दा परी है।' कार के कई उदाहरण लोक कथाओं का उल्लेख मिलता है।

जातिपरक लोक कथाओं में विभिन्न जातियों पर लिखी गई आक्षेप मूलक, व्यंग्यपरक और उपहार जन्य कहानियाँ आती है। ये छोटी-छोटी कहानियाँ होती है जो घटनात्मक होती जिनमें घटनात्मकता के माध्यम से चरित्राकंन किया जाता है। चुटुकला किस्से की कथाएँ होती है। जातिपरक कथाओं में ब्राह्मण, बनिया, ठाकुर, कोरी, नाई, जाट, धोबी, माली आदि से सम्बन्धित कथाएँ होती हैं। 'जानपांडे' कोरी गरीब की कथा है जो एक साधारण व्यक्ति का भविष्यवाणियाँ राजा द्वारा पुरस्कृत करवादी है। कोरी मानता है कि मुझे पण्डितलाई का ज्ञान नहीं मैंने तो धूल में लट्ठ चलाया। 'धूर में लट्ठ चलावे पै तीर तो नहीं तुक्का लगई जातो ऐ।' अर्थात् मुझे कुछ नहीं आता है। मैंने तो तीर का तुक्का लगाया था।

पूर्वांचल प्रदेश के समाज में वणिक को भी अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है। जनपदीय संस्कृति की विशेषता यह है कि उसमें वंशानुक्रम से व्यवसाय पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। अभी गावों में लोग प्राय: पैतृक व्यवसाय करते हैं। यह दूसरी बात है कि शिक्षा के प्रसार, अपने पैतृक व्यवसाय से अरुचि और परिवेश से कटाव के कारण लोग श्रम को छोड़कर नौकरी पेशा बनने के लिए मृग भूमि के प्यासे मृग बने हुए हैं। 'रण्डी और सामलिया' 'एक राजा ओ। बाय नाच गाने को बड़ो चाव ओ। बूँ मैफिल जोडो करै ओ। बाकी मैफिल में बडे-बडे राजा औ सेठ आयो करो ऐ। वा मैफिल में एक दिना रण्डी बुलाई गई। वानै गाबो शुरू करो। सामलिया तौरी के दऊँगी।' सेठ ने दो बार एक-एक रुपइया दै दियौ। इस प्रकार लोक कथाओं में डरपोक, लोभी धनी और कंजूस रूप में चित्रित किया है।

'ठाकुर और बनिया' लोक कथा में ठाकुर बनिया से कर्जा लेता था, कर्ज बढ़ता गया तो बनिया ने कर्ज देने से इंकार कर दिया। यह देख ठाकुर नै बदलो बदलौ लैबो चाओ। उनई दिना मैं बनिया की बनैनी मरगई। सो बू ठाकुर बा बनैनी पै सत्ता हैवे कूँ चल दियो। छोरान नै खबर सुनी तो बहुत घबराय गयौ। ठाकुर की करतूत ए देख कै बनिया ने बदलो लैवे की सौची। उन्ही दिना में ठाकुर की मय्या मरगई। ठाकुर ने बनिया ते कई 'जि बात चौखी ऐ।' मैं तो राजी ऊँ पर तू अपनी बात ते पिछारी मत हटियो। बनिया ने हम्बे भरदई। एक-दूसरे को नीचे दिखाने की हास्य व्यंग्यक लोक कथाएँ हैं। 'गूजर कोरिन' जाट और कोरी, जाट बनाम जाट ब्राह्मण और ठाकुर, इनक लघुकथाओं के माध्यम से पूर्वीअंचल की जातीय भावना, कर्म और विश्वास को प्रकट किया है। इस प्रकार करौली, हिण्डौन, भरतपुर, बयाना, वैर, गंगापुर, बामनबास, सवाई माधोपुर क्षेत्र में लोक कथाओं के पुट पर्याप्त मिलते हैं।

हास्यपरक लोक कथाएँ भी खूब मिलती हैं। 'मूसा और चरखा', 'हलालजादा और हरामजादा', 'हुड्डु और हुडुनी' आदि प्रचलित छोटी-छोटी लोक कथाएँ हैं।

लोककथाओं की विशेषताएँ

पूर्वांचल की लोक कथाओं का अपना विशिष्ट स्थान है, परन्तु जो विशेषताएँ इन लोक कथाओं में पाई जाती हैं, वे लगभग सभी प्रदेशों की लोक कथाओं में उपलब्ध होती है। क्योंकि लोक कथाओं का सम्बन्ध मानव मन की मूल प्रवृत्तियों से है-

1. संस्कारों से जुडाव :- करौली, सवाई माधोपुर क्षेत्र की लोक-कथाओं में, संस्कारों, भावनाओं, विश्वासों, नैतिक धारणाओं, मानवीय मूल्यों और धार्मिक परिकल्पनाओं का वर्णन हुआ है। जिससे संस्कृति का सहज ही आभास होता है। कथाएँ लोकाचार से जुड़ी हुई हैं। पुत्रेषणा वित्तेषणा, भाई बहिनों का प्रेम सत्य की विजय आदि संस्कार निहित मूल भावों का परिचय मिलता है। प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, हर्ष,

शोक, विषाद आदि वृत्तियाँ मिलती हैं। दृष्टान्त रूप में फूलने दे रानी की कथा का है। जिसमें व्यंग्य मर्माहत राजकुमार, असंभव कार्य को भी संभव बनाने के लिए साहस और शौर्य के साथ सन्नद्ध हो जाता है।

2. ऐहिक एवं पारलौकिक सुख की कामना से समन्वित :- धार्मिक कथा में ऐहिक व पारलौकिक सिद्धि की भावना से जुडी हुई है। पारलौकिक कहानी की सिद्धि प्रद कहानी कम ही होती है। लोकिक में केन्द्र बिन्दु मानकर अवतरित हुई हैं। जैसे सौभाग्य प्राप्ति हेतु करवाचौथ और सोमवार की कथा गढी गई। वैभव सुख प्राप्ति हेतु सोम, मंगल, गुरु व चतुर्थी की कथाएँ कही है।

3. सभी के कल्याण हेतु :- पूर्वांचल क्षेत्र की लोक कथाओं में एक व्यापक, उदारचेता, दृष्टिकोण, परिलक्षित है। सबके कल्याण का व्यापक क्षेत्र दृष्टिगत है। कहानी सुखान्त होती है तो 'जैसो वाको भयो, वैसो सब काऊ का होय। यदि अशुभ होता है तो जैसो वा को भयो, बैसो काऊ की न होय' संकट चोथ की कहानी की यही भावना मिलती है—

''दौरानी को सो काऊ कै न होय।
जिठानी को सो सबकै होय।।

4. कौतुहल प्रधान :- प्रत्येक कहानी में कौतुहलता की प्रधानता प्रधानगुण होता है। कौतुहल रहित नीरस, बोझिल और अरूची कारक होती है। सुन्दरता की प्रतीक होती है। राजस्थान के पूर्वीअंचल की लोक कथाओं में विशिष्टता व परी कथाओं में कोतुहल वृत्ति अधिक देखी गई है। 'भूतनाथ' चन्द्रकांता का महत्त्व कौतुहल वर्द्धन के कारण एक युग में बहुत अधिक रहा है। बच्चों में परियों कथा सुनने की लालसा रहती है। इन कथाओं को सुनने की उनकी उत्कट अभिलाषा औत्सुक्यवृत्ति की ही परिचायक है।

5. अलौकिकता से ओत–प्रोत :– अतिप्राकृतिक या अलौकिक घटनाओं व पात्रों को स्थान दिया गया है। परी, डायन, भूत, प्रेत, जिन्द आदि के द्वारा किये गये अजीबोगरीब कार्य। ये कार्य जादुई करिश्में से भी अधिक विस्मयागार होते हैं। जैसे मैना और राजकुमार में मैना का औरत और औरत का मैना बनना, परियों का नाच, दरिया, हंस में चौखूटे चौक में परी द्वारा दी गई अंगूठी रूमाल रखने से इन्द्रासन का आना, दरिया का बहना, हंसों का मोती चुगना 'ईचक बीचक और सिंहलदीप की रानी' में जिन्द के माध्यम से मार्केट लगवा देना ऐसे ही अलौकिक कार्य हैं, जो लौकिक शक्तियों से परे हैं।

6. चमत्कार वृत्ति :– पूर्वांचल की प्रचलित लोक कथाओं में श्रोताओं को चमत्कृत करने की अपूर्व क्षमता थी और अबोध मन को अब भी चमृत्कृत करने में अग्रणी हैं। पूर्व कल्पित नहीं वरन् सत्यता लिए हुए सी घटनाएँ घटित होती हैं। लकड़ी के घोड़े का उड़ना, पशुपक्षियों को बोलना आदि। रहस्य और रोमांच से परिपूर्ण कहानियाँ अपनी चमत्कारवृत्ति के कारण आकर्षक व प्रभावशाली है।

7. व्यंग्यता की प्रधानता :– इन कहानियों में यत्र–तत्र व्यंग्यता का समावेश देखा गया है। शिल्प मधुर शब्दावली युक्त है। इन लोक कथाओं में जातिगत फुलजडियाँ छोड़ी गयी है। उनमें लोकमानस की वही चेतना व्याप्त है।

8. हास्यपरक मर्यादित :– कुछ लोक कथाओं की प्रवृत्ति हास्योन्मुख है। यह हास्य किसी मूर्ख के क्रिया–कलाप संवाद तथ्यों को गलत समझने की धारणा से उद्‌भूत होता है। वैसे मुक्त अट्टाहास तो चुटकुलों से होता है। परन्तु स्मृति की अवस्था तक पहुँचाने वाली कहानियाँ 'हलालजादा और हरामजादा' तथा 'हुडु और हुडुनी' अवश्य हैं। इनमें मर्यादित शृंगार दृष्टिगत है। नायिका के नख शिख सौन्दर्य को संकेत मात्र प्रकटकर कथा को गति प्रदान की है। शृंगार को अश्लीलता तक नहीं पहुँचने दिया है।

9. प्रेम का स्वरूप उदात्त :- पूर्वांचल की कथाओं का स्वरूप उदात्तभाव से पूरित है। इनका प्रेम निश्छल, निर्मल व निष्कपट, निस्पृह और नि:स्वार्थ से प्रेरित रहा है। इन कहानियों में रिश्तों को जोड़ने वाला पारिवारिक प्रेम है। भैय्यादूज की कथा व शिवचोदस की कथाएँ इनका उदाहरण है। इन कथाओं में माँ और भगिनि के रिश्ते का महत्त्व भी बताया गया है। भय्यादूज तो भाई-बहिन के नि:स्वार्थ प्रेम की अमर गाथा है।

10. कथा सुखान्त :- भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार कथा का अन्त सुखपूर्वक होता है। पाश्चात्य संस्कृति के नाटकों का अन्त सुखान्त रहा हैं। फूलन दे रानी की कथा में राज कुमार और फूलन दे एक-दूसरे से वियुक्त होते हैं। परन्तु अन्त में दोनों का संयोग हो जाता है। इसी प्रकार साहूकार जादी और बनजारे की लड़की में पहले साहूकार जादी अत्यन्त दु:खी रहती है। 12 वर्ष तक सेवा करने का श्रेय एक ही रोज में बनजारे की लड़की प्राप्त कर लेती है तथा कह भी देती है।

''सुन गुड्डा-सुनगुड्डी, सुनोह मारी बात।
बारह बरस सेवा करी, तऊ न पाये सुख।।''

लोकगाथाएँ (पवाड़े) : पद्य

लोकगाथा शब्द आंग्ल के बैलेड़ का समानार्थी है। हिन्दी में ग्रामगीत, नृत्यगीत, आख्यान गीत, आख्यानक गीत, वीर गीत, वीर काव्य, कथा गीत, पवाडा, गीत-कथा आदि शब्द प्रचलित है, लेकिन ये सभी शब्द अपूर्ण हैं। लोकगाथा शब्द डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा प्रदत्त है, जो अन्य शब्दों की अपेक्षा संगत एवं उपयुक्त है। वीर गाथ वीर गीत और वीर काव्य शब्द 'वीर' पर अधिक बल देते हैं। जिसका तात्पर्य वीर रस व्यंजक गीतों से लिया जा सकता है किन्तु इन गाथाओं में वीर रस प्रधान न होकर शृंगार रस भी प्रमुख होता है। कुछ लोक गाथाओं में धार्मिकता भी विद्यमान रहती है।

ग्राम व लोक गीत व्यापक शब्द है। लोकगाथाएँ, ग्रामगीतों का एक रूप हो सकती है, उनके समानार्थी नहीं। आंग्ल में 'लिरिक' और फॉक साँग शब्द प्रचलित है, जबकि लोकगाथा के लिए बैलेड़ शब्द प्रचलित है, जहाँ तक पवाड़ा की बात कहें तो मराठी भाषा में अधिक प्रयुक्त है। इस भाषा में वीर काव्य हेतु प्रयुक्त मानते हैं। मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड में इसका अर्थ लम्बी कथा से है, ब्रज में युद्ध काव्य से, पमारा, मालवा में पवाड़ों और धीरे-धीरे उत्तरप्रदेश में पवाँरा हो गया। श्याम परमार इस प्रवाद और सत्ये परमार से व्युत्पन्न मानते हैं। इन सभी तथ्यों का विश्लेषणात्मक अनुशीलन हिन्दी रूपांतर लोकगाथा ही है।

बैलेड लैटिन के बेलार से बना है जिसका अर्थ है नृत्य करना प्रारंभ में नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीत को ही बैलेड कहा गया था। कालांतर अंश की पृथकता होते हुए मध्य युग में बहिष्कार हो गया। पाश्चात्य विद्वान् वर्डसवर्थ, कॉलरिज, स्कॉट रैले आदि ने बैलेड्स को साहित्यिक परिधान दिया। बैलेड का प्रचार जर्मनी, डेनमार्क तथा फ्रांस में भी रहा। जर्मनी में व्योहक स्लाइडर, डेनमार्क में फोकेवाइजर और स्पेन में 'रोमेनकैरो' कहा जाता है।

परिभाषाएँ

(1) बैलेड वह कथा है, जो गीतों में कही गयी है। (प्रो. केडीज, इंगलिश एण्ड स्कॉटिश पापुलस बैलेड्स)

(2) बैलेड गीतात्मक कथानक हैं। (हैजलिट लिरिकल मैरेटिव)

(3) बैलेड उस काव्य का नाम है, जिसमें सीधे साधे छन्दों में कोई सीधी, सरल कथा कही गयी हो। (इन साइक्लोपिडीयाँ विटानिका)

(4) बैलेड एक साधारण कथात्मक गीत है जिसकी उत्पति संदिग्ध होती है। (लूसी पौंड इन साइक्लोपीड़िया अमेरिकाना)

लोक गाथाओं की उत्पत्ति विषयक मान्यता को विविध विद्वानों द्वारा परिभाषित किया है जिनका प्रभाव दो रूपों में मुखरित हुआ है। लोकगाथाएँ मौखिक होती हैं। इनकी हस्तलिखित प्रति कहीं भी नहीं मिलती है। सम्भवतया नृत्य, गीत, संगीत व लोकगाथा का आविर्भाव हुआ हो। लेखन कला का अभाव था। दूसरा है लोक साहित्य सरल निष्कपट निरलंकार होता है। अत: समाज का शिष्ट वर्ग इसे सदैव ही निकृष्ट, असभ्य और असंस्कृत मानकर हेय दृष्टि से देखता है। मौखिक परम्परा में सुरक्षित इन लोक कथाओं का ध्यान कम दिया है। आदिम सृजना में से ही माना जाना चाहिए। ये अनुभानिक है लोकनिर्मितवाद जातिवाद, समुदायवाद व्यक्तित्व हीन, व्यक्तिवाद, चारणवाद आदि।

लोकगाथा की विशेषताएँ

(1) अज्ञात रचयिता :- लोकगाथाओं के रचयिता अज्ञात जैसे ढोला मारू आल्हा, भर्तृरी, गोपीचन्द और सोरठा आदि के रचयिता अज्ञात हैं। प्रसिद्धि होने पर भी कृति व कृतिकार का परिचय संदिग्ध है। राबर्टग्रेव्स का कथन है कि आज के युग में लोक गाथा के किसी रचयिता का अज्ञात रहना इस बात का सूचक है कि लेखक को स्वयं की कृति से लज्जा लगती थी अथवा वह अपना नाम देने से आशंकित रहता था। परन्तु आदिम समाज में लोक गाथाओं का रचयिता अपनी लापरवाही से अज्ञात हो गया।[1]

(2) प्रमाणिक मूल पास का अभाव :- अज्ञात मूल पाठ होता है लोक गाथाओं में दीर्घकालीन मौखिक परम्परा से चली आई हुई लोक गाथा का कोई मूल पाठ हो ही नहीं सकता। मौलकता से दूर होती रहती है। पीढी दर पीढी चलने वाली कथा लोक गाथा है। **प्रो. किटरेज** के अनुसार जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता जाता है वैसे-वैसे लोकगाथाओं की भाषा भी परिवर्तित होती जाती है। लोकगाथा का

---

1. राबर्ट ग्रेब्स : द इंगलिश बैलेड भूमिका, पृ. 12

मूल प्रणेता उसके तात्कालिक स्वरूप एवं सुरों को सुने तो निश्चय ही वह अपनी रचना को नहीं पहचान सकेगा।[1] इलियट द्वारा एकत्रित पाहालोचन आल्हा खण्ड का पता नहीं लगा सका। वर्तमान में बावन युद्धों का वर्णन मिलता है। आल्हा का मूल रूप इतना वृहत नहीं रहा होगा।

(3) संगीत का सहयोग :- लोकगाथाओं की लोकप्रियता संगीतात्मकता के कारण ही है इसके अभाव में रसास्वादन असंभव है। लोक संगीत 'फॉकम्युजिक कहलाता है। भर्तृहरी व गोपीचन्द की कथाएँ करूणामय संगीत से करूण हो जाती है। इन कथाओं को जोगी (नाथ) पूंगी से गाते हैं। आल्हा में ढोल से गाते हैं। अध्ययन करें तो लोक गाथाओं में नृत्य का स्थान नहीं है।

(4) स्थानीयता :- लोकगाथाओं में स्थानीयता का फुट पाया जाता है। प्रदेशीय विशेषताओं की झलक को प्रदर्शित करती है। धार्मिक मान्यताएँ, सामाजिक जीवन, प्रथाएँ, रीति-रिवाज, संस्कारों और विश्वासों की प्रतिछाया अथवा उल्लेख इन लोक गाथाओं में मिलता है। ढोला मारू रा दूहा में ऊँट मरूभूमि आदि का वर्णन कर देता है। लैला मजनूँ और आल्हा की गाथाओं में लोक का वर्णन होता है।

(5) मौखिक परम्परा :- गुरु शिष्य परम्परा लोक समाज में जीवंत है। **किटरेज** के मतानुसार लिपिबद्ध लोकगाथा लोक सम्पत्ति न रहकर साहित्य की सम्पत्ति हो जाती है।[2] **फ्रैंक सिजविक** का कथन हैं कि लोकगाथा तभी तक जीवित रहती है, जब तक वह मौखिक साहित्य के रूप में सुरक्षित रहती है। उसे लिपिबद्ध करने का अर्थ है उसे मार डालना।[3] **प्रो. गूमर** ने मौखिक परम्परा को लोकगाथाओं की सच्ची कसौटी बताया है।[4] **डॉ. बैरियर एल्विन** का मत है कि गीतों की लिपि की

---

1. एफ.जे. चाइल्ड ई.स्का.पा. बै. भूमिका पृ. 17
2. चाइल्ड इ.एण्ड का.बै. भूमिका, पृ. 23
3. फ्रैंक सिजविक, द बैलेड, पृ. 39
4. गूमर ओ.इ. बै. भूमिका, पृ. 29

शृंखला में बाँधने पर उसका विकास नष्ट हो जाता है। अत: लोक साहित्य के प्रेमी इनका संग्रह कर बड़ा अपकार करते हैं।[1]

(6) अलंकृत शैली का अभाव :- अलंकृत काव्य नहीं होने के कारण अलकृंत शैली का अभाव रहा है। जन काव्य एवं अलंकृत काव्य के बीच दूरी होती है। कवि, छन्द, अलंकार, रस आदि के नये प्रयोगों से काव्य सौन्दर्य में चार चाँद लगा देता है लेकिन जनकाव्य में इन सबका का अभाव होता है। लोकगाथाओं पर स्वामित्व वैयक्तिक न होकर सामूहिक होता है। दूसरे लोक-गाथाओं में शिल्प की अपेक्षा अनुभूतियों के सरलीकरण की प्रमुखता होती है। कारण है कि काव्य की बाह्य और आतंरिक सज्जा की और लोक कवि ध्यान नहीं देते हैं। इस बारे में **स्टनस्ट्रप** का कथन है कि लोक गाथाओं की वर्णन पद्यति में एक ऐसी नैसर्गिकता होती है जैसी माँ और शिशु के संलाप में मिलती है।[2]

(7) उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव :- कथात्मकता का प्रभाव कथानक को गति देना है न कि उपदेश सदाचार की शिक्षा देना। इस सन्दर्भ में राबर्ट ग्रेब्स ने ठीक ही कहा है कि गाथाएँ नीति या सदाचार की शिक्षा प्रदान नहीं करती और न वे अलाव की भावना को ही प्रचारित करती हैं। यदि गाथाओं में ये बातें उपलब्ध होती हैं, तो इसका तात्पर्य यह है कि चारण अपने समुदाय से पृथक् हो गया है। अथवा वह सभ्यता के सम्पर्क में है। पक्षपात की भावना का समुदाय के कार्यों से सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता है।[3]

(8) लम्बा कथानक :- इनका कथानक लम्बा भी होता है। गाथाओं का व्याख्यान विशद होता है क्योंकि उसमें पात्रों के जीवन सांगोपांग चित्रण होता है। फिर

---

1. बैरियर फॉक साइंस ऑफ मैकल हिल्स भूमिका
2. गुमेट ओ.ई. बै. पृ. 31
3. राबर्ट ग्रेब्स द इंगलिश बैलेड़ पृ. 81

भी प्रक्षिप्तकार अपनी ओर से भी प्राक्षेप करते जाते हैं। लोक गाथाओं का कलेवर फूलता चला जाता है। अल्हा सोरठी, भर्तृहरी की लोकगाथाएँ महाकाव्य से कम नहीं है। आंग्ल में 'ऐजेस्ट आव राबिन हुई' जैसी लोक गाथा सातमर्ग तथा 456 पद्यों में ग्रंथित है। जो लोक गाथा जितनी प्राचीन होगी उसका आकारा भी उतना ही विपुल होगा।

(9) ऐतिहासिकता संदिग्ध :- लोकगाथाओं की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। लोक गाथाओं में कुछेक में ऐतिहासिकता का पूर्ण अभाव, कुछ का इतिहास मिलता है किन्तु संदिग्ध होता है। जैसे आल्हा गोपीचन्द भर्तृहरी का उल्लेख इतिहास में मिलता है किंतु ऐतिहासिकता विवादित है। राजस्थान के पूर्वांचल में इन लोकगाथाओं का प्रचलन है।

ढोला मारू, भक्त पूरनमल, नरसीभात, गोपचन्द भर्तृहरी लीला, मोरध्वज लीला और आल्हा आदि प्रमुख है-

1. ढोला मारू :- ज मालवा और उत्तर भारतीय हिन्दी प्रदेश की सुप्रसिद्ध लोकगाथा है। इसका गायन चिकाडे पर किया जाता है। इसके गायक ढुलैया कहलाते हैं। सुरइया व दुलइया एक-दो गावों की बीच होते हैं। नरवर नल पुत्र ढोला पिंगल की राजकुमारी मारु की प्रेम गाथा है। चार वर्ष की उम्र में ढोला का विवाह रेखा से हो गया। कामासक्त होकर सहेलियों से कहा तब उन्होंने कहा तेरा विवाह ढोला से हो चुका है। हीरामन के माध्यम से विरह सन्देश भेजे। बारहमासा शैली में वर्णन है। यह एक लोक गाथा है। लोकगाथा होने के कारण ही कथा में परिवर्तन व परिवर्द्धन हुए है। जहाँ तक पूर्वांचल में प्रचलित ढोला की लोककथा का प्रश्न है। उसमें प्रारंभिक तथ्यों को छोड़कर शेष काल्पनिक एवं प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सोरठियो दूहो भलो, भली मरवण री वात
जोबन–छाई धण भली, ताराँ छाई रात।[1]

2. भक्त पूरनमल :– भक्त पूरनमल की गाथा योग कथात्मक लोकगाथाओं में आती है। इस गाथा पर नाथ सम्प्रदाय विशिष्टतया गोरखनाथ का विशेष प्रभाव। यह अपने आप में पूर्णगाथा है जिसमें एक पुत्र द्वारा सौतेली माँ की वासना से पुत्रत्व की मर्यादा रखने का संदेश प्रमुख है। स्यालकोट नृप शंखपति की कन्या के स्वयंवर में जाता है। प्रथम पत्नी दूसरे विवाह के लिए रोकती है। फूलनदे से विवाह कर लेता है। पूरन चलने लगे तो अपशकुन होने लगे। रानी ने वासना का रिश्ता बनाना चाहा तो उसने मना कर दिया। फूलनदे ने उसे फँसाया मार दिया गया। उधर गोरखनाथ ने जीवित कर दिया।

वह योगी बनकर चीन चला गया। वहाँ रानी सुन्द्रा ने पूरनमल के सौन्दर्य के कारण माँग लिया। विषय वासना की बात हुई, तो अर्न्तध्यान होकर गुरु के पास आ गये। सुन्द्रा ने प्राण त्याग दिए। स्यालकोट वापस घर बार मिल गया। कुंभ में प्रयाग राजकुमारी ने पूरनमल के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर बुलावा भेजा। कामतृप्ति चाही तथा तोता बना दिया। गुरु महेन्द्रनाथ, गुरु भाई थे गोरखनाथ जी के। कुल मिलाकर नाथ सम्प्रदाय से अनुप्रेरित लोक गाथा है। नाथ सम्प्रदाय की मूल चेतना शैव दर्शन पर आधारित है। **डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी** ने बताया कि 'यह विश्वास किया जाता है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही है और मूलत: समग्र नाथ सम्प्रदाय बौद्धधर्म एवं शाक्त धर्म के बीच स्थित है।[2] जिसे पातंजल के हठयोग से पुष्ट किया गया है।'[3]

3. नरसी भात–लीला :– यह पूर्वांचल ही नहीं सम्पूर्ण उत्तरभारत व गुजरात प्रदेश तक कृष्णभक्त के रूप में प्रसिद्ध भक्तिपरक लोकगाथा है। नरसी की

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 89
2. डॉ. हजार प्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय पृ. 3
3. डॉ. राम कुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 153

दरिद्रता रामा के हृदय में वेदना प्रमुख है। जूनागढवासी नरसी, पत्नी सुशीला, पुत्री रामा सिरसागढ में पुत्री परणदी भक्तिभाव में नरसी ने कमाना–धमाना छोड दिया। सास ने नरसी के बारे में भूँखा, कंगाल न जाने क्या–क्या कहा तथा अपमानित करने के लिए लम्बा चिट्ठा भात का बनाया। जब भात भरने को सिरसागढ पहुँचे तो भगवत क्या हुई। उत्तम श्रेणी का भात भरा गया।

करौली, सवाई माधोपुर, धौलपुर आदि पूर्वांचल में नरसी भगत से सम्बन्धित प्रबन्ध और मुक्तक गीत पाये जाते हैं।

''गारी दे रई रामा बाई,
बात तोय नैक सरम नहीं भाई,
तैने हाँसी क्यों करवाई।
दूजी टेर सुनि जब दौडे आये
रुकमणि लाये संग में
भगवान् हाथन ते पहरावे
रामा फूली नहीं समावे
वाको यश जग में छाजावे हो।''[1]

सिरसागढ व जूनागढ पुरानी रियासतें थी। गुजरात के प्रमुख सन्तों में नरसीभगत का नाम प्रमुख है। भक्तिसाधना को प्रगाढ बनाने वाली लोकगाथा है।

4. भर्तृहरी :– इनका जयकारा 'जोगी' सारंगी बजाकर करते हैं। भर्तृहरी की पूर्णगाथा को लिखना व लिखाना अमंगलकारी मानते हैं, कानों में बड़े–बड़े कुण्डल धारण करते हैं। नाथ परवर्ती सम्प्रदाय में सम्मानपूर्वक नाम ले सकते हैं। नाथ सम्प्रदाय में 'वैराग्यपक्ष' का प्रचलन किया। इनके प्रधान शिष्यों में प्रेमनाथ व रतन नाथ की गणना होती है। पूर्वांचल में भर्तृहरी की लोकगाथा में वर्ण्य विषय की प्रमुखता

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 96

है। (सामदेई) को माँ सम्बोधित करते हैं। चन्द्रसैन के पुत्र उज्जैन में जन्में। दिल्ली में पिंगला ने भर्तृहरी की माँ सामदेवी को पूर्वजन्म के कथानक से जोड़ा है। अंतिम तपस्या व देहत्याग सरिस्का स्थित अलवर जिले में कुशालगढ़ के पास पहाड़ों के बीच तपोभूमि भर्तृहरी के नाम से आज भी पूजी जाती है। भाद्रपक्ष की अष्टमी को मेला लगता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने[1] भर्तृहरी की कथा में रानी पिंगला को बताया है। भर्तृहरी शिकार करने जाते हैं। पिंगला की परीक्षा होती है। पिंगला सती हो जाती है। गोरखनाथ पत्नी को जीवित करते हैं तथा भर्तृहरी गोरखनाथ के शिष्य हो जाते हैं। डॉ. सत्यव्रत सिंह के जो मौखिक भौजपुरी में प्रस्तुत किया है जिसमें पलंग की पाटी टूटने की सभ्यता मानी है।[2]

जहाँ तक भर्तृहरी जिन्होंने शृंगार शतक, नीतिशतक तथा वैराग्य शतक लिखा है। गोरख शिष्य भर्तृहरी जिन्होंने वैराग्य पंथ प्रचलित किया।[3] भर्तृहरी जो उज्जैन के शासक थे और बाद में गोरखनाथ के शिष्य बन गये। विरक्त होकर भाई विक्रमादित्य को राज्य सौंप दिया। इनका सम्बन्ध बंगाल के पाल वंश के राजा गोपी चन्द और मायावती से था।[4] एक किवंदती है कि भर्तृहरी गोरखपुर उत्तरप्रदेश क्षेत्र के शासक थे।[5]

5. गोपीचन्द :- किंवदंतियों में गोपीचन्द भर्तृहरी के बहन के लड़के थे, नाथ सम्प्रदाय के संत थे। माँ मैनावती जालंधरनाथ की शिष्य थी। बहिन चम्पावती रानी रत्नाकुमारी थी। इन्हें वैराग्य की शिक्षा माँ से मिली। चम्पावती के घर भिक्षा माँगने गये। देखकर बहिन गिर पड़ी तथा प्राण त्याग दिये। गोरखनाथ से प्रार्थना की

---

1. डॉ. रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 71
2. डॉ. सत्यव्रत सिंह भोजपुरी लोकगाथा, पृ. 181
3. आचार्य ह.प्र. द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ. 167
4. वही, पृ. 167
5. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह भोजपुरी लोकगीतों में करुणारस पृ. 13

पुन: जीवित हुई। लोकगाथा में कंचनवन, वेदलीवन का वर्णन सुनते हैं। कुछ लोकगाथाओं में मस्ये नाथ को गोपीचन्द का गुरु बताते हैं। **डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने अनुमान किया है कि "गोपीचंद जलंधरपाद के शिष्य का नाथ द्वारा सिद्ध सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे।"[1]

6. मोर ध्वज :- पूर्वांचल की प्रमुख व प्रसिद्ध गाथाओं में मोरध्वज लीला का विशेष महत्त्व है। सत्यवादी राजा के रूप में ख्यात है। पुत्र को चीरकर मांस खाने की प्रतिज्ञा संत और धर्म के बीच पुत्र प्रेम आता है। रानी से पूछने पर पुत्र के स्थान पर स्वयं को समर्पित करने को तत्पर है। अन्त में धर्म की विजय होती है।

"मेरे प्रानन प्यारे लाल सिंह बन काल कन्हैया आयो।
तेरो दानो पानी आज कुँअर उठि आयो।
बारे मेरे कुमर तो बिना सबर न बँधे बंधायो।
करि मोह ले लयो गोद कण्ठ चिपटायो।।"[2]

व्यथित माता और पुत्र के संवाद पर्याप्त पिता पुत्र का करूण संलाप चलता रहता है। पुत्र को आरे पर चला दिया दो टुकड़े हो गये। रानी की आँखें अश्रुपूरित हुई। एक टुकड़ा सिंह को व दूसरा महल में ले जाओ और हमें चौका लगावो। इस पर रानी ने उत्तर दिया-

"पिया मै चौका कैसे महल लगाऊँ।
सुन सोई रहयो नींद सुख न जाय जगाऊ।
महाराज मोह तुम दियो कुमर को तोड।
जाग पड़े रोबेगी कैसे जाऊँ अकेला छोड़।।"[3]

---

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, पृ. 139
2. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 102
3. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 103

जैसे–तैसे रोते–रोते रानी ने चौका लगाया। पुत्र को बुलाओ सन्तों ने कहा। तब राजा बोला मेरा पुत्र तो सिंह का शिकार हो गया है। तब संत बोले वह तो महलों में डोल रहा है। आवाज देते ही पुत्र आ गया। यह लोक गाथा धर्म और संत के सन्देश को लेकर लिखी गई है।

7. आल्हा :– वीरकथात्मक लोकगाथा के रूप में प्रसिद्ध रचना है। उत्तर और मध्य भारत की लोकप्रिय गाथा है। जिसका गायन वर्षा ऋतु में किया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रासोकाव्य परम्परा की बारह कृतियों का वर्णन किया है उनमें से ही है। जगनिक कवि की रचना है। महोबा के दो वीर आल्हा और उदल के वीर चरित्र का वर्णन किया है। मूल आल्हा की अभी तक मूल प्रति नहीं मिली है। इसी पर आद्यृत गीत समस्त उत्तरी भारत के गाँव–गाँव में सुनाई पड़ते हैं। वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले इन गीतों को आल्हा कहा जाता हे। ग्रियर्सन का मत था कि जगनिक परमाल का भानजा था। उनका मत इस प्रकार था।

''यहै विचारत मल्हनारानी, तुरतै बोलि लीन्ह प्रतिहार।
तुरत बुलावा जगनायक का भैने जौन चंदेल क्यार।''[1]

वीर काव्य संग्रह की भूमिका में डॉ. उदयनारायण तिवारी ने संकेत किया है 'पृथ्वीराज रासो में एक महोबा खण्ड है। वह परमाल रासो के नाम से भी प्रसिद्ध है। अपने वर्तमान रूप में पृथ्वीराज रासो के अंत में संकलित महोबा खण्ड का ही रूपान्तर लगता है। पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो के अंतिम छंदों की तुलना करके डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इस साम्य की और स्पष्ट संकेत दिया है।'[2] पूर्वी अंचल में आल्हा का जो रूप प्रचलित है वह लोकगाथात्मक ही है, यह गेय है, ध्येय मनोरंजन है, चमत्कार पाण्डित्य प्रदर्शन और अलंकरण का अभाव है। निजन्धरी

---

1. They lay of alha, introduction by griesson
2. हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड, पृ. 127

कथाओं का वर्णन है। मुख्यतया आल्हा उदल के युद्ध नामक पुस्तक में बत्तीस युद्धों का वर्णन है। आल्हा में ऊँटों के 51 युद्धों का वर्णन है। महोबे की लड़ाई मांडों की लड़ाई, सिरसागढ़ की लड़ाई, दिल्ली की लड़ाई, पथरीगढ की लड़ाई, नरवरगढ़ की लड़ाई, सिरसागढ़ की दूसरी लड़ाई और गांधार की लड़ाई आदि प्रमुख है।

आल्हा के आये नामों में बहुत–से काल्पनिक हैं। तीन नाम पृथ्वीराज, जयचंद परमाल ऐतिहासिक नाम है। संयोगिता स्वयंवर (पृथ्वीराज रासो) से ही प्रसिद्ध हुई है। इसका प्रमुख छंद वीर या आल्हा ही है। इस प्रकार पूर्वांचल में प्रचलित लोक गाथाओं में लोकमानस का प्रतिबिम्ब स्पष्ट परिलक्षित है। उनके चरित्र अनुकरणीय उदात्त एवं आदर्श मूलक और महान् हैं। उनमें इहलोक और परलोक की मंगल कामना है।

लोक नृत्य

स्वरों की तन्मयता होने पर लय की उत्पत्ति होती है। लय और ताल संगीत और नृत्य दोनों का आवश्यक अंग है। सृष्टि के आरंभ में भावहीन मानव समाज ने भाव–प्रकाश के लिए शरीर के हाव–भाव का ही आश्रय लिया होगा। भाव प्रकाशन की सार्थक मुद्राओं को ही भाषा में नृत्य कहा है। शिव नृत्य के आदि देव कहे जाते हैं। नृत्य में शरीर के अंगों की विविध भंगिमाओं द्वारा हृदयगत भावों को यथार्थ अभिव्यंजना होती है। अंगों के समय से नृत्यों के सौन्दर्य में आकर्षण बढ़ता है। वास्तव में आंगिक भंगिमाएँ नृत्यों का अपार वैभव है, जो जन–मानस को सम्मोहित करने के लिए उनको अद्‌भुत शक्ति प्रदान करता है। अत: नृत्य पुण्यों के समान है और भंगिमाएँ इन्हें जनप्रिय बनाने के लिए अनेक अर्न्तनिहित गद्यमय पराग का विलक्षण कार्य करती हैं। भंगिमा सम्पन्न नृत्य विनाश के प्रभाव से मुक्त होकर अनेक पीढ़ियों तक लोकानुश्रृजन के साधन बने चलते हैं और ऐसे नृत्य अपने देश की सांस्कृतिक निधि के दिव्य रत्न बनकर चमकते हैं।

मनोहर प्रभाकर के अनुसार :- जब किसी मादक स्पर्श से हृदय तन्त्री के तार छिड़ उठते हैं अथवा किसी मार्मिक प्रहार से वेदना के स्वर कम्पित हो उठते हैं तभी उन्मादक संगीत की लहरियाँ सहसा फूट बिखर पड़ती हैं। इसी प्रकार प्रफुल्लित अथवा उत्पीड़ित हृदय की भावनाएँ ही नर्तक के पदों में चाचंल्य गति में गरिमा, भाव भंगिमा अंग भंगिमा की मुद्राओं तथा चेष्टाओं में सहज और सौन्दर्य घुंघुरुओ की छन छन (ध्वनि) में राशि-राशि मादकता का रस संचार तरंगित कर सकती हैं।[1]

श्री शांता अवस्थी के अनुसार 'लोक नृत्य हृदय से प्रकृत गुणों आडम्बरहीन आलम्बन हैं। इसके अभिव्यक्तिकरण ने जीवन सरसता प्रदान कर लोक संस्कृति और कला को युग-युग से सुरक्षित रखा है।[2]

पूर्वांचल की संस्कृति सभ्यता व परिवेश में राजस्थानी धरा में सिमटी संस्कृति का एक अंश करौली, हिण्डौन, धौलपुर, गंगापुर व सवाई माधोपुर के क्षेत्र में किये जाने वाले टोने-टोटकों के साथ-साथ नृत्य, संगीत, भाव की भंगिमा अपने आप में अनूठी व प्रसिद्ध रही है। सम्पादक मनोहर प्रभाकर ने इनको निम्नानुसार प्रस्तुत किया है।

(1) गृहस्थ लोक नृत्य

(2) धार्मिक सम्प्रदायों के लोकनृत्य

(3) पेशेवर जातियों के लोकनृत्य

(4) घूमर नृत्य

(5) डांडिया नृत्य

---

1. रामनाथ सुमन : सम्मेलन पत्रिका 'लोक जीवन में रोने और टोटके की मान्यताऐं हिन्दी साहित्य सं. प्रयाग सं. 2010, पृ. 467
2. सं. मनोहर प्रभाकर : राजस्थनी साहित्य और संस्कृति प्रकाशक मोहन लाल जैन प्र.स. 1965 पृ. 97

लोक विश्वास

जनसाधारण में बहुसंख्यक विश्वास बद्धमूल देखे जाते हैं। उनके पीछे कोई तर्क नहीं होता, परन्तु सुदृढ़ आग्रह होता है। भाँति–भाँति के लोक विश्वास राजस्थानी लोकजीवन में घुले मिले दिखाई देते हैं। लोक विश्वास का ऐतिहासिक क्रम प्रस्तुत नहीं किया जा सकता क्योंकि ये विश्वास जिस काल एवं समय में उदित हुए उस समय की सामग्री अनुपलब्ध होने के कारण पुरानी परम्पराओं व रुढ़ियों के आधार पर ही इन्हें मानते आ रहे है जो कि राजस्थान के डांग क्षेत्र में भी इनका अपना विशेष महत्त्व है।

1. भूत–प्रेत :– इनकी कहानियाँ नानी या दादी माँ सुनाती थी, तथा इनके साये में आने वाले की मौत होना, पागल होना, तथा विक्षिप्त होने की बाते भी आज के युग में सुनी और देखी गयी हैं। माताएँ बच्चों को दूध पिलाकर भभूत लगा देती हैं, जिससे किसी प्रकार की गलत शक्तियों का शिकार न हो सके। यह परम्परा पुरातन काल से चली आ रही जो कि कथाओं व पुराणों में भी उल्लखित है किन्तु इनके साक्ष्यों का अभाव है।

2. तंत्र मन्त्र यंत्र :– आज भी वे लोक विश्वास पीछा नहीं छोड रहे है। अथर्ववेद में वर्णित मन्त्र शास्त्र जिसमें मांत्रिक तथा केवल वैधानिक दोनों ही प्रकार के तन्त्र है। मन्त्रशास्त्र के नाम पर जो पुराण तथा परवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध थी, उसे ही एकमात्र शास्त्रीय मानकर मन्त्र शास्त्र के नाम पर अनेक लाभदायक तथा हानिप्रद प्रयोग चल पड़े। कालांतर में इन्ही प्रयोगों को उनकी उपयोगिता के आधार पर टोना–टोटका नाम पड़ा। टोटके मुख्यत: मंगल सूचक अनिष्ट–निरावक, रोग–निवारक या टोने के बचाव के लिए किये जाते हैं। इसलिए टोटका स्त्री जाति में लोक प्रिय विश्वसनीय हैं। इनसे परस्पर प्रेम की बजाय शत्रुता बढ़ती दिखाई देती है।

इनके विपरीत टोना :- अमंगल सूचक, रोग उदपादक, मारण, उच्चाटन, अनुचित आकर्षण, सम्मोहन, वशीकरण आदि के लिए किया जाता है। जिससे यदि व्यक्ति विशेष की मनोकामना पूर्ण होती है तो किसी को हानि भी पहुँचती है। टोने केवल सयाने सिद्ध, ओझा अघोरी शैव, शाक्त तथा अन्य वाममार्गियों की विरासत में रह गये। इसलिए जन साधारण इन व्यक्तियों को भय अथवा घृणा की दृष्टि से देखते हैं। टोटकों का प्रचलन केवल अशिक्षित गृहणियों में ही नहीं अपितु मध्यम वर्ग की अर्द्धशिक्षित तथा सुशिक्षित गृहणियाँ भी टोटकों का आश्रय लेती हैं। टोटकों में किसी शास्त्रीय पद्धति की आवश्यकता नहीं होती और न उसमें किसी मन्त्र की आवश्यकता है किन्तु टोने में निश्चय ही पूरी-पूरी शास्त्रीय पद्धति काम में लाई जाती है। मन्त्रोचारण से लेकर अनुष्ठान और बलिदान तक सब कुछ। अत: टोना शास्त्रीय अनुष्ठान हैं तथा टोटका एकदम लौकिक।[1]

लोरियाँ

राजस्थानी लोक साहित्य में लोरियों का बड़ा महत्त्व रहा है। माँ को घर में कार्य करने होते हैं और उस समय उसका बच्चा बीच में ही उठ जाता है तथा चिल्ला-चिल्ला कर माँ-माँ रोता है। माँ कभी भी अपने बच्चे को रोता नहीं देख सकती है, साथ ही गृहस्थी के नित्य आवश्यक कार्य भी नहीं छोड़ सकती है। वह मधुर तोतली भाषा बोलकर सीने से लगाकर सुला देती है। जिसमें प्रेममय मधुर शब्दावली की भाषा का प्रयोग करती हुई उसे लोरियां सुनाती है। लोरियों को राजस्थानी भाषा में 'टीलों' भी कहते हैं। आंग्ल साहित्य में Cradde Songs (पालने के गीत) अथवा बच्चों को सुलाने के गीत कहते हैं।[2]

---

1. मनोहर शर्मा : भाषा साहित्य लोक साहित्य (सांस्कृतिक राजस्थान) प्रकाशन अ.भा. मारवाडी सम्मेलन, प्र.सं. 1982 पृ. 87
2. हर्ष हरदान : भाषा साहित्य और संस्कृति प्रकाशन कैलाश चन्द जैन आशीर्वाद पब्लिकेशन बी.-9 लक्ष्मी सिनेमा के पास जयपुर, प्र.सं. 1994 पृ. 206

लोक वाद्य :– राजस्थानी संस्कृति में लोक वाद्यों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। लय को किसी वैज्ञानिक ढंग से ध्वनि लहरों में बदल जाये तो निश्चित रूप से एक झंकार का रूप होगा। यही झंकार हमारे लोकगीतों की आत्मा है। तन्मयता की चरम स्थिति लय है। किसी स्थिति में तन्मयता लाने के लिए इस झंकार की आवश्यकता है। इसलिए लोकगीतों में हृदय को तन्मय करने के लिए लय (झंकार) की आवश्यकता पड़ी। फलस्वरूप वाद्यों का प्रयोग प्रारंभ हुआ। लोक जीवन से लेकर साधना पथ तक इस झंकार का अपना महत्त्व है। 'कबीरदास' जी ने हृदय वीणा से झंकृत होने वाली इस झंकार का '**अनहद नाद**' की संज्ञा प्रदान की है।

लोक वाद्यों ने बन्धन को कभी–भी स्वीकार नहीं किया है। प्राय: सभी शास्त्रिय वाद्यों को माध्यम बनाकर प्रारंभ हुआ। लोक जीवन में वाद्यों के दो स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगोचर हुए हैं।

(1) क्रिया वाद्य :– मनुष्य की क्रियाएँ वाद्य का स्वरूप धारण कर लेती हैं। जैसे देकली के चलने से उत्पन्न ध्वनि।

(2) वस्तु वाद्य :– जहाँ किसी वस्तु को हम वाद्य के स्वरूप में पाते हैं। जैसे ढोलक आदि।

पूर्वी राजस्थान की लोक संस्कृति में साहित्य, संगीत व वाद्य का महत्त्व रहा है। माता के भजनों में लोक वाद्यों का प्रयोग कर विभिन्न भंगिमाओं में नृत्य किये जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत विद्या का योगदान अपूर्व रहा है।

पूर्वी राजस्थान के सवाई माधोपुर, वामनवास, करौली, हिण्डौन, गंगापुर क्षेत्र में विविध जातियों के अपने गीत हैं। पूर्वांचल के ये दो जिले मीणा जाति की अधिकता वाले है। जिनमें लोक संगीत व ख्याल आदि का बोलबाला पर्याप्त मात्रा में रही है। पूर्वांचल की धरोहर में ऊँच नीच की भावना समाज में चलती रहती है, किन्तु

नारियाँ व्यंग्योक्तियों द्वारा मन में छाये वाष्प को इस बहाने अवसर आते ही उगलती रहती है।

एक परिवार में भोज था। उस परिवार की एक औरत पान खाती हुई निकली तो व्यंग्य छूट ही गया।

''बाप दादा चबे न पान।
दाँत निपोरत गये पान।।''

सवाई माधोपुर, करौली क्षेत्र में लोकगीतों व ख्यालों के माध्यम से ही नहीं, कथा साहित्य के मिश्रण से लोक जीवन को नवीन राह निकाली है। आज के बदलते परिवेश में तथा शिक्षा के बढ़ते बदलाव में संस्कृति का निरन्तर ह्रास प्रकट हो रहा है तथा सरकारी गैर सरकारी संगठनों को दिव्य संस्कृति के लुप्त होते संस्कारों को रूढ़ियों व लोकरीतियों को बचाना होगा तभी संस्कृति जीवित रहेगी।

निष्कर्ष

सामर्थ्यवान पूर्वांचल की संस्कृति की सुन्दर छटा का सिंहावलोकन दृष्टव्य है। त्याग, तप, स्वाभिमान, लोकसाहित्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पूर्वी राजस्थान के सवाई माधोपुर करौली व धौलपुर के ब्रज भरतपुर व आस–पास की लोकपरम्पराओं को उकेर कर लोकदर्शन किया है। लोकजीवन में भी कर्म की प्रधानता व आचरण को महत्त्व दिया है। राजस्थानी लोकसाहित्य की अवधारणा का स्पष्टीकरण पूर्वांचल के विविध सन्दर्भों से जागृत हुआ है। लोकसाहित्य के विविध रूपों का विशद विवेचन पूर्वी अंचल सुगन्ध से स्पष्ट होता है। गद्य/पद्य रूप में लोककथाएँ , लोकगाथा, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोकानुरंजन, लोकगीत, लोककहावतें, दोहे, लोकचित्रण, हरजस व विविध साहित्य का विशद विवेचन पूर्वी अंचल की विशिष्ट परम्परा एवं पहचान कहना सर्वथा उचित होगा। सोलह संस्कार, बारहमासा, त्यौहारों, होली, दीपावली, दशहरा, गणगौर, नवरात्रा, श्रीकृष्ण

जन्माष्टमी आदि लोकपर्वों के माध्यम से पूर्वी राजस्थान की लोकसंस्कृति के दर्शन होते हैं। लोकप्रचलित कथाएँ व दन्तकथाएँ, लोकगीतों की माला पिरोकर हरी–भरी वसुन्धरा मुस्कराती प्रतीत होती है जिसके फूलों में एक पहचान बनकर साकार ऊर्जावान रूप प्रकट करती है। कलियुग में पूजित देवी कैला मय्या, श्री मदनमोहन, गणेश जी, रणतभँवर के लाड़ले, शिव भगवान् के द्वादश ज्योर्तिलिंग में से एक है जो शिवाड़ नाम से प्रसिद्ध चमत्कारी है। ऊर्जावान लोकसाहित्य के विहंगम दृश्य पूर्वी अंचल के लोकगीतों, बिखरते फूलों की स्मृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, जो विविधता में एकता की परिचायिका के रूप में स्पष्ट परिलक्षित है। सवाई माधोपुर, धौलपुर, भरतपुर, करौली क्षेत्र की ब्रजमिश्रित राजस्थानी की मिठास को प्रभावित करने वाली सरल शैली की अभिव्यक्ति से सरोबार प्रतीत होती है।

❑

अध्याय–तृतीय

संस्कृति एवं समाज का सामान्य अध्ययन

राजस्थान की मरूधरा के कण–कण से संस्कृति की मधुर महक उठती है, जिससे खुशबू में एकता, अखण्डता व सौहार्द का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पुराने समय से राजपूताना या राजस्थान की संस्कृति का सिंहावलोकन करें तो यह स्पष्ट सामने आता है कि भारतीय समृद्ध इकाइयों का महत्त्वपूर्ण स्थान राजस्थान रहा है, जिसमें अन्तर वेद, सौवीर, मरुकान्तार, लाट, गुर्जर आदि भाग की सीमाएँ सम्मलित थी। अंग्रेजों ने निजी स्वार्थपूर्ति हेतु सीमांकन कर राजपूत क्षेत्रों का नाम राजपूताना नाम रख दिया। स्वतन्त्रता के बाद जब देशी रियासतों का विलय हुआ तो हर्षकालीन शासकीय व्यवस्था के आधार पर राजस्थान नाम रखा गया। राजस्थान प्रान्त के करौली, सवाईमाधोपुर व धौलपुर भरतपुर का कुछ हिस्सा बयाना, गंगापुर तक के क्षेत्र का लोकजीवन लोकसाहित्य सजीवता प्रदान करता है।

संस्कृति का व्युत्पति परक अर्थ

संस्कृति शब्द मूलत: संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु से सम्बद्ध है जिसका अर्थ है 'करना'। प्रस्तुत शब्द के पूर्व में सम् उपसर्ग तथा घात (ति) प्रत्यय लगने से संस्कार शब्द बनता है, जिसका अर्थ है सम् (समान) कृति (कार्य व्यापार) अर्थात् समानता, समान करना, पूरा करना, सुधारना, सज्जित करना, माँजकर चमकाना शृंगार सजावट आदि प्रमुख हैं। इसी से सम्बद्ध संस्कृत शब्द जो सम् + कृ + त से बना है तथा जिसके अर्थ 'पूरा किया हुआ हैं। माँजकर चमकाया हुआ सुधरा हुआ आदि है। इसी विशेषण की संज्ञा ही संस्कृति है। संस्कृति ऊर्जावान परिवेश को प्रकट

कर जनसमुदाय को एकीकार कर जन–मानस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न करती है जिसका प्रभाव लोकजीवन पर अधिक पड़ता है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार

संस्कृत के सम् उपसर्ग की (ऽ) कृ (आ) धातु से बनता है। जिसका मूल अर्थ है साफ या परिष्कृत करना है। आज हिन्दी में यह अंग्रेजी शब्द कल्चर का पर्याय माना गया है। संस्कृति शब्द का प्रयोग कम–से–कम दो अर्थों में होता है, एक व्यापक और एक संकीर्ण अर्थ में। व्यापक अर्थ में उक्त शब्द का प्रयोग नर विज्ञान में किया जाता है। नर विज्ञान के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहारों या उस व्यवहार का नाम है जो कि सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में संस्कृति को 'सामाजिक प्रथा' (कस्टम) का पर्याय भी कहा जा सकता है। संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है, और सुसंस्कृत व्यक्ति एक सभ्य व्यक्ति समझा जाता है। इस अर्थ में संस्कृति प्राय: उन गुणों का समुदाय समझी जाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत, परिमार्जित एवं समृद्ध बनाती है।[1] लोक साहित्य की विशिष्ट परम्परा का करौली, सवाई माधोपुर, धौलपुर के क्षेत्र की सांस्कृतिक परम्परा में विशेष योगदान रहा है।

बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार

संस्कृति शब्द अति प्राचीन है जिसका अर्थ व स्वरूप भी प्राचीनता लिए हुए है। संस्कृति का अर्थ है पूर्ण करना, शुद्धि सुधार, परिष्कार, निर्माण, पवित्रीकरण, सजावट, निश्चय, उद्योग आचरणगत परम्परा, सभ्यता का वह स्वरूप जो आध्यात्मिक एवं मानसिक वैशिष्ट्य का द्योतक होता है। 24 अक्षरों का वर्णव्रत[2] मेरी विनम्र सम्मति में संस्कृति वह पुरातन समृद्ध परम्परा है जो मानव को मानवेत्तर

---

1. कल्याण सिंह शेखावत : राजस्थानी संस्कृति संस्करण 2003 पृ. 2, 3
2. सं. राजेन्द्र साइवाल, धनराज दफ्तरी : राजस्थानी संस्कृति सन्दर्भ और स्वरूप संस्करण 2005, पृ. 105

बनाने तथा उसके कल्याण हेतु तत्पर है। साहित्य लोकजीवन, लोकगीत, लोकविश्वास, पुरातन परम्परा आदि का उल्लेख संस्कृति की पृष्ठभूमि को प्रकट करता है।

पाश्चात्य विचारकों के मतानुसार मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार ''किसी समान राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ ही संस्कृति है।''

हरस्को विट्स के अनुसार ''संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है।''

मजूमदार एवं मदान के अनुसार ''लोगों के जीवन जीने के ढंग को ही संस्कृति कहते हैं।

डॉ. सत्यकेतु के अनुसार ''चिंतन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है, उसका परिणाम संस्कृति के रूप में होता है।

डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र के अनुसार ''माँजी, सँवरी जीवन-वृत्ति कथा जीवन धर्म ही संस्कृति है।''

डॉ. अशोक शास्त्री के अनुसार "समाज वृत्ति व समान भाव को प्रकट करने वाली भावनात्मक सत्ता ही संस्कृति है।"[1]

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार ''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।''[2]

हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''संस्कृति मानव की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणिति है। सभ्यता का आतंरिक प्रभाव ही संस्कृति है।

---

1. भारत का लाल : सं. अशोक शास्त्री, 2016
2. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय प्र.सं. दिसंबर 1965 द्वि.सं. 1962 नवीन संस्करण 2005, पृ. 98

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ''मानव के सामाजिक और वैचारिक व्यवहार तथा उससे विकसित चीजें जैसे विचार, साहित्य, कला, कानून, नैतिकता, जाति, धर्म, दर्शन, विश्वास, रीति–रिवाज आदि के समवेत रूप को संस्कृति कहते हैं, जो तरह–तरह के परिवेशों तथा परम्पराओं को परिणाम होता है। ये समवेत रूप सांस्कृतिक है। अत: एक प्रकार के सांस्कृतिक घटक हैं।

स्व. रामनारायण मिश्र के अनुसार ''संस्कृति का सम्बन्ध हमारे मन हृदय मस्तिष्क के संस्कारों से रहता है।''[1]

रामनाथ सुमन के अनुसार ''संस्कृति अंधकार से उठकर प्रकाश, असत्य से सत्य और मृत्यु से अमृत्व के स्रोत की ओर यात्रा करने की वृत्ति है।''[2]

श्री मनोहर शर्मा के अनुसार ''मानव मन की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से जो उसका विकास हुआ है। उसका नाम संस्कृति है।''

डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार ''संस्कृति अंत:करण है, सभ्यता शरीर है। संस्कृति वह साँचा है, जिसमें समाज के विचार ढलते हैं, वह बिन्दु है, जहाँ से जीवन की समस्याएँ देखी जाती हैं।''

डॉ. अशोक शास्त्री के अनुसार, "मानवीय सभ्यता, परिवेश तथा जीवन क्रम की ऊर्जावान शक्ति ही संस्कृति है।" [3]

रानी लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत के अनुसार

''संस्कृति शब्द का अर्थ बड़ा गहन एवं विशाल है। केवल साहित्य और संगीत ही इसके अन्तर्गत नहीं आता है। कला कौशल, शिल्प, हमारे ये महल, मंदिर, किले ही नहीं झोंपड़ियाँ भी हमारी संस्कृति की दर्पण हैं। हमारी पोशाकें त्यौंहार,

---

1. रानी लक्ष्मी कुमारी चूढ़ावत : सांस्कृतिक राजस्थान, प्र.सं. 1994, पृ. 87
2. राम नाथ सुमन 'सम्मेलन पत्रिका' लोक संस्कृति विशेषांक' हिन्दी साहित्य प्रयाग सं. 2010 पृ. 08
3. डॉ. अशोक शास्त्री : साक्षात्कार, 19.6.15

रहन–सहन, खान–पान तहजीब तमीज, सभी संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं। थोड़े–से शब्दों में कहा जाये तो जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है वह संस्कृति है।''[1]

डॉ. तारा प्रकाश जोशी के अनुसार ''संस्कृति मनुष्य की वह सृजनशीलता है, जो उसे परम सौन्दर्य का आराधक बनाकर मानवीय बना देती है और इस प्रकार मनुष्य को सुरुचिपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित करती है। दु:ख से सुख की ओर, अशुभ की और अन्याय से न्याय की ओर, असुन्दर से सुन्दर की ओर, अकर्मण्यता से कर्मण्य सृजन की ओर, अशांति से शांति की ओर जाने का नाम ही संस्कृति है।''[2]

डॉ. अशोक शास्त्री ने संस्कृतिको संक्षिप्त रूप में इस प्रकार से परिभाषित किया है ''कि सम्पूर्ण समाज को असभ्य परिवेश से सभ्यता की ओर निरन्तर उन्मुख करने वाली सार्थक प्रक्रिया ही संस्कृति है जो सभी वादों व भेदों से परे हैं।''[3] स्वामी ईश्वारानन्द गिरि, श्यामचरण दुबे, बलदेव प्रसाद मिश्र प्रभृति विद्वानों ने स्वच्छ परिवेश से आबध प्रक्रिया को ही संस्कृति माना है। अंत में मेरी विनम्र सम्मति में संस्कृति वह सनातन परम्परा या धारा है, जो अबाध गति से प्रवाहित होकर सम्पूर्ण समाज को प्रेरित करती है।

विकास के सोपान :– संस्कृति की चर्चा करें तो भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से प्राचीन है। यहाँ का धर्म भी सनातन है और देशों की संस्कृति का विकास भी भारतीय संस्कृति के बाद ही हुआ है। संस्कृति जीव संस्कृति विकास की कथा है। दशावतार की सम्पूर्ण कथा से ही भारतीय संस्कृति के विकास का पता लगता है। (1) मत्स्यावतार (2) कूमा (कछुआ) अवतार (3) वराह अवतार (4) नरसिंह अवतार (5) वामन अवतार (6) परशुराम अवतार (7) रामावतार (8)

---

1. लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत : सांस्कृतिक राजस्थान प्र.सं. 1994, पृ. 87
2. डॉ. तारा प्रकाश जोशी से साक्षात्कार
3. डॉ. अशोक शास्त्री से साक्षात्कार

कृष्णावतार (9) बुद्धावतार तथा (10) कल्किअवतार। ये सभी धरती पर अधर्म अधिक बढ़ने पर तथा धर्म की रक्षा व संस्कृति के क्षय को रोकने हेतु समय-समय पर अवतार लेते हैं तथा जनकल्याण करते हैं।

ये सब पौराणिक कथाएँ मानव जीवन पूर्ण घटित है, जो कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में संस्कृति के प्रतीक हैं। वराहवतार में जल व थल दोनों का सांस्कृतिक जीव है। वामन अवतार में वामन लघुमानव का प्रतीक है। श्री कृष्ण लीला के प्रतीक हैं। बुध ज्ञान के प्रतीक हैं। कल्कि आधुनिक ज्ञान व सृजन का प्रतीक है। इस प्रकार जीव सृष्टि विकास के साथ-साथ संस्कृति का निर्माण भी होता रहा है। स्त्री पुरुष के मिलन से ही सृष्टि का निर्माण हुआ, वंश वृद्धि कर आने वाली पीढ़ी का प्रतीक बनी। धीरे-धीरे सृष्टि में नवीनता का संचार होने लगा और मानव जाति जब स्थायी रूप से कृषि पर आधारित जीवन जीने लगी, उससे पहले भी शिकारी व पशुपालक के रूप में सांस्कृतिक सृजन होता था। मांस भक्षण, पशु-पालन तथा नृत्य गीतों की परम्परा के दर्शन भी इस संस्कृति की पहचान है। कालांतर में जंगली जीवन के बाद धीरे-धीरे मकान बनाकर स्थायी रूप से रहने लगे। धीरे-धीरे जंगली छालों का रूप बदला पालतु पशुओं की ऊन से वस्त्र बनाना शुरू किया। यदि संस्कृति विविध आयामों की चर्चा करें तो कठिन होगा; किन्तु उपयोगिता व सृजन के कारण अलग-अलग संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा। पेड़, पोधों का बीजारोप, संवर्धन करने वाली जाति 'वनपालन' कही जाती थी। जिसे आज 'मालाकार' या माली कहते हैं। पहले धागे बनाते थे। वे अब 'पिजारा' कहलाते हैं।

रुई कपास से सूत बनाकर धागे का रूप देने वाले 'जुलाहा' कहे जाने लगे तथा दरी-पट्टियाँ इन्द्रधनुषी रंगों से सुशोभित होने लगीं और संस्कृति की सृजनशीलता प्रकट होने लगी, विश्वकर्मा इनके इष्ट देवता हो गये। भारतीय संस्कृति केवल उपयोगितावादी न होकर सृजन कलात्मकता से ओत-प्रोत है। 'मांडणें' से ही

चित्रकला विकसित हुई जो लोक और शास्त्रों में ख्याति अर्जित की। रंगों के सृजन के बाद 'नादब्रह्म' का उदय हुआ। इसका उदय 'ताल' और 'ताली' से हुआ। फिर यह कण्ठ–लय, वाद्य–लय में नवीन नृत्य और राग के सृजन का आधार बना। यह श्रम करने के समय प्रारंभ से ही उपयोगी था और बाद में इस नाद्मय कला में सौन्दर्य की सृष्टि होती रही। इसी सन्दर्भ में **डॉ. तारा प्रकाश जोशी** का मत श्लाघनीय है ''भाषा, सम्प्रेषण का माध्यम ही नहीं है, बल्कि मनुष्य की मौलिक सोच, अभिव्यक्ति सम्प्रेषण एवं सृजन का माध्यम भी है। जब भाषा को नए–नए अर्थों में प्रयोग करने लगते हैं, तब सौन्दर्य की सृष्टि होती है। यह लोक जीवन का सर्व प्रधान गुण है। साहित्य का सृजन भाषा की अन्यतम् सृष्टि है।''

डॉ. राजगोपालाचारी ने संस्कृति के पाँच सोपानों को प्रमुखता दी है जो इस प्रकार हैं। स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतता व साहित्य आदि प्रमुख है, जो कि संस्कृति सभ्यता व परिवेश को प्रभावशाली बनाते हैं तथा आम जन में नवीन संस्कार उत्पन्न करते हैं। सभ्यता परिवेश को प्रभावित करती है।

राजस्थान की भौगोलिक स्थिति व संस्कृति पर पड़ने वाला प्रभाव

राजस्थान प्रांत की भौगोलिक स्थिति व प्राकृतिक संरचना इस प्रकार की बनी है, कि आम आदमी को प्रभावित किये बिना नहीं रहती है। अरावली पर्वतमाला की श्रेणी के अचंलों में यहाँ की मौलिक जन–जाति को बाह्य प्रभाव से अलग रखा है, ताकि पुरातन संस्कृति को सुरक्षित रख सके। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की पुरातन परम्परा ने राजस्थानी संस्कृति में वे गुण छोड़े हैं। उत्तर भारत में होने वाले आक्रांताओं के आक्रमणों से बचाने में अरावली पर्वतमाला की शृंखला ने पर्याप्त योगदान दिया है साथ ही संस्कृति को समय–समय पर प्रयत्न मिलता रहा है।

बाहरी विजेताओं राजस्थानी संस्कृति, मूल्य व परम्पराओं के सम्पर्क में आने के बाद संस्कृति को गृहण कर पोषक बन गये। राजस्थानी संस्कृति के संवर्द्धन में

अपना सर्वस्व न्यौंछावर कर दिया। राजस्थान की पवित्रतम वीर भूमि की चर्चा करें तो गुजरात, मध्यप्रदेश व हरियाणा राज्य के लोग भी यहाँ आकर बसे और धर्म और पुण्यकार्यों में आगे बढ़कर आये। रणकपुर मंदिर व देलवाड़ा के मंदिर इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। पर्वतीय वृक्ष सम्पदा ने भारतीय ही नहीं, विश्व के पर्यटकों को भी प्रभावित किया है। राजस्थान की तीज त्यौंहारों की छाप पूरे देश में प्रसिद्ध है। मधुर वाणी व सुन्दर वेशभूषा भी प्रभावशाली रही है।

मरूधरा की गंध की महक ने सम्पूर्ण भारत को महका रखा है। रेगिस्तान की मृगमरिचिकाओं की शुष्कता तथा निर्जनता ने कई आक्रमणकारियों की घुसपैठ को रोककर सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा की है। जैसलमेर में मंदिर व जैन भण्डारों की विरासत दर्शनीय है। ताड़पत्रों पर लिखित साहित्य का पर्याप्त भण्डार है। वीर भूमि राजस्थान के रणबाँकुरों ने माटी की लाज रखने के लिए अपन सर्वस्व न्यौछावर कर मातृभूमि की लाज रखी। वीरागंनाओं ने जौहर किये तथा माँ ने पुत्र को मातृभूमि की रक्षा के लिए दूध की कसम तक दिला दी है–

इला न देणी आपणी हालरिया हुलराय।
पूता सिखावे पालणे मरण बड़ाई माय।।

माता व मातृभूमि राजस्थान संस्कृति के सदैव आदर्श रहे हैं। नदियों की धाराएँ आज मरूभूमि को हरा–भरा कर रही है। गुर्जर प्रदेश व मालवा की सीमा भी हरी–भरी हैं, तथा यहाँ से व्यापारिक सम्बन्ध पुराने है। राजनीतिक की चर्चा करें तो राजस्थान को अकबर सम्राट् ने राजनीतिक केन्द्र बनाया। संस्कृति की अविरल परम्परा की निर्वाह 21वीं शताब्दी में भी मान्य है। राजस्थानी मूल भाषा में हिन्दी साहित्य के साथ लोक साहित्य भी पर्याप्त देखने को मिलता है।

राजस्थानी एवं पूर्वांचल (करौली एवं सवाई माधोपुर) जिले की संस्कृति की मौलिक एकता

भारतीय वेद-पुराणों में संस्कृति की विविध विचारधाराओं का विश्लेषणात्मक अनुसंधान प्राचीनकाल से निरन्तर होता आ रहा है। राजस्थानी पूर्वी अंचल की संस्कृति सबसे पृथक् नहीं वरन् उसीका एक अंशमात्र है। चतुवर्ण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सतत् परम्परा का अनुसरण पूर्वी राजस्थान के संस्कारों में समाहित है, और प्रेरणा का स्रोत रही है। ईसाई मिशनरियों, यहूदियों, मुस्लिम आक्रान्ताओं के अनाचारों के बाद भी साम्प्रदायिकता का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। ऐसी अक्षुण्ण परम्परा का निर्वाह वर्तमान परिवेश में भी प्रचलित है। यहाँ विविधता में एकता का निर्वाह वर्तमान परिवेश में भी प्रचलित है, जिसके कई उदाहरण हैं, जो मौलिकता को दर्शाते हैं—

1. अविच्छिन्नता

प्राचीनकाल से भारतवर्ष पर निरन्तर आक्रमण होते रहे हैं, जिससे छोटे-छोटे राज्य परस्पर एक-दूसरे पर आक्रमण करते रहे हैं, जिससे आन्तरिक सुरक्षा कमजोर हुई है। उस आपदा को सहर्ष सहा तथा डटकर उसका मुकाबला किया। विषम एवं भयावह स्थितियों में भी शत्रुओं से मुकाबला कर सर्वसमाज में समन्वयात्मकता की भावना को जीवित रखना पूर्वी राजस्थान की परम्परा रही है। त्याग, परोपकारिता, कर्मठता, सहज जीवन की अभिव्यक्ति बन गयी। वचन की दृढ़ता, कर्तव्यपरायणता, 'अतिथि देवो भव' की भावना पूर्वी राजस्थान के कण-कण से बोलती है, वीरभूमि राजस्थान की अविरल परम्परा का इतिहास भी बखूबी दर्शाता है। संस्कृति का ह्रास करने के लिए आक्रांताओं द्वारा रचे प्रपंच किन्तु परम्परा को किसी प्रकार आघात नहीं पहुँचने दिया।

2. पूर्वी अंचल में साहित्य और कला की उत्कृष्टता

भारतीय संस्कृत साहित्य व अन्य साहित्यों की कला ने संस्कृति में चार चाँद लगा दिए हैं। आध्यात्मिक, सामाजिक तथा काल्पनिक पक्ष पर विशेष ध्यान दिया है। भारतीय ज्ञान, दर्शन तथा साहित्य की झाँकी कलाकृतियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर है। पूर्वी अंचल का करौली एवं सवाई माधोपुर इस क्षेत्र में पीछे नहीं है। सगुण भक्ति का प्रचार-प्रसार अपने आराध्य देव गणेश जी, कैला मैय्या, मदनमोहन जी, महावीर जी, शिव भगवान् की प्रतिमाओं का स्वरूप साक्षात् बोलता प्रतीत होता है। यहाँ की कला व संस्कृति का सम्मिश्रण सुन्दर सत्य और शिवमय प्रतीत होता है। आबू पर्वत, ओसिया जी, रणकपुर, बाडोली जगत् अथवा ओसिया आदि देवालयों की देवी, देवताओं की मूर्तियों में हम वही गौरव तथा प्रसन्नता की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है जो हमें देवगढ़, खजुराहो तथा भीतरगांव आदि की मूर्तियों में देखने को मिलती है। मंदिरों के गर्भगृहों, अस्पतालों, मण्डलों, शिखरों का नियोजन उसी तर्ज पर है, जो भारतीय मन्दिरों में मिलता है। आध्यात्म का केन्द्र पूर्वी राजस्थान है।

3. उदारता व सहिष्णुता

भारतीय भूमि विविध धर्म सम्प्रदाय के लोगों का जीवन जीने की नई-नई प्रेरणाएँ देती हैं, मूल्यों की नैतिकता वेद-पुराणों के साथ धार्मिक ग्रन्थों से सद्मार्ग की प्रेरणा मिलती है। विदेशी जातियों ने धीरे-धीरे देश में प्रवेश किया किन्तु उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति किए बिना शरणार्थी के रूप में देश में पूर्ण अधिकार दिए गए। 'हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई आपस में हैं भाई-भाई।' का नारा आज भी प्रचलित है। आज राजनीतिक, सामाजिक व महत्त्वपूर्ण पदों पर इनको स्थान प्राप्त है। इनके साथ विभेदों की अपेक्षा सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार होता है।

4. वनवासियों के प्रति सम्मानप्रद भावनाएँ

राजस्थान प्रदेश के राजा–महाराजा व नेताओं ने अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक नहीं माना, अपितु अपने उत्थान के लिए तथा जनकल्याण के लिए साधक माना। मान्यताओं, विश्वासों, रूढ़ियों तथा प्रचलित परम्पराओं व युद्ध कौशल को भी अंगीकार किया। सम्पूर्ण राजस्थान मौलिक संस्कृति की धारा में अवगाहन करता रहा है। आज के भौतिकवादी परिवेश भी एकता एवं अखण्डता में विश्वास करता है। यद्यपि राजस्थान प्रांत के दक्षिण पश्चिम क्षेत्र में उनकी स्थिति इतनी सुदृढ़ नहीं हो पायी जिसका कारण अशिक्षा व उनकी रूढ़िवादिता प्रमुख रही है किन्तु सांस्कृतिक परिवेश अंचल के अनुरूप है।

5. सहानुभूति

रेत के धारों से लेकर चम्बल नदी के छोरों—पांचना बाँध तक वसुन्धरा के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। कहीं रेत के टीले, कहीं पहाड़ियाँ, मैदान व घाटियाँ हैं। भौगोलिक दृष्टि से विभिन्नता प्रतीत होती है; किन्तु मौलिकता, चरित्र, निष्ठा, त्याग, प्रेम, एकता, समर्पण, वीरता, बलिदान आदि के सामने कुछ नहीं है। ऐतिहासिक सभ्यता, संस्कृति का परिवेश, मौलिकता की कड़ियाँ मेवाती, हाड़ौती, ब्रज, ढूंढाड़ी, मारवाड़ी व मेवाड़ी क्षेत्र की आन, बान और शान से सम्पूर्ण होती है।

6. समन्वयात्मकता

विदेशी आक्रमणों के बाद विभिन्न संस्कृतियों का आगमन भारत में हुआ। उनसे हमें सीखने को मिला। भारतीय संस्कृति ने अन्य संस्कृतियों को समावेशित कर परस्पर समन्वय की भावना, वेद–वेदांग, कुरान शरीफ, गुरु ग्रन्थ साहेब आदि से प्रेरणा ग्रहण की है। मस्जिद, मंदिरों में हिन्दूओं का गमन, शहीद का स्थान आदि। कैलादेवी मंदिर, रणथम्भोर गणेश जी, जिसे त्रिनेत्र गणेश जी भी कहते हैं तथा महावीर स्वामी जैनों का तीर्थस्थल है। मदनमोहन जी बांके बिहारी का मंदिर है। ये

समाज में एकता, आपसी भाई चारा व सौहार्द्र बढ़ाते हैं। तपोभूमि राजस्थान में ऋषियों, मुनियों व साधकों ने इच्छित सिद्धियाँ अर्जित की है। तीर्थराज पुष्कर में ब्रह्मा जी का विश्व में एक ही मंदिर है, ख्वाजामुइदीन चिश्ती की दरगाह। खनन, कृषि तथा शिक्षा के क्षेत्र में आज अग्रणी राज्यों की श्रेणी में है राजस्थान।

7. माता व पिता का पूज्य स्थान

भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा विविधता में एकता की भावना कूट-कूट कर भरी है। सांस्कृतिक रूप के दर्शन प्रत्येक नर-नारी में विद्यमान हैं। हिन्दु पिताओं ने मुस्लिम बेटियों की शादियाँ की है। आज की अपनी बेटियों से ज्यादा स्नेह देकर माताओं ने अपनी मिशाल पेश की है। प्रकृति का सौन्दर्य लोकगीतों की धुनें, मेलों के दृश्यों का मनोहर रूप, कैला मैय्या के लांगुरियों में रस, ब्रजभाषा, कृष्ण राधा का बाल, युवा व अन्य रूपों में दर्शन, श्रीराम की मर्यादा, आदर्श, त्याग तप का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति के कारण ही भारत को जगद् गुरु की उपाधि अर्जित है। सम्पूर्ण विश्व पर राज करने वाले च गुप्त, अशोक सम्राट्, बाबर, सिकन्दर जैसे शासकों को नमन करके राजस्थानी पवित्रतमा भूमि धन्य हो गई है।

8. नैतिकता, आदर्श एवं मर्यादा

भारतीय संस्कृति के आदर्श वेद, पुराण, रामायण, महाभारत व गीता के नियमों व मर्यादा का पालन कर अपने आप को प्रदेशवासी धन्य मानते हैं। षड् ऋतुओं तथा बारहमास के त्योंहारों, पर्वों, नवरात्र, होलिका, दीपावली, ईद, क्रिसमिस, गुरु नानक जयन्ती उत्सवों में नैतिकता की सीख लेकर मर्यादित श्री राम की उपासना करते हैं तथा उनके द्वारा बताये मार्ग का सहर्ष पालन करते हैं।

9. प्रेरणा के स्रोत

वैसे मानवीय सभ्यता का इतिहास निरन्तर गतिमान होकर संस्कृति में प्रविष्ट होकर अमानव से मानव बनाने में सफल रही है। पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का

प्रमुख अन्तर यही है कि यहाँ रिश्तों की पहचान होती है। माता–पिता–भाई–बहिन–पत्नी–पुत्र आदि। बुजुर्गों की बातें सुनकर आशीर्वाद लेते हैं तथा उनकी प्रेरणा से प्रेरित होकर सद्मार्ग पर चलते हुए जीवन की नूतन राह का अन्वेषण कर समाज को सम्यक् गति प्रदान करने में अग्रसर रहते हैं।

10. चतुवर्ग में आस्था

यह शाश्वत वैज्ञानिक तथ्य हैं कि प्रत्येक मानव में चारों वर्गों का समावेश है। धर्म जो कि भारतीय संस्कृति में 'धर्मनिरपेक्षता' विविध धर्मों को मान्यता प्राप्त है। मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चर्च आदि। प्रत्येक व्यक्ति को धनार्जन कर परिवार का पालन करने की छूट है। काम की चर्चा करें तो मानवीय प्रकृति के साथ संसार की सृष्टि करना, संचालन कर मानसिक दैहिक शांति के साथ रिश्तों की नजदीक होती है। मोक्ष अर्थात् इस सृष्टि में जन्म लेकर मर्यादित इस संसार से देवलोक गमन है। यह विधि का विधान है जो शाश्वत सत्य है।

पूर्वांचल की लोक संस्कृति

लोकवाङ्मय की सभी विधाओं में लोकगीत, ख्यालों, नाटकों, नृत्यों आदि का विशिष्ट महत्त्व है। इन विधाओं में लोक जीवन मनोरंजन और संस्कृति का अनुपम रूप निहारने को मिलता है। इन विधाओं के लिए न कोई शास्त्र रचे गये हैं, न इनके प्रणेता कोई ऋषि मुनि हैं। इनके अन्तर्गत जो गीत या नृत्य हैं, उनके रचयिता भी अज्ञात हैं। सामुदायिक वातावरण और परम्परागत अभ्यास द्वारा इन कलाओं में प्राण बसे हैं। स्मरण कर रूढ़ियों की जीवित रखने में इस कला का अपूर्व योगदान रहा है। पुरातन युग से चली आ रही परम्परा राजस्थानी संस्कृति का प्राण बनी हुई है। इस विधा का लोकनाट्य, लोकनृत्यों, लोकख्यालों व अन्य विधाओं का प्रमुख स्थान है। मनोरंजन के साधन, ग्रामीण, कस्बाई क्षेत्रों व नगरों में समान रूप से मिलते हैं। सामाजिक जीवन व संस्कृति के प्रतीकों के मध्य कोई सीमा नहीं रहती; बल्कि इनकी

अभिव्यक्ति, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों मं सर्वत्र मिलती है जिनका रसास्वादन सम्पूर्ण जनता करती है। पूर्वांचल की संस्कृति की विशिष्ट परम्परा करौली सवाई माधोपुर के लोकजीवन में देखने को मिलता है।

लोक संस्कृति की परिभाषाएँ

रामलाल के अनुसार ''लोक जीवन का समाज के स्तर पर समीकरण ही संस्कृति है, भारत में इस संस्कृति की मूल भूमि अध्यात्म या आत्मोन्नति स्वीकार की है।''[1]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय 'लोक संस्कृति मानव जीवन के समस्त अंगों से सम्बन्धित होने के अतिरिक्त, उसके लोक साहित्य को भी आत्मसात किये हुए है। यदि लोक संस्कृति को किसी विशाल वृक्ष से उपमा दी जाये तो लोक साहित्य उसकी शाखा के समान है, यदि लोक संस्कृति एक विस्तृत नदी है, तो लोक साहित्य एक छोटी-सी नदी के समान है। यदि लोक संस्कृति की तुलना राष्ट्र से की जाय तो लोक साहित्य उसके सप्तांगों में से एक महत्त्वपूर्ण अंग है। यदि लोक संस्कृति की उपमा शरीर से दी जाये तो लोक साहित्य उसके एक अंग के समान है।

गोपीनाथ कविराज के अनुसार ''लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पलती और पनपती है। इसके उपासक या संरक्षक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अन्दर की पुस्तकें हैं। उनके हृदय सरोवर में श्रद्धा के संदेश सुमन खिले रहते हैं। लोक संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा भक्ति की प्राथमिकता रहती है। उसमें अविश्वास तर्क का कोई स्थान नहीं रहता। इसी से ज्ञान और सिद्धि की सहज प्राप्ति होती है। 'श्रद्धावान लभते ज्ञानम् तत्पर : संयेतिइन्द्रय' यह सिद्धान्त लोक संस्कृति के उन्नायक भगवान् 'श्रीकृष्ण' के मुख से उच्चारित हुआ है। लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है। वह अन्त सलिला सरस्वती की भाँति जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ

---

1. कु. उर्मिला सैनी राजस्थानी लोक साहित्य में चित्रित संस्कृति और समाज पृ. 109 (शोध प्रबन्ध) 2007

करती है।''[1] करौली व सवाई माधोपुर की लोक संस्कृति की छटा लोकगीत, लोकगाथा व लोकजीवन, लोक विश्वास में देखी जाती है, जो छोटे-छोटे गीतों में राजस्थानी के अतिरिक्त ब्रजभाषा का समन्वय परिणत है।

संस्कृति की सारगर्भित अर्थयुक्त परिभाषा में शारीरिक अंगों की तुलना की गई है। लोक संस्कृति व लोक साहित्य को एक-दूसरे से अलग करना असंभव है। संस्कृति अंगी है तो साहित्य अंग है-

''लोक संस्कृति अंगीस्यात्
साहित्यमगंमुच्यते
इति ते सशयता भूत
उमयोजन्तरंमहत।''[2]

लोक संस्कृति के मूल तत्त्व

वैसे तो संस्कृति की विशाल पृष्ठभूमि है किन्तु लोक जीवन व लोक व्यवहार में विभिन्न तत्त्वों में समावेश किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप निम्न बिन्दुओं में द्रष्टव्य है—

(1) विविधता में एकता :- राजस्थानी ही नहीं भारतीय संस्कृति की पहचान है कि विभिन्न धर्मावलम्बी, विभिन्न जाति, धर्म के अनुयायी यहाँ रहते हैं। उनमें अनेक बातों में भिन्नता के विचार होने पर भी पर्वोत्सवों में तथा सांस्कृतिक विषयों में एकता के स्वर प्रस्फुट होते हैं तथा संस्कृति की परम्पराओं के अनुसार ही चलते हैं। यह राजस्थानी लोक संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। सवाई माधोपुर, गंगापुर, धौलपुर, भरतपुर व करौली जिले के आस-पास के क्षेत्र में दृष्टिगोचर है।

---

1. रामनाथ सुमन 'सम्मेलन पत्रिका' (लोकसंस्कृति विशेषांक) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ. 20, 21
2. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 197

(2) बाह्य रूप में परिवर्तन पर तात्विक स्थिरता :- राजस्थानी संस्कृति नवीन नहीं वरन् अतिप्राचीन है। बाह्याक्रमणों के कारण हताहत हुई छिन्न-भिन्न संस्कृति का बाह्य रूप है, जो पश्चिम में पड़ोसी देश पाकिस्तान की सीमा तक है। उसमें बाहरी लोगों पर सीमा पर वाद-विवाद किये हैं किन्तु राजस्थानी लोक संस्कृति की परम्परा निरन्तर अपने पुरातन स्वरूप व संस्कारों से पूरित है जिसमें सम्पूर्ण राजस्थान की लोकचेतना प्रकट होती है।

(3) मानवता और सहिष्णुता :- राजस्थानी लोक जीवन में मानवीय संस्कार स्थित है। मानवीय जीवन में आपसी प्रेम एवं सौहार्द्र, उत्सवों व संस्कारों में देखने को मिलता है। परस्पर मिलन व सहयोग की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। पूर्वी राजस्थान के भरतपुर, करौली, धौलपुर व सवाई माधोपुर की ग्रामीण संस्कृति में मानवीय संवेदना स्पष्ट परिलक्षित है। यहाँ मनाये जाने वाले त्यौंहारों में सभी जाति धर्म के लोग एक-दूसरे को बधाई देकर खुशी की मनौती माँगते हैं।

(4) प्रकृति की उपासना :- राजस्थानी लोक संस्कृति में दैवीय शक्ति की उपासना की परम्परा आदिकाल से पूर्व की है। मोहन जोदड़ा एवं हड्डप्पा कालीन प्राकृतिक अवशेषों में पूजा-अर्चना, देवी, देवताओं के रूप मिलते हैं तथा प्रकृति की पूजा, पेड़-पौधों की पूजा। शमी वृक्ष (खेजड़े) की पूजा पहाड़ी मैदानों की हरियाली में अभ्यारण्यों में जंगली जानवर मानों प्रसन्नता की मुद्रा में नृत्य करते प्रतीत होते हैं। पीपल में सभी देवों का निवास होता है अत: पूर्वी राजस्थान में पीपला पून्यो को पूजा होती है तथा पित्रों का तर्पण, श्राद्धकर्म व क्रिया कर्म करते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य स्नान करना, चन्द्रमा की चौथ का व्रत करना आदि प्रकृति की उपासना के प्रतीक है।

(5) अमर सत्य का जो सदा सरल होता है, पालन :- हमारी मातृभूमि के कण-कण में सत्य के लिए समर्पण व त्याग की भावना प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है। वीरभूमि में राणा प्रताप, सांगा जैसे वीर यौद्धाओं ने सत्य की रक्षा के लिए तथा

संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए अपने आप को समर्पित कर दिया। स्वतन्त्रता सेनानी जिन्होंने गुलामी के समय मातृभूमि की रक्षा के लिए सर्वस्व न्यौछावर किया। उनकी त्यागमय भावना का अक्षरस पालन किया जाता है तथा समय-समय पर उनके त्याग व समर्पण को याद किया जाता है।

(6) आध्यात्मिक विकास :- आध्यात्मिकता राजस्थानी संस्कृति के कण-कण में व्याप्त है। धर्म की पालना, पर्वोत्सवों को उल्लास पूर्वक मनाना । देवी देवताओं की गाथाओं को सुनना-सुनाना व उनकी विधिवत् पलना करना। वैसे भी भारतीय संस्कृति में यह निश्चित है कि वह दैवीय सिद्धान्त में विश्वास करती है। यहाँ का आध्यात्मिक साहित्य भी प्रेरणा को स्रोत रहा है। तपोभूमि करौली (कैला मय्या) धौलपुर व गढ़ गणेश जी, महावीर जी, सवाई माधोपुर, चौथमाता आदि स्थानों का महत्त्व है।

(7) सन्तों, तत्त्व ज्ञानियों, महापुरुषों का युग युगान्तर में अटूट प्रभाव—राजस्थानी भूमि वीर पवित्रतमा है। क्योंकि वैदिक कालीन परिवेश से संस्कृत, प्राकृत, पालि अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य के पर्याप्त भण्डार हैं तथा विविध भाषाओं के विद्वानों को जन्म देने वाली भूमि है कवि लेखक, राजनेता, स्वतन्त्रता सेनानी आदि प्रमुख और व्यापार क्षेत्र तक में शेखावाटी ने पूरे विश्व में राजस्थान का नाम मारवाडी किये हुए हैं। कहा है– "**जहाँ न पहुँचे बैलगाड़ी वहाँ पहुँचे मारवाडी।**"

(8) प्रजापालक शासन :– पुरातन काल में प्रस्तर युग से राजाओं का शासन रहा फिर राजपूत, मुगल शासक आये इष्ट इण्डिया कम्पनी के अंग्रेजों ने राज किया। देश की आजादी के बाद प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। द्वैध शासन व्यवस्था हुई फिर पंचायती राज व्यवस्था से प्रजातन्त्र पहुँच कर उसकी सेवा करने वाला शासन बना।

इन सभी तत्त्वों, गहन अध्ययन तथा विश्लेषण करने से यह तत्त्व तो स्पष्ट हो गया कि राजस्थानी लोक संस्कृति में व्याप्त मूल तत्त्वों में यहाँ संस्कृति विरल परम्परा का अवसान नहीं हुआ, अपितु नवीन राह देखने को मिली है। इस सन्दर्भ में **रामनारायण मिश्र** का वक्तव्य सटीक प्रतीत होता है। संस्कृति शब्द विशिष्ट जन समुदाय के विचारों का बोध है और लोक संस्कृति साधारण जन समुदाय का।

मेरी सम्मति में लोक संस्कृति में विद्यमान तत्त्वों का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि राजस्थानी लोक जीवन से जुडी परम्पराओं, उत्सवों, पर्वों, आँचलिक परिवेश के विचारों का लोक–मानस पर आज भी प्रभाव अमिट है।

लोक संस्कृति के उद्देश्य

किसी भी संस्कृति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करें तो उसका साहित्य, पर्व, उत्सव, लोकनाट्य, संगीत, त्यौहार, धार्मिक सहिष्णुता, देवी–देवता, वैर, प्रीति प्रथाएँ, रीतियाँ धर्म, सम्बन्धों की निकटता, विवाहों की हिन्दू प्रणाली आदि का सूक्ष्म गहन व तथ्यपरक विश्लेषण प्रस्तुत है। लोक संस्कृति का प्रथम व मूल उद्देश्य है सामाजिक सन्दर्भों में अर्थात् वास्तविक जीवन में उसका सन्निवेश। लोक संस्कृति किसी देश की सभ्यता का दर्पण है, अर्थात् किसी देश के निवासियों की लोक संस्कृति को तभी जान सकते हैं। जब उसकी सभ्यता का पूर्ण ज्ञान हो। अत: दोनों अन्योन्याश्रित हैं। लोक संस्कृति का दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य समाज में प्रचलित सभ्यता का पुष्टिकरण तथा विभिन्न विधानों अथवा संस्थानों को औचित्य प्रदान करना है। किसी देश के मिथक सांस्कृतिक परम्परा को बल प्रदान करते हैं। इसी प्रकार से जादू टोना, धार्मिक अनुष्ठान आदि सामाजिक संरचना के रूप को बतलाने में व्यावहारिक मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं।

तीसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य शिक्षा प्रमुख माध्यम हो। विशेषतया उन असभ्य तथा अर्द्ध सभ्य समाज में जहाँ सभ्यता का प्रचार नहीं हुआ है यह शिक्षा का

अन्यतम माध्यम है। पालने के गीत तथा लोरी सुनकर बच्चों को आनन्द की प्राप्ति होती है। शिक्षाप्रद कथाओं, कहावतों आदि से उपदेश दिया जाता है। नैतिक शिक्षा का ज्ञान देना होता है जिससे चरित्र उज्ज्वल भविष्य की कामना की जाती है।

लोक संस्कृति का चतुर्थ व अंतिम उद्देश्य समाज में प्रचलित आचार या लोक व्यवहार की स्वीकृत शैली या रीति की एकरूपकता को स्थिर तथा दृढ़ बनाये रखना है। यदि कोई व्यक्ति समाज के विरुद्ध कार्य करता है तो उसे उपदेशप्रद कथाओं के माध्यम से सद्मार्ग की ओर उन्मुख किया जा सकता है।

निष्कर्ष :– राजस्थानी लोक संस्कृति की अविरल अमृत धारा का रसपान कर जीवनोत्सर्ग करने वाले धीर–वीरों की धरा है, जिसके मरुकण में त्याग, शौर्य, स्वाभिमान आदि गुणों को देखा जा सकता है। यहाँ की परम्पराओं का ह्रास की संस्कृति को मैली करने की कोशिश को वीरों के शौर्य ने रोका है। वैदिक काल से आज तक ज्ञान की सहस्रधाराओं को जो झरना फूटा था। वह अब पूर्ण बहाव को लेकर बह रहा है। यहाँ के लोक गीत, मीरा की वेदना, भक्ति राजस्थानीयों के हृदय का हार बनकर आज भी स्त्री चेतना को जाग्रत करती है। यही समष्टिगत आत्मप्रकाश लोकसंस्कृति है तथा उसकी जीवन्त चेतना को नये–नये आयाम देती है।

पूर्वीराजस्थान (करौली एवं सवाई माधोपुर) की सांस्कृतिक गतिविधियाँ

धन्य है वह पवित्र धरा जिसके सौन्दर्य को राष्ट्रीय उद्यान के विशाल भू–भाग तथा उसमें विराजमान प्रथम आराध्य श्री गणेशजी की पुरातन सिद्धिदायक मूर्ति विराजमान है। पूर्वांचल की संस्कृति का प्रतीक चिह्न है, जो विश्वमानस पटल पर है। पहाड़ी, नदियाँ, कृषकों द्वारा पशु–पालन, कृषि तथा वनों से घिरा क्षेत्र, जहाँ देवियों में श्रेष्ठ माँ कैलादेवी, महावीर जी तथा मदनमोहन जी, पानी का सागर पांचना बाँध की तराई से हरी–भरी भूमि व चम्बल से सटे इलाके की भूमि का सौन्दर्य देखते ही बनता है। बनास की रेत से बने शहरों के सुसज्जित भवन, शालाएँ, खनन के पत्थरों से बनी

पट्टियाँ, हिण्डौन क्षेत्र में पाटौर (पाटोल) के नाम से लगाकर छाया का कार्य करती हैं। यहाँ मेले, उत्सवों में परस्पर प्रेमभाव उत्पन्न होता है। विविधधर्मी सम्प्रदायवादी साधु-संत का पदार्पण होने से संस्कृति खिल उठती है। लोगों के चेहरों पर ब्रज के लांगुरियों की धुने मिलती है। प्रेम से बोला 'जयमाता दी' के नारे व लांगुरिया गाते राजस्थान ही नहीं अन्य प्रान्त से भी लोग यहाँ आते हैं।

पूर्वी राजस्थान की इन्द्रधनुषी संस्कृति में कोस-कोस पर बदले पानी आठ कोस पर बरसे पानी। खान-पान, रहन-सहन, व्रत-त्योंहार विवाह आदि मांगलिक कार्यों एवं पूजापाठ का विधान है। करवाचौथ का व्रत व पूजा के लिए माता पपलाज, चौथ का बरवाड़ा, शिवाड़ शिवजी की द्वादश ज्योतिर्लिंग की पवित्र स्थली। उद्योग-धंधों की चर्चा करें तो लाखेरी का सीमेंट उद्योग, हिंडौन का स्लेट उद्योग, करौली का खनन व्यवसाय निरन्तर गतिमान है। मुम्बई ट्रेक पर देवी का तीर्थस्थान है। इस प्रकार पूर्वी राजस्थान के धौलपुर, कुछ भरतपुर, करौली, सवाई माधोपुर के जिले के जनजीवन, आचार-विचार, परिवेश व रिश्तों की सघनता के ये सब प्रमाण है।

पूर्वांचल का समाज

मनुष्य स्वभाव एवं आवश्यकता से सामाजिक प्राणी है। क्योंकि वह समाज में रहता है तथा समाज में होने वाली क्रिया-प्रतिक्रियाओं को देखता है तथा संस्कृति से सरोकार रखने वाली सामाजिक गतिविधियों के संचालन में अपना सम्पूर्ण योगदान देता है। जाति, धर्म, लिंग, भेद से परे रहकर समाज कल्याण की सोचता है।

समाज का अर्थ स्वरूप एवं परिभाषा

'समाज' लेटिन भाषा के 'सोशियस' (Socius) से बना है। जिसका अर्थ है 'समाज' (सोशियल) के दो अर्थ होते हैं। सामान्य अर्थ में इस शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह के रूप में, किसी समिति के रूप में और किसी संस्था के रूप में किया जाता है। समाज शास्त्र में '**समाज**' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ में किया गया

है। वहाँ व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य पाए जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर निर्मित व्यवस्था को ही समाज कहते हैं।

मेकाइवर व पेज के अनुसार 'समाज रीतियों एवं कार्य प्रणालियों को अधिकार एवं पारस्परिक सहायता की अनेक समूहों तथा विभागों की मानव व्यवहार के नियन्त्रणों तथा स्वतन्त्रताओं की एक व्यवस्था है। इस सदैव प्रयत्नशील जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है और यह हमेशा परिवर्तित होता रहता है।[1]

श्यूटर के अनुसार ''समाज एक अमूर्त धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों जटिलता (सम्पूर्णता) का बोध कराती है।''[2]

पारसन्स के अनुसार ''समाज के उन मानवीय सम्बन्धों की सम्पूर्ण जटिलता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जो साधन साध्य सम्बन्धों के रूप में क्रिया करने में उत्पन्न हुए हों, चाहे ये यथार्थ हों या प्रतीकात्मक।''[3]

मेकाइवर एवं पेज समाजशास्त्रियों ने समाज के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर प्रकाश डाला है वह निम्नानुसार है– (1) रीतियाँ (2) कार्य प्रणाली (3) अधिकार (4) पारस्परिक सहायता (5) समूह एवं विभाग (6) मानव व्यवहार का नियन्त्रण (7) स्वतन्त्रता। इन तत्त्वों और उपुर्यक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन से सामाजिक विसंगतियाँ एवं विकास की जटिलताओं की समग्र अध्ययन परिवेशगत चुनौतियों का सम्यक् स्वरूप प्रस्तुत करता है। उसमें **तीन बातों** पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है–

---

1. एम.एल. गुप्ता, डी.डी. शर्मा : समाज शास्त्र के मूल तत्त्व पृ. 56–59
2. एम.एल. गुप्ता, डी.डी. शर्मा : समाज शास्त्र के मूल तत्त्व पृ. 56–59
3. एम.एल. गुप्ता, डी.डी. शर्मा : समाज शास्त्र के मूल तत्त्व पृ. 59

(1) व्यक्तियों की बहुलता

(2) सामाजिक सम्बन्ध

(3) सामाजिक अन्त:क्रिया

मेरी सम्मति में समाज में जागरूक शिक्षित व्यक्तियों का समूह है जो आम व्यक्ति के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की नींव रखता है। उनका समाज से आवश्यक कल्याणकारी सम्बन्ध बनता है। ऐसी जटिल व्यवस्था ही समाज है। प्रागैतिहासिक सभ्यता, आदिमानव, पाषाणकालीन, जंगली पशुओं का शिकार कर उदरपूर्ति करता था। धीरे-धीरे समूह नदी घाटी सभ्यता का विकास हुआ। धीरे-धीरे संगठित समूह समाज कहलाने लगा। फिर समाज में जातिय वर्ण व्यवस्था की शुरुआत हुई जिसमें विसंगतियाँ पनपने लगी।

ईसा की एक हजार शताब्दी के आस-पास (पूर्व) आर्यों का आगमन सरस्वती और द्रव्यवती नदियों के आस-पास आकर संघर्ष और समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए बसना प्रारंभ किया। पश्चिम दक्षिण राजस्थान की ओर निरन्तर बढ़ना शुरू हो गया। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत जाति व्यवस्था की कर्मानुसार विभावित कर दिया। इसका प्रारंभिक लचीलेपन जटिलता में परिणित हो गया। पुरातन परम्पराएँ रुढ़ियां, रीति-रिवाज, आदर्श-भाषाएँ, मत-मतान्तर तथा सांस्कृतिक मूल्य अक्षुण बने हुए हैं।

समाज के विकास के लिए समाज को कई वर्गों में विभाजित कर समाज कल्याण की योजनाएँ क्रियान्वित हुई।

वर्ण व्यवस्था :- ईसा के लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व मध्य एशिया से आई हुई आर्य जाति ने सरस्वती और द्रव्यवती नदियों के आस-पास आकर संघर्ष एवं समन्वय की प्रक्रिया द्वारा बसना प्रारंभ किया। कालांतर में कृषि भूमि और चरागाह

की खोज में पूर्वी–पश्चिमी एवं दक्षिणी राजस्थान की और बढ़ना प्रारंभ कर दिया। स्थानीय कबीलों और आगन्तुम वर्गों में मेल तथा पृथकता की परिस्थितियाँ भी आती रही। बढ़ते हुए समाज में गुण और कर्म का विभाजन घर करता गया। कबीलों व नव आगन्तुकों की समन्वयात्मकता से व्यक्ति विशेष के गुणों व रुचि के अनुसार व अनुरूप समाज का पुन: वर्गीकरण हुआ जिसे हम वर्णव्यवस्था कहते हैं।

जातीयता :– पूर्व मध्यकालीन युग के प्रारंभ होने से पूर्व ही वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत विविध जातियाँ व उपजातियाँ पेशे व स्थान विशेष के नाम से पनपगई जो समाज का व्यावहारिक रूप था। इसका प्रारंभिक लचीलापन जटिलता में परिणित हो गया। वर्तमान के भौतिकवादी युग में खान–पान विवाह खुलकर होने लगे। क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति का पड़ने वाला प्रभाव सीमाएँ लांघने लगा। फिर भी अधिकांश लोग जाति और वर्ण व्यवस्था में आज भी विश्वास रखते हैं। जिसका आधार है जनमानस की विश्वसनीयता, रीतियाँ, रिवाजें, पुरातन परम्पराएँ, आदर्श, क्षेत्र विशेष में व्यक्त भाषा व बोलियों का अपना महत्त्व है। सांस्कृतिक विरासत सतत् सत् प्रेरणा देती रहती है। यही कारण है कि वर्ण व्यवस्था का सांस्कृतिक पहलू तथा जातिगत जीवन एक–दूसरे पर आश्रित बनकर अधावति जीवित है। एक जाति विशेष के हाथ में कोई शिल्प या व्यवसाय बने रहने से उनकी कुशलता उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। ऐसी अवस्था में वह परिवार और देश के प्रति अधिक निष्ठावान रहता है। लेकिन अब समाज में कोई बन्धन नहीं है कि परम्परागत रूप से जो जाति व्यवसाय करती थी वह अब भी करें। कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यवसाय को अपना सकता है और यह भी संभव है कि इतर जाति का सदस्य निर्धारित व्यवसाय से जुडे हुए व्यक्ति से अधिक योग्य और कुशल सिद्ध हो सकता है।

सामाजिक विसंगतियाँ

समाज में कई अच्छाइयाँ होने के बावजूद विकृति भी रहती है। ये परिस्थितियों एवं विसंगतियों के कारण जमीदार, सामंत, अधिकारी वर्ग सम्पूर्ण भौतिक सुख सुविधाओं के साथ जीवन यापन करते हैं; किन्तु ठीक विपरीत दास-दासी उच्च वर्ग की सेवा में सादा जीवन व्यतीत करते थे। उनके रहन-सहन का स्तर निम्न होता था। भील मीणा (मीना) आदि जंगली जाति घास-फूस या लकड़ी आदि वस्तुओं को बटोर कर अपना जीवन निर्वाह करते थे।

आधुनिक काल में सामाजिक प्रारूपों का विश्लेषणात्मक परीक्षणों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि वर्ग भेद के सामंती परिवेश के चलते अमीर और अमीर व गरीब और गरीब होता जा रहा है। उनके पास जीवन की मूलभूत जरूरतों (रोटी, मकान और कपड़ा) जैसी पूर्ति का अभाव रहता है। आज भी मजदूरों को अत्यधिक परिश्रम करने के बाद भी रोटी तक मयस्सर नहीं होती है। सरकार ने अनेक कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद स्थिति जस की तस है। राजस्थान के पूर्वी क्षेत्र में धनपतियों ने अनेक संस्थाएँ चला रखी है। विद्यालय महाविद्यालयों का संचालन कर रखा है, किन्तु उनका लाभ वर्ग विशेष को ही मिलता है आमजन को विशेष लाभ नहीं होता।

पूर्वी राजस्थान की सामाजिक संस्थाएँ

यद्यपि राजस्थान के सवाई माधोपुर, करौली व धौलपुर क्षेत्र में पुरातन संस्कृति के संस्कारों, संयुक्त परिवारों की पहचान दृष्टिगत होती है। सरकारी नौकरी में स्थानान्तरण, शहरीकरण, उद्योग-धंधों, सम्पति का बँटवारा आदि कारण है, जिनके चलते संयुक्त परिवारों में परिवर्तिन होने लगे। सोलह संस्कारों का भी पूर्ण निर्वाह नहीं करते हैं। इधर सभी जातियों के लोगों का निवास है किन्तु करौली व सवाई माधोपुर में मीना (मीणा) जाति का प्रभाव भी अधिक देखने को मिलता है। सामाजिक, आर्थिक

व राजनीतिक परिस्थितियों के कारण मुस्लिम व अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति में अनेक बार आक्रमण कर अस्त–व्यस्त करने की कोशिश की, लेकिन भारतीय संस्कृति में विविधता में एकता वाली बात स्पष्ट परिलक्षित है जिससे सम्पूर्ण राजस्थान ही नहीं, भारत वर्ष में जाति, धर्म एवं लिंग के आधार पर समानत स्पष्ट दिखाई देती है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत के पाँच प्राकृतिक भाग है–

1. उत्तर का पर्वतीय प्रदेश :– उत्तर में कश्मीर से नेफा तक 1600 मील लम्बी 150 से 200 मील चौड़ी हिमालय की पर्वत मालाओं का विस्तार है। इधर अनेक धार्मिक, दार्शनिक, प्राकृतिक एवं रोचक स्थान है। जहाँ प्रतिवर्ष हजारों विदेशी पर्यटक एवं देश के तीर्थ यात्रियों का आवागमन होता है। त्रिलोकी की पवित्र साधना का क्षेत्र है तथा भारत वर्ष का प्रवेश द्वार या तोरण द्वार कह सकते हैं।

2. गंगा सिन्धु का मैदान :–उत्तर में स्थित हिमालय से लेकर दक्षिण पठार के बीच का मैदानी भाग, उत्तर का बड़ा भाग है, जहाँ मैदानी भूमि है तो गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र तथा सरस्वती व सतलज नदी के कारण पंजाब क्षेत्र की भूमि अधिक उपजाऊ है। उपरोक्त स्थान भारतीय संस्कृति व सभ्यता की उपजाऊ भूमि उद्‌भव स्थल एवं बाह्‌य संस्कृतियों का संगम स्थल रही है। तपोभूमि गंगा की पवित्रता का प्रतीक चिन्ह, मोक्षद्वार हरिद्वार, प्रयाग व वाराणसी जैसे पवित्र तीर्थ स्थलों के कारण देवभूमि की पवित्रता से भारतवासी कृतार्थ होते हैं। सामाजिक परिवेश, राजनीतिक गतिशीलता, शैक्षणिक प्रतिमा, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं ऐतिहासिकता की दृष्टि से सम्पन्न व समृद्ध क्षेत्र है। भारत की भूमि में कृषि आजीविका का प्रमुख स्रोत है।

3. दक्षिण का पठार :– भारत का दक्षिणी भाग प्रायद्वीप है, जो एक पठारी क्षेत्र है तथा तीन ओर से समुद्री क्षेत्र के घिराव से दबा है। यहाँ विश्व की प्राचीनतम जन जातियाँ, ईरूला, कदार, चेचूं माला पान्त्रम आदि रहती है। बहुपति विवाही टोड़ा एवं कोटा तथा मातृ सत्तात्मक नायर भी इसी क्षेत्र में रहते हैं। भारत के मूल निवासी

द्रविडों का मुख्य निवास यही रहा है। प्राचीनकाल में चोल, पल्लव, चालुक्य आदि वंशजों का राज्य रहा है साथ ही मराठों की राजपूतों की गाथाएँ प्रभावशाली रही है।

4. राजस्थान पर मरूधरा का प्रभाव :- राजस्थान प्रदेश पाकिस्तान की सीमा, गंगा नदी की घाटी के पश्चिम की ओर एक शुष्क प्रदेश रेतीला भाग है, जो कि थार का मरूस्थल व रेगिस्तान के नाम से जाना जाता है। रेगिस्तान के कारण ही सिन्ध से उत्तर की और विदेशियों के आक्रमण विफल होते रहे हैं। सोमनाथ से वापस आते हुए महमूद गजनवी की विजयी वाहिनी इसी मरू भूमि में लगभग लुप्त हो गयी। धरातल में पानी के अभाव और वर्षा की कमी के कारण यह क्षेत्र बहुत कम उपजाऊ है। यह क्षेत्र रण बाँकुरे राजपूतों का प्रतिनिधि राजकाज का परिचय देता है। मान, आन, शान व मातृ भूमि के लिए सर्वस्व समर्पित करने की भावना से ओत-प्रोत भूमि है। वीरता की कहानियाँ, त्याग व बलिदान की गाथाएँ, 'प्रेम की महत्ता' 'ढोला मारू' जैसी वीरता की 'पृथ्वीराज रासो' जैसी आदिकालीन रचनाओं के साथ-साथ, रहन-सहन, खान-पान, मारवाड़ी भाषा की मधुरता विश्व-विख्यात है।

5. समुद्र तटीय क्षेत्र :- दक्षिण पठारी क्षेत्र के पूर्व में और पश्चिमी दक्षिणी में गौड प्रदेश का समुद्री क्षेत्र है। समुद्री बन्दरगाहों ने प्राचीनकाल से ही भारत को अन्तराष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र बनाया, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का महज एक सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण भी है। जावा, हिन्दी, चीन, सुमात्रा, बर्मा, अरब, ईरान एवं फारस की खाड़ी के प्रदेशों से सम्बन्ध बनाएँ हुए है। दक्षिण समुद्री सीमा की बात करें तो भारतीय पवित्र तीर्थों, कन्याकुमारी, रामेश्वरम् के क्षेत्र को पारकर श्रीलंका की सीमा मात्र 80 कि.मी; दूर से ही शुरू हो जाती है। अत: समग्र विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आता है कि विविधता में एकता भारत की विशेषता वाली उक्ति की समृद्ध परम्परा दृष्टिगोचर होती है। जो रेतीली धरती की गंध में प्रेम, त्याग, तप व बलिदान की गंध महसूस होती है।

भारतीय समाज व संस्कृति की विशेषताएँ

पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाई माधोपुर अंचल की संस्कृति की अनूठी देन है संस्कार, जो समाज के समन्वयात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। मनुष्य की प्रकृति है कि वह समाज से अलग नहीं रहता है। वह किसी भी समाज व समुदाय में रहकर किसी भी धर्म का पालन करने के लिए स्वतन्त्र है, क्योंकि वह समाज में रहते हुए भी स्वतन्त्र है जो कि संवैधानिक रूप से भी उचित है। भारतीय समाज एवं संस्कृति मानव समाज की अमूल्य निधि है। भारतीय संस्कृति अमर या सनातन है जो कि पुरातन काल से आज तक अवस्थित है। भौगोलिक दृष्टि से सम्पन्न सुदीर्घ परम्परा का अनुसरण करने वाली है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, परिवेश, कला, धर्म, दर्शन आदि चिरकालीन परम्पराओं का यह सम्मान मिलता है। भारतीय संस्कृति की चिरकालीन परम्पराओं की निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर हैं।

1. प्राचीनता एवं स्थायित्व :- भारतीय संस्कृति एवं समाज व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम संस्कृति एवं समाज व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंश है। रोम, यूनान, मिस्र, सीरिया, बेबीलोनिया और भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में प्रमुख है। हजारों वर्षों से चली आ रही परम्परा वैदिक कालीन, उत्तर वैदिक कालीन, मध्यकालीन और आधुनिक कालीन परिवेश व परिस्थितियों में बदलाव जरूर आयें है; किन्तु आधार वहीं है। संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थों का आज भी उतना महत्त्व है जितना वैदिक व उत्तर वैदिक काल में था। सोलह संस्कारों व कर्मों का, गीता का उपदेश, रामायण के आदर्शों की श्रद्धा पूर्वक पालना की जाती है। संयुक्त परिवार, जन्म, मृत्यु, विवाह आदि पारम्परिक कार्यों का संचालन उन के आधार पर ही सम्पन्न होते हैं। बौध धर्म का सत्य, अहिंसा का मार्ग, गाँधी की विचार धारा दर्शन को सम्मान मिला हुआ है। पुरातन जातक ग्रन्थों, धार्मिक ग्रन्थों, पुराणों का वैदिक रीतियों का सम्मान किया जाता है। ''भारतीय जीवन का मूल आधार वहीं है, जो

प्राचीन भारत में थे। सदियाँ बीत गयी, न जाने कितने उत्थान और पतन हुए, विदेशी आक्रमण हुए, किन्तु भारतीय समाज व संस्कृति का दीपक आज भी प्रज्वलित है, उसका अतीत वर्तमान में जीवित है।''[1]

2. ऋतुओं का आनन्द :- भारत में छ: ऋतुएँ होती हैं जो पूरे विश्व में कहीं भी नहीं है। डांग क्षेत्र के लोग गर्मी, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर एवं बसन्त आदि के अनुसार भारतीय परिवेश में सर्वत्र छओं ऋतुओं का आनन्द लेते हैं। खान-पान, तीज-त्यौहार, वेशभूषा में लहरिया बसन्त में पीला, ग्रीष्म सूती के हल्के वस्त्र धारण करते हैं। सर्दी में ऊनी वस्त्र धारण करते हैं। बारह माह त्यौंहार ही त्यौंहार होते हैं। सदैव खुशहाली मय वातावरण देखने को मिलता है। होली, दीपावली, ईद, क्रिसमिस सभी धर्मावलम्बी त्यौहारों को उत्साह पूर्वक मनाते हैं। देवी देवताओं की आस्था मातृभूमि की पवित्रता की परिचायक हैं। हरी-भरी सब्जियां, गायों का दूध मीठेपन को और अधिक बढ़ा देता है।

3. सहिष्णुता :- भारतीय संस्कृति की मधुरतम विशेषता सहिष्णुता है। देश में विविध धर्मावलम्बी होने के बाद भी उदर समर्पित भाव प्रेम, त्याग की भावना से ओत-प्रोत है। भारत में हूण, शक, यहूदी, अंग्रेज आदि कई संस्कृतियाँ भारत में आई, किन्तु कालान्तर में भारत से ज्ञानार्जन करके ही अपने देशों में भारतीय संस्कृति व सनातन धर्म की चर्चा व पालन करने में लीन रही है। इसलिए भारतीय संस्कृति विश्व के लिए अनुकरणीय मानी जाती है एवं पूर्वांचल की संस्कृति इन्हीं विशेषताओं से ओत-प्रोत है।

4. समन्वयात्मकता :- भारतीय संस्कृति में विविध संस्कृतियों का समन्वय हुआ। देश की संस्कृति की अपार ख्याति व समृद्धि है, जो कि विविध भाषी सरिताएँ वही थी। हिन्दू + मुस्लिम संस्कृति में समन्वय हुआ। ज्ञानमार्गी, प्रेममार्गी, सूफी,

---

1. एम.एल. गुप्ता, डी.डी. शर्मा : भारतीय समाज, पृ. 2-6

आध्यात्मवाद योग साधना और रहस्यवाद का मुस्लिम संस्करण है। बुद्ध अवतार रावावतार की महिमा का गुणगान किया जाता है।

5. आध्यात्मवाद :- करौली एवं सवाई माधोपुर की संस्कृति में आध्यात्मवाद का अपना महत्त्व है। भौतिकवादी इच्छाओं के पीछे चक्कर लगाते रहना जीवन का वास्तविक ध्येय नहीं है। हमारे वेद, पुराण, रामायण के आदर्श व गीता के उपदेशों में कर्मवाद की महत्ता को स्पष्ट किया गया है। दैहिक सुखों का परित्याग कर ईश्वरीय भक्ति करने वाला प्राणी सदैव सुखी रहता है।

6. धर्म प्रधान संस्कृति :- भारतीय संस्कृति का गुण है चतु वर्ग प्राप्ति धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष है। जिसमें धर्म का विशेष स्थान है। जिसका अर्थ है धारण करना। धार्मिक अनुष्ठानों व यज्ञों द्वारा प्रकृति का वातावरण शुद्ध रहता है। धर्म का क्षेत्र विस्तृत है। यहाँ ऋषि मुनियों ने तपस्या की है। महाभारत जैसे महाकाव्य में धर्म की स्थापना एवं अधर्म का नाश करने हेतु ईश्वर अवतार लेते हैं ऐसी मान्यता बताई है। पूर्वांचल की संस्कृति धर्मप्रधान मानी जाती है।

7. वर्णाश्रम व्यवस्था :- वैदिक कालीन सभ्यता में कर्मानुसार जातिय व्यवस्था को चार वर्णों में विभाजित किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र प्रमुख हैं तथा इनके कर्मों का विभाजन निम्नानुसार किया। ब्राह्मण का शिक्षा देने का क्षत्रिय का देश की रक्षा करने का वैश्य का व्यापार अर्थव्यवस्था का संचालन व भरण पोषण करने का तथा शूद्र वर्ण सभी वर्गों की सेवा करने हेतु उद्यृत रहते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम 25 वर्ष की उम्र तक 50 तक गृहस्थ, 75 तक वानप्रस्थ एवं 100 तक संन्यास आश्रम में विभाजित कर उम्र को बाँटा है। चतु वर्ग की पूर्ति इस जीवन का प्रमुख ध्येय माना है। जिससे समाज के सभी वर्गों का पालन करने से समाज सुखी व समृद्धि की ओर अग्रसर होता है।

8. ऋण तथा यज्ञ :- जीवन में ऋण व यज्ञों का भी महत्त्व है। पाँचों ऋणों का उल्लेख मिलता है। देव, पितृ, मातृ, गुरु अतिथि व भूमि ऋण का विशेष महत्त्व है। इनके प्रति व्यक्ति की श्रद्धा व समर्पण का विशेष उल्लेख किया है। व्यक्ति का जीवन इन की परिधि में रहते हुए मर्यादित व सुखी जीवन व्यतीत करता है। डाँग संस्कृति में अतिथि को भगवान् के समान माना जाता है।

9. संस्कार :- पूर्वी राजस्थान की संस्कृति में सोलह संस्कार हैं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त इन संस्कारों से गुजरना अनिवार्य है। गर्भधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्ण वेद्य, विद्यारंभ, उपनयन, समावर्तन, विवाह एवं अन्त्येष्टि आदि प्रमुख संस्कारों में मानवीय रिश्तों की पहचान व कर्त्तव्य निष्ठता प्रकट होती है। इनके सन्दर्भ में डॉ. गोपीनाथ के अनुसार 'इसका सबसे बड़ा महत्त्व यह रहा कि संस्कारों के परिपालन द्वारा व्यक्ति सुसंस्कृत व अनुशासित बन सके। करौली व सवाई माधोपुर, भरतपुर के सभी समाजों में इन संस्कारों का पूरी तरह पालन किया जाता है।

10. संयुक्त परिवार :- संस्कारों का अपना महत्त्व है। भारतीय संस्कृति अतिप्राचीन है जिसमें पाषण काल से आज तक संयुक्त परिवार प्रथा निरन्तर चली आ रही है। तीन-चार पीढ़ियों तक एक साथ परिवार संयुक्त रहते हैं। सामुहिक रहन-सहन, खान-पान व सम्पति भी सामुहिक ही रहती है। संयुक्त परिवारों से आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ रहती है। डांग क्षेत्र में मीणा, गुर्जर व अन्य जातियों के समूह में एकता देखने को मिलती है वही सवाई माधोपुर, गंगापुर, हिण्डौन तथा करौली क्षेत्र में भी इस परम्परा को सभी समाजों में देखा गया है।

सांस्कृतिक बहुलतावाद

विविधता में एकता भारत की विशेषता वाली उक्ति चरितार्थ प्रतीत होती है। विविध संस्कृतियों की रंग-बिरंगी विचार धाराओं का समन्वय स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

भौगोलिक दृष्टि से बाह्याक्रमणों को रोकने में सक्षम, लुटेरों से क्षति को रोकने में पर्याप्त सहयोग मिला है। धर्म, भाषा, लिंग, भेद की नीतियों को अलग कर एक स्वर में लाना ही सांस्कृतिक बहुलतावाद है। विभिन्न संस्कृतियों का संगम ही बहुलतावाद का परिचायक है। पूर्वी राजस्थान में उच्च, मध्यम तथा निम्न तीनों वर्गों के लोग बिना भेदभाव के परस्पर सहयोगी होते हैं।

1. सजातीयता :- नृजातिकी समूह किसी समाज की जनसंख्या का वह भाग है जो परिवार की पद्धति, भाषा, मनोरंजन, प्रथा, धर्म, संस्कृति एवं उत्पत्ति के आधार पर अपने को दूसरों से अलग समझना है। यदा-कदा आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लोगों का एक संजातीय समूह के रूप में एकत्रीकरण देखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में वे अन्य समूहों के साथ विदेशियों जैसा व्यवहार करते हैं। बिहार के संथाल छोटा नागपुर, परगना के आदिवासी अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं भाषा के कारण एक अलग झारखण्ड राज्य की माँग कर रहे थे। आन्ध्रप्रदेश के तेलगांना राज्य की माँग कर राज्य का दर्जा दे दिया है।

2. धार्मिक विभिन्नताएँ :- विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें धर्मों की इतनी विविधता एवं बहुलता दृष्टिगोचर है जो कि हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौध, जैन, यहूदी आदि प्रमुख है। हिन्दी धर्म में शैव व वैष्णव मतों, शाक्त समाज, आर्य समाज, इस्लाम में शिया व सुन्नी, ईसाई धर्म में प्रोटेस्टैण्ट तथा कैथोलिक, सिक्ख धर्म में अकालीदल व गैर अकाली बौध धर्म में हीनयान व महायान, जैन धर्म में श्वेताम्बर दिगम्बर आदि का अपना महत्त्व है। यह उक्ति सही चरितार्थ होती है **"हिन्दु मुस्लिम सिक्ख ईसाई आपस में सब भाई-भाई।"**

3. भाषा सम्बन्धी :- भारत में 179 भाषाएँ 544 बोलियाँ प्रचलित है। जिसमें भौगोलिक परिस्थितियाँ व विदेशी लोगों के आने से पड़ने वाला प्रभाव भी शामिल है। इण्डोआर्यन, द्रविडभाषा परिवार एवं आष्ट्रिक भाषा परिवार को भी

शामिल किया गया है। करौली व सवाई माधोपुर जिले की सभी तहसीलों में राजस्थानी के साथ–साथ ब्रज, ढूँढाड़ी व अवधि का मिश्रित प्रभाव देखने को मिला है।

4. भौगोलिक भिन्नताएँ :– समुद्री तटों से घिरा मरुस्थलीय पठार वाला क्षेत्र व ऊँची–ऊँची पहाड़ियों वाला हिमालय रक्षक के रूप में खड़ा हुआ दिखाई देता है। जिसमें उच्च जाति, अनुसूचित व अनुसूचित जनजातियों के रहन–सहन एवं वेशभूषा में पर्याप्त भिन्नताएँ, दृष्टिगोचर होती है। सवाई माधोपुर करौली का पाँचना बाँध अपनी लोक संस्कृति की भौगोलिकता को प्रकट करता है।

5. शिक्षा का प्रचार–प्रसार :– पुरातन संस्कृति, गुरु व महान् विचारक प्रणेता भारत देश में वैदिककाल से आज तक शिक्षा का प्रचार–प्रसार, मौखिक, सैद्धान्तिक शिलालेखों से शिक्षा का महत्त्व मिला है। तक्षशिला, नालन्दा और बनारस जैसे प्राचीन शिक्षा केन्द्र हैं। कालान्तर में बाहरी जातियों का आगमन हुआ। संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का प्रचलन आज भी शिक्षा रोजगार वर्धक है, जो भारतीय वैज्ञानिक पूरे विश्व में नाम रोशन किये हुए है। राजस्थान के करौली क्षेत्र को डांग के नाम से जाना जाता है। जिसमें दौसा, करौली, सवाई माधोपुर के कुछ हिस्से को मिलाकर जिला बनाया तब के बाद शिक्षा का स्तर सुधरता ही गया है। साथ ही सरकारी गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से शिक्षा, संस्कृति व समाज से जुड़े कार्यक्रम किये जा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में करौली व सवाईमाधोपुर के जनजाती के लोग महत्त्वपूर्ण स्थानों पर काबिज हैं और न केवल राजस्थान में ही बल्कि पूरे भारत में अपनी प्रशासनिक क्षमता के लिए प्रसिद्ध हैं।

6. जनजातीय भिन्नता :– सम्पूर्ण भारत में 6–7–8 करोड से भी अधिक लोग जनजाति से हैं। हरेक जनजातीय क्षेत्र की विभिन्न संस्कृतियाँ है। राजस्थान का पूर्वी हिस्सा करौली, माधोपुर, गंगापुर के क्षेत्र बांरा जिला की सहरिया जातियाँ हैं, जो

कि अर्धशिक्षित हैं किन्तु संस्कृति व समाज में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाएँ हुए हैं।

विविधता में एकता

पूर्वी राजस्थान की एक अच्छी परम्परा या विशेषता रही है कि बहुधर्मावलम्बी, बहुजातिय समूहों में विभक्त होने पर भी एकता, समानता, भाईचारा, सौहार्द्र दृष्टिगोचर होता है। इस विशेषता के कारण ही आज भी निरन्तर प्रगति हो रही है। जाति, लिंग, धर्म भेद होने के बाद भी सांस्कृतिक विरासत एक है। राजस्थान की वीर भूमि में रजवाडों की संस्कृति बहुत प्रभावशाली रही है। यह कि राजघरानों का अपना महत्त्व रहा है। पूर्वी राजस्थान में सवाई माधोपुर जिले में स्थित गणेश जी का मंदिर प्रसिद्ध है। जो भी विवाह जैसे मांगलिक कार्य करते हैं तो सर्वप्रथम उन्हें ही निमन्त्रण दिया जाता है। रणथम्भोर राष्ट्रीय उद्यान जिसमें पालतू जानवरों पक्षियों की चहक, हरी–भरी भूमि की अद्वितीय छटा दृष्टव्य है। वही करौली का डांग क्षेत्र जिसमें काली दोमट मिट्टी की गंध सुवासित करती है। लोक जीवन में ग्रामीण परिवेश तथा दंगल, ख्याल, हेला आदि का अपना महत्त्व है। साथ ही तात्कालिक दैविय रूप में 'कैला मैया' के लांगुरियों की अपनी विशिष्टता स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

पूर्वी क्षेत्र की मधुर भाषा में लांगुरिया ढाँचा आदि गीतों का प्रचलन है साथ ही खान–पान व वेशभूषा में पर्याप्त बदलाव सा दिखाई देता है जाति, समुदाय में तीज, त्यौहारों व पर्वों में एकता की भावना दिखाई देती है। होली, दीपावली जैसे राष्ट्रीय त्यौहारों का इस क्षेत्र में बड़ा ही रोचक व प्रभावशाली तरीके से आनन्द लिया जाता है। पुरातन रुढ़ियों व लोकमान्यताओं, लोक विश्वासों का बखूबी प्रयोग देखा गया है। इन सभी कारणों को देखते हुए लोक बाहुलता देखने को मिलती है। इन्हीं विविधताओं के होने के बाद भारत में सर्वत्र एकता की लहर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती दिखाई देती है।

1. भौगोलिक विविधता में एकता :- भौगोलिक विविधता सम्पूर्ण भौगोलिक दृष्टि से एक इकाई का निर्माण करता है। उत्तर में हिमालय पर्वत की ऊँचाई पर लहराने वाली विजयपताका बद्रीनाथ धाम दक्षिणी सीमा में सेतु बन्ध रामेश्वरम, पूर्व में जगन्नाथ पुरी और पश्चिम में द्वारिकाधीश आदि प्रमुख पौराणिक धार्मिक स्थलों के माध्यम से धर्म के प्रति श्रद्धावान एवं एकता की भावना जाग्रत करने वाले हैं। '**माता मातृभूमि पुत्रो अहं पृथिव्या**' अर्थात् पृथ्वी मेरी माँ है तथा स्वर्ग से भी बढ़कर जन्मभूमि है। राजस्थान प्रांत की करौली व माधोपुर क्षेत्र की सीमा पूर्व में धोलपुर उत्तर में भरतपुर पश्चिम में जयपुर, दक्षिण में कोटा की संस्कृति व मौलिक स्थिति स्पष्ट है।

2. ऐतिहासिक धार्मिक विविधता में एकता की भावना :- वैदिक कालीन सभ्यता मध्यकाल में इस्लाम का प्रभाव तदोपरान्त अंग्रेजो की गुलामी के बाद भी हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, मिशनरी सभी में एक-दूसरे के प्रति समर्पण की भावना है जो राष्ट्रीय एकता अखण्डता व धर्म के प्रति निरपेक्षता का परिचय देती है। सभी धर्मावलम्बियों के राजस्थान में जैन धर्म के पार्श्व नाथ जी का मंदिर महावीर जी करौली में मदन मोहन का मंदिर, सवाई माधोपुर में गढ़ गणेश जी व चौथ माता का मंदिर अवस्थित है जो आपसी धर्मान्धता को दूर करने के उत्कृष्ट उदाहरण है।

3. भाषा-संस्कृति का स्वरूप :- राजस्थान की भाषा राजस्थानी है, किन्तु इसमें ब्रज-भाषा का प्रभाव पूरी तरह है। राजस्थानी करौली, भरतपुर, धौलपुर, हिण्डौन, सूरोठ, बयाना, बैर, भुसावर आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। हिन्दी भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रभाषा व अंग्रेजी को राज भाषा का परिचय दिया गया है। जाति-प्रजातियों में विविधता होने पर भी एकता दृष्टिगोचर होती है। भारतीय संस्कृति व समाज में विविध भाषीय लोगों की विविधता होने पर भी राष्ट्रीय एकता की भावना है क्योंकि यहाँ विविध धर्मावलम्बियों के रहने पर भी एकता की भावना के प्रबल प्रेम

की धारा बहती है जिससे मानवीय सवेदनाओं का खुला पिटारा संस्कृति का भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं भूमण्डलीकरण के दौर को सम्यक् रूप दर्शाता है। राजस्थान की राजपूताना संस्कृति की मिट्टी के कण–कण में त्याग, शौर्य और समर्पण की प्रबल भावना लिए हुए है। राजस्थान के करौली व सवाई माधोपुर की गंगापुर, खण्डार, हिण्डौन, वामनवास, महावीरजी पंचायत समितियों में विविध रंगी संस्कृति ने चम्बल स्थित हरियाली व पड़ोसी राज्य मध्यप्रदेश की संस्कृति को प्रस्तुत किया है। यहाँ के तीज त्यौहारों में सभी धर्मों के लोग बढ़–चढ़कर हिस्सा लेते हैं।

4. धार्मिक एकता :– पूर्वी राजस्थान के धौलपुर, भरतपुर बयाना, हिण्डौन, करौली व सवाई माधोपुर में विविध धर्मावलम्बियों के रहने पर भी सभी में भ्रातृभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा है कि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है।अत: सभी को अपने धर्म का पालन करने की स्वतन्त्रता है। वेद, पुराण, कुरान, गुरुग्रन्थ, बाइबिल अपने–अपने ग्रन्थों को पढ़ने की स्वतन्त्रता है। एकता की अवधारणा हिन्दू धर्म में विद्यमान है। विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, तीर्थों में स्वतन्त्रता प्राप्त है। बौद्ध, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाइयों के चर्चादि में प्रवेश करने व पालन करने से कोई नहीं रोकता है। भारत जैसे विशाल प्रजातन्त्र में सहिष्णुता है।

5. सामाजिक सांस्कृतिक विविधता में एकता :– पूर्वी राजस्थान में सामाजिक, सांस्कृतिक विविधता होने पर भी एकता सर्वत्र व्याप्त है। संयुक्त प्रणाली, एकल परिवार, जाति–व्यवस्था, वर्ण–व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, जन्म, धर्म, कर्म, मरण प्राचीन युग से चला आ रहा है। भारत में बारह महिनों के त्योंहारों, पर्वों, उत्सवों में अवकाश की व्यवस्था समानता के भाव को प्रकट करती है। ईद, दीवाली, होली परस्पर स्नेह मिलन वाले त्यौहार है। श्री राम, कृष्ण, हनुमान, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि देवी–देवताओं की पूजा का विधा के प्रति सभी समाज विश्वास रखते हैं।

ग्रामीण शहरी शिक्षित-अशिक्षित, रोजगार, ग्रामीण व्यवसाय, खेती, पशु-पालन, खनन कार्यों के प्रति समानता व समन्वयात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित है।

6. राजनीतिक विविधता में एकता :- प्राचीनकाल से राजव्यवस्था थी, किन्तु आज प्रजातन्त्र का राज है। यहाँ संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को भारतीय मूल का होने का अधिकार है। राजनीतिक पदों पर हिन्दुओं, सिक्खों, मुसलमानों व ईसाइयों को अधिकार है। मतदान में, चुनाव में प्रत्याशी बनने व सरकार में मन्त्रियों के लिए स्थान निर्धारित है। जातीय स्तर अंग्रेजों ने भारत में धार्मिक एवं साम्प्रदायिकता का जहर घोलने के अथक प्रयास 'फूट डालो राज करो' की नीति का गाँधी जी ने सत्याग्रह से समाप्त कर देश को आजादी दिलाने के लिए 'करो या मरो' की नीति अपनाई। उपनिवेशीय शोषण के स्थान पर समतावादी विचारधारा ने किया। आज आतंकवादी दौर में भारत पाक सम्बन्धों की कटुता का कारण है। भारत की निरन्तर प्रगतिशीलता, जो अमेरिका, चीन व जापान नहीं सह पाते हैं।

7. जातीय, मानसिक व प्रजातन्त्रीय एकता :- करौली व सवाई माधोपुर जिलों में विविध सम्प्रदाय व जातियों का निवास है। हमारे यहाँ चार वर्ण हैं—पहला **ब्राह्मण**, जिसका कार्य शिक्षा था। दूसरा **क्षत्रीय**, जिसका कार्य देश की रक्षा, तीसरा **वैश्य**, जिसका कार्य व्यापार कार्य था। चौथा वर्ग **शूद्र** था, जो निम्न समझे जाने वाला (कृषि, पशु-पालन) कार्य करते थे। इनके भेद-भावपूर्ण विचारों में एकता स्थापित करने के लिए सरकार ने आरक्षण का प्रावधान निश्चित किया है। सभी धर्मों ने इन वर्गों को स्वीकार किया तथा समाज में वर्गीकरण किया। जब-जब प्राकृतिक आपदाएँ आईं सभी जाति समुदाय ने एकजुट होकर पीड़ितों की मदद के हाथ बढ़ाये और विषम परिस्थितियों में हर सम्भव सहायता करने में आगे रहे।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति की पहचान विविधता में एकता का दर्शन राजस्थान की आन–बान और शान का प्रतीक है, जो लोकसाहित्य के माध्यम से जनमानस को नई विचारधारा से जोड़ने की जुगत है। वर्तमान परिवेश में सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विशद विवेचन राजस्थानी ग्रामीण परिवेश को यथानुरूप शोधकार्य की महत्ता को नवीन आधार देने का विनम्र प्रयास है जो तथाकथितपूर्वी राजस्थान के जनजातीय बाहुल्य अशिक्षित जनमानस की यथार्थपूर्ण सामाजिक चेतना की पुष्टि करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। करौली व सवाई माधोपुर जिले की संस्कृति में भारतीय संस्कृति की सभी विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

❑

अध्याय–चतुर्थ

करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के लोक साहित्य में चित्रित संस्कृति

भूमिका

त्याग, शौर्य, पराक्रम से पूरिपूर्ण है, जिसके कण–कण में परोपकार की भावना, सेवा, आतिथ्य भाव समाहित है ऐसी विरल परम्परामय राजस्थान प्रदेश की धरा जिसने वीर, वीरागंनाओं को जन्म दिया। गजस दृश्य ऊँची–ऊँची अरावली की पर्वत श्रृंखलाओं ने मानो चारों ओर से ढ़क दिया हो। मरूस्थल की मिट्टी के कण–कण में वीर, साहसी सपूतों को जन्म देकर माँ के दूध को लजाया नहीं वरन् गौरवन्वित किया है:–

''इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।
पूत सिखावै पालणे मरण बड़ाई माय।।''

यहाँ का प्रत्येक स्त्री–पुरुष संस्कृति के प्रति श्रद्धावान व समर्पित होकर उसकी तन–मन से संरक्षा एवं सुरक्षा के लिए कटिबद्ध है। राणा हम्मीर, कुंभा, राणा प्रताप की प्रतिज्ञा, दुर्गादास का वचन पालन और इतिहासकार 'मुहणौत नैनसी', 'पृथ्वीराज रासो', 'चन्द बरदाई' वीर रसात्मक साहित्य ने मानों संस्कृति में जीवंत प्राण फूँक दिए हों। बाबारामदेव, गोगा जी, क्रांतिकारी केसरी सिंह बारहठ, सूर्यमल्ल मिश्रण आदि प्रमुख है। राणियों की वीरता का नमूना जौहर जो कि पद्मनी पद्मावती, नारी प्रणय मूमल की धाय पन्ना जिसने राज, समाज व परिवार की आन, बान और शान के लिए

अपने पुत्र का बलिदान देकर राणा के बेटे उदय के प्राण बचाये। भक्तिमय मीरा की महिमा जो आज भी भक्तिकाव्याधार में भजनों को गाये जाने से अमृत्व को प्रदान करती है।

साहित्य संचित ज्ञान राशि का मूर्त रूप है। अत: वह किसी देश या काल की संस्कृति के ज्ञान का सर्वाधिक विश्वस्त वे प्रामाणिक दस्तावेज होता है। यह तथ्य सार्वभौमिक है। साथ ही सत्यता को प्रकट करता है। साहित्य संस्कृति का वाहक होता हे। लोक साहित्य में संस्कृति अधिक प्राणवान रहती है।[1]

पूर्वी राजस्थान का लोकमानस गीतों की झंकार लोकगीतों में झूमता है। नृत्यों में थिरकता है, गाथाओं का मधुर गुणगान लोक जीवन की विविध झांकियों को प्रस्तुत करता है। लोकोत्सव, मेले, अनुष्ठानों तीज-त्यौहारों, विवाहोत्सव आदि में गाये जाने वाले लोकगीतों मानों मीणा समुदाय द्वारा ढाँचा के रूप में गाये जाते हैं, दंगलों में त्यौहारों पर होने वाली राम लीला, कुश्तियाँ खेलों में भी लोकगीतों के द्वारा ही कार्यक्रमों का प्रारंभ व समापन लोक शैली में सम्पन्न होता है। पारम्परिक रुढ़ियों, शकुनों-अपशकुनों में विश्वास है। देवी देवताओं, मण्डपों व थानों पर कार्यक्रमों में मथ्था टेकते हैं। 'लोक देवताओं की जितनी उपासना हिन्दू समाज करता है। इतनी ही पवित्र इबादत मुस्लिम समाज भी करता है। बाबा रामदेव भी हैं और पीर भी इसलिए वे हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रतीक हैं।'[2] इस प्रकार पूर्वी राजस्थान के करौली में महावीर जी, मदन मोहन जी व सवाई माधोपुर में गणेश जी की आस्था और श्रद्धा के साथ 'रणथम्भोर वन्य जीव अभ्यारण्य' जो कि लोक संस्कृति की निरन्तरता को हरा-भरा व वन्य जीवों का संरक्षण करने हेतु उद्यृत है।

करौली जिला नवीन है किन्तु संस्कृति पुरानी हैं। यहाँ पर राजस्थानी के अतिरिक्त ब्रजभाषा का भी प्रभाव है। यहाँ सर्वधर्म, सम्प्रदाय, जाति के लोग

---

1. डॉ. राम कुमार गरवा : राजस्थानी शेखावाटी हर्ष और जीण, पृ. 91
2. नन्द लाल कल्ला : राजस्थानी लोक साहित्य व संस्कृति, पृ. 127

प्रेमपूर्वक अपने कार्यों में संलग्न रहते हुए संस्कति के संरक्षण हेतु कटिबद्ध है। यहाँ के मेलों में नवरात्रों में विशेषकर चैत्र के नौरातों में माँ करौली (कैला देवी) का लक्खी मेला भरता है तथा मन्नते माँगने दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, आगरा व गुजरात तक के लोग पद यात्रा करते हैं। गणेश जी की भ्रदापक्ष की चतुर्थी को सवाई माधोपुर से 8 किलोमीटर दूर पहाड़ियों को चीरकर पार कर चोटी पर गजानन जी का भव्य मेला भरता है। जिसमें दूर-दूर के सैलानी भी आते हैं। करौली में महावीर जी का जैन सम्प्रदाय का तथा हिन्दुओं का मदन मोहन का मंदिर प्रसिद्ध है। इन सभी मेलों व उत्सवों भावात्मक एकता को बल मिलता है। यहाँ की जनता का धर्म प्राण है। इसका विराट् स्वरूप उत्सव और मेलों में देखने को मिलता है। संस्कृति का सर्वरूप यहाँ देखा जा सकता है।[1] लोक संस्कृति, सभ्यता या परिवेश का अध्ययन करें तो राजस्थानी (करौली, सवाई माधोपुर) संस्कृति का रत्नाकर कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा। आस्था, अनुभव व लोकानुभूतियों की अतिव्यंजना ही अपनी उदात्त स्वरूप में लोक संस्कृति की संज्ञा पाती है। पूर्वी राजस्थान के प्रत्येक गाँव, तहसील व जिलेवार कीर्ति की पताका आज भी राणा-हम्मीर को इतिहास दोहराने में पीछे नहीं है। आज शिक्षा के क्षेत्र में माहरत हासिल है। पाषाण युग में राजस्थान में पर्याप्त उपकरण उपलब्ध हुए है। इस काल का विश्लेषणात्मक अध्ययन व शोध करने पर निष्कर्ष निकाला कि प्रारंभिक पाषाण, मध्य पाषाण काल , उत्तर पाषाण काल में विभाजित किया। जयपुर, इन्द्रगढ़, भानगढ़, ढिगारिया व विराट् नगर। भतरपुर के 'दर' नामक जगह पर चित्रित शैलाश्रय हैं।

ताम्रयुगीन संस्कृति राजस्थान के पश्चिम अचंल की अपूर्व देन है। गणेश्वर का टीला, नीमका थाना में कांटली नदी के किनारे पर है। आह (उदयपुर के पास) काली बंगा उत्खनन में सेन्धवलिपि की सभ्यता आदि का विवरण स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

---

1. उदयवीर शर्मा शेखावाटी के साहित्य का इतिहास, पृ. 10

माहोली (माधोपुर), मलाह (भरतपुर) लोक सभ्यता के अवशेष झुंझुनूं, अलवर, जयपुर, जोधपुर, गंगानगर आदि में देखने को मिलते हैं।

स्थापत्य कला

अन्य विविध कलाओं में स्थापत्य कला का अपना महत्त्व है। भारतीय संस्कृति सबसे पुरानी है किन्तु उसकी स्थापत्य कला का अपना विशेष महत्त्व व प्रभाव है। शताब्दियों की बिखरी कड़ियों को जोडने का कार्य देश की संस्कृति की यथार्थ झलक को प्रकट करती है। स्थापत्य ऐसी कला है, जो संस्कृति का सच्चा आईना प्रस्तुत करती है। धार्मिक स्थानों पर प्राचीन कलाकारों का चिंतन मनन और यथार्थ को प्रकट करता है। स्थापत्य कला के सभी गुण (करौली, महावीर जी, सवाई माधोपुर) पूर्वी राजस्थान की संस्कृति को गौरवान्वित करते हैं। हमारे यहाँ का ग्रामीण व शहरी परिवेश धार्मिकता, मन्दिरों, मजिदों, दुर्गों, तडागों, उद्यानों व अन्य सम्पतियों से उजागर होती है।

लोक–मानस और लोक–साहित्य

लोक साहित्य की मूल प्रेरणा लोक–मानस के माध्यम से होती है। मानव जीवन में उन्नति के लिए विकास के पायदान पर पहुँचकर लोक जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए लोक–मानस, जनमानस एवं मुनि मानस को प्रमुख माना गया है। विकास की प्रक्रिया निरन्तर कार्य करती रहती है। विकास स्तर के सन्दर्भ में हम समस्त मानव समाज के मानसिक स्वरूप को 3 भागों में विभक्त कर सकते हैं :- (1) लोक–मानस (2) जन मानस (3) मुनि मानस। 'लोक–मानस' निम्न स्तर की मानसिक स्थिति है। यह वह मानसिक स्थिति है, जो आज आदिम मानस की परम्परा में है। यह वस्तुत: आदिम मानस का अवशिष्ट अंश है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। लोक–मानस से ही लोकवार्ता का जन्म होता है। लोक साहित्य के निर्धारण में लोक–मानस सबसे प्रमुख तत्त्व है।

डॉ. सत्ये ने वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, भौगोलिक एवं ऐतिहासिक दृष्टियों का विवेचन तथा प्रभावों के विश्लेषण के उपरान्त 'आदिम मानव की मनौवैज्ञानिक स्थिति में सात तत्त्वों का उल्लेख किया है और फिर यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि 'आदिम मानव समस्त सृष्टि से अपने व्यक्तित्व को तटस्थ नहीं रख सकता था। वह मनत: और कर्मत: मानषत: और भावत: सृष्टि के समस्त व्यापारों का अंग होता है। अत: तुल्य-मूंत विधान कि मान्यता के साथ वह अपने लिए उपयोगी-अनुपयोगी तत्त्वों को अपने द्वारा प्रस्तुत करता था। इस प्रस्तुत को अनुष्ठान अथवा रिचुअल कहा जा सकता है। इसके द्वारा वह प्रकृति में विवधि तत्त्वों के संघर्ष व्यापार में सहयोग देता था।

लोक साहित्य में यथार्थ और कल्पना में भेद करने भी असमर्थता जिसे प्राकल्पना भी कहते हैं। प्राणी, अप्राणी जड़ चेतना को आत्मा से युक्त जानना यह आत्मशीलता है। यह विश्वास के तुल्य से तुल्य पैदा होता है जिसे टोना विचारना कहते हैं यह विश्वास की विशेष विधि से कार्य करने से विशिष्ट फल या अविष्ट फल प्राप्त होगा इसे आनुष्ठानिक विचारना कहा जाता है।

लोक साहित्य के तत्त्व—सम्पूर्ण साहित्य शब्द और अर्थ इन दो तत्त्वों द्वारा होता है। विभिन्न आचार्यों ने प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुये भाव, कल्पना और शैली तत्त्व को प्राथमिकता दी है। भाव और भाविका सत्य प्रभा के स्वरूप शिष्ट साहित्य में भावों का तीव्रता जरित सौन्दर्य देखने को मिलता है। जबकि लोक साहित्य में भावों की सरलता मनोमुग्धकारी स्वरूप मिलता है। लोक साहित्य के रचयिता की भावानुभूति विशुद्ध अनुभूति पर आधारित रहती है। लोक साहित्य में भाव तत्त्व की मार्मिकता सिद्धि जगत् से आती है इसमें किसी प्रकार की कल्पना का योग नहीं रहता है।

स्थापत्य कला :-लोक साहित्य में लोक जीवन के प्राय: सभी पक्षों का विवरण होता है। राजस्थान के पूर्वांचल में करौली, भरतपुर, सवाई माधोपुर, हिण्डौन,

धौलपुर के आस–पास का लोक साहित्य ब्रज भाषा से ओत–प्रोत दृष्टिगोचर होता है। राजस्थान की संस्कृति एवं परिवेश का अध्ययन करने से यह तथ्य उभर कर आया है कि राजस्थान के पूर्वांचल में पुरातत्व इतिहास स्थापत्य कला लोक कलाओं का लोक साहित्य का पर्याप्त महत्त्व है। पुरातत्व के अनेक अन्वेक्षणों की आधार शिला लोक वार्ता होती है वस्तुत: लोक साहित्य पुरातत्व का एक अंग ही होता है अनेंक स्थानों की खुदाई वस्तुत: लोक वार्ता से प्रभावित होकर करवायी गयी है। जैसे मोहनजोदड़ों हडप्पा आदि स्थानों पर हुयी है।

पुरातत्व के अनेक अन्वेषणों की आधारशिला लोकवार्ता होती है। वस्तुत: लोक साहित्य पुरातत्व का एक अंग ही होता है। अनेक स्थानों की खुदाई वस्तुत: लोकवार्ता से प्रभावित होकर कराई गई है। लोक साहित्य में अनेक ऐसे तत्त्व छिपे रहते हैं जिनमें विषय में अनुसन्धान करने के लिए पुरातत्व को स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं। **डॉ. सत्ये** का कथन है कि 'लोकवार्ता पुरातत्व विज्ञान के लिए आरम्भ में तो प्रेरणा देने का काम करती है बाद में घटनाओं के मध्य तारतम्य बिठाने और विविध कड़ियों को बिठाने में व्याख्या में काम आती है। इस दृष्टि से लोक वार्ता पुरातत्व विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण सहायक तत्त्व माना गया है।

लोक साहित्य अपने गर्भ में ऐतिहासिक तत्त्वों को संजोए रहता है। उसमें निहित ये तत्त्व ऐतिहासिक कड़ियों को जोड़ने में सहायक होते हैं। 'लोक वार्ता में विविध ऐतिहासिक अनैतिहासिक सूत्रों का ऐसा लोकतात्त्विक गुम्फन होता है कि उससे संकेत लेकर तथ्यों को खोजने की प्रेरणा मिलती है। कालान्तर में उपलब्ध सामग्री के साथ ऐतिहासिक सन्धि बैठाई जा सकती है। किसी प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास जाने के लिए लोक साहित्य विशेष रूप से सहायक सिद्ध होता है। इस संदर्भ में डॉ. शंकरलाल यादव का कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यथा– 'विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए

और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठतम है। शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गय हैं वहाँ इस तमसाच्छत्र स्थिति में लोक–साहित्य ही दिशा निर्देश करता है।'

लोक साहित्य इतिहास–लेखन में किस प्रकार हमारी सहायता करता है। इसका उदाहरण कर्नल टॉड द्वारा लिखित एनाल्स ऑफ राजस्थान नामक ग्रन्थ है। टॉड महोदय ने यह इतिहास ग्रन्थ लोक वार्ताओं के आधार पर लिखा था। अब इन्हीं वार्ताओं को ऐतिहासिक प्रमाणों से परखकर इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

इतिहासकार लोकवार्ताओं का उपयोग दो प्रकार से करता है। इतिहास के कच्चे मसाले रूप में जैसा कि उपुर्यक्त उदाहरण में बताया गया है। जिसमें ऐतिहासिक तथ्य दोनों की तरह बिखरे रहते हैं। दूसरे लोकवार्ता के आधार पर लोक जीवन में ऐतिहासिक स्वरूप को जानने के लिए कभी–कभी तो लोकवार्ता में ऐसे तथ्य मिल जाते हैं कि लोकवार्ता और इतिहास के मध्य अन्तर स्थापित करना कठिन हो जाता है।

लोकमूर्तिकला

राजस्थान की लोक संस्कृति अविरल छटा के दर्शन केवल राजस्थान में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत वर्ष में स्थापत्य कला एवं मूर्तिकाल के लिए प्रसिद्ध है। गुप्तकाल में मौर्यकाल, गुप्त उत्तर–गुप्त व गुप्तोतर काल (300–700) गुर्जर प्रतिहार काल (700–1000 ई.) तक में जैन मंदिर गुजरात व राजस्थान में स्थित हैं। ओसिया, सेवाडी, झाणेराव, झालरापाटन, देलवाडा, माउंटआबू, महावीर जी आदि स्थानों पर हैं।

राजस्थानी धरती संस्कृति गर्भा है। पुरातन अवशेषों से आधुनिक संस्कृति व मानवीय सौन्दर्यबोध–परिष्कृत अभिरुचि, कल्पनाशील एवं उर्वर मष्तिष्क के परिचायक है। पुरातन सामग्री का सिंहावलोकन करें तो अध्वाकार मूर्तियाँ, खिलोनों व मूर्तियाँ (मृण मूर्तियाँ) है। कुषाणकालीन मूर्तिकला शास्त्रीय एवं लोककला की गंगा–

यमुना ने विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की देव मूर्तियों के निर्माण की ऐतिहासिक भूमिका शुंगकाल के बाद शक कुषाणकाल में अपना निश्चित रूप धारण कर गुप्तकाल में सजीवता और मनोरम सौन्दर्य की प्रतीक बनी मध्यकाल में उनकी काल की पराकाष्ठा को प्राप्त हुई। ब्रजमण्डल में भरतपुर इसका प्रधान केन्द्र बन गया। यक्ष-यक्षी की प्रतिमाएँ जीवन्त उदाहरण है।

बौध धर्म की मूर्तियाँ, विशाल बाहु, अधोवस्त्र धारण, कर्ण कुण्डल, छाती पर टिका तिकोणा हार आदि। भरतपुर (नोह) में खोजी वीराबई, पीरनगर रेउ आदि में देखी गई शैव मूर्तियाँ भरतपुर व आस-पास के क्षेत्र करौली, माधोपुर बृज क्षेत्र में देखने को मिलती है। भरतपुर सीकरी राजमार्ग पर अवस्थित चौमा, भंडपुरा का 4 फिट ऊँचा शिवलिंग अपने ऊपरी माग में पुष्पमाला से अलंकृत है। शिव पंचायत, सिंह वाहिनी दुर्गा, कार्तिकेय, षडानन कार्तिकेय व गणेश की मूर्तियाँ कुषाण काल की देन हे। वैष्णवकालीन कृष्ण बलराम की मूर्तियाँ, टोंक, साँभर, पीलीबंगा आदि में। बौध धर्म से प्रभवित विराट् नगर, नीलकण्ठ महोदय (टहला) लालसोट आदि स्थानों पर दृष्टिगत हैं।

गुप्तकालीन मूर्ति रूपवास (भरतपुर) हेमावास (पाली) भीलमाल (जालोर) में गुप्तकाल के बाद अर्बुद, बागड, कूसमा, झालावाड, डूंगरपुर, बसंतगढ़ आदि स्थानों पर मूर्तियाँ है। मध्यकालीन नाँद (पुष्कर) लुद्रवा (जैसलमेर) आभानेरी (दौसा) झालरापाटन, कटारा में विष्णु के फलक केन्द्र हैं। उत्तर मध्यकाल जयपुर, अजमेर, आमेर, उदयपुर, नाथद्वारा, कोटा आदि स्थानों पर प्रतिमाएँ बनाई गयी।

पूर्वी राजस्थान में लोक मूर्तिकाल का प्रमुख केन्द्र संगमरमर के पत्थर हैं। जिसकी मूर्तियाँ बनाकर विश्व के कोने-कोने में भेजी जाती हैं। जयपुर में खजाने वालों का रास्ता, गोलाकाबास (अलवर) पृथ्वीपुरा (अलवर) क्षेत्र में पत्थर को काट-पीटकर नया रूप देने की पुरातन व नवीन तकनीक का प्रयोग कर तराशी जाती हैं। यह

कार्य राजस्थान में गौड़ या आदि गौड़ जाति के लोग होते हैं, जिन्हें ग्रामीण भाषा में खुमार (पांचाल) कहते हैं। कई पीढ़ियाँ इस कला में निकल चुकी हैं। शिव पंचायत रामलक्ष्मण, हनुमान, गरुढ़ नांदियाँ, दुर्गा आदि की मूर्तियों के साथ-साथ ऐतिहासिक, पौराणिक व आधुनिक प्रमुख राजनेता व समाज सेवियों की मूर्तियाँ भी यहाँ बनती है। डूंगरपुर व बांसवाडा में भी मूर्तिकारों की मूर्तियाँ प्रदर्शनियों में दिखाते हैं तथा उनका जीवन निर्वाह का कार्य मिलता हे। सोमपुरा के मूर्तिकार पढ़े-लिखे तथा समझदार है।

काष्ट निर्मित मूर्तियाँ जयपुर, चित्तोड़गढ़, उदयपुर बस्सी आदि क्षेत्रों में बनाई व तराशी जाती हैं। चित्तौड़ के सुथार रंगरोगन कर संजीव मूर्तियाँ बनाते हैं। दक्ष सुथार तीन-चार फुट ऊँचे हाथी, घोडे, ऊँट तथा बन्दर की सुन्दर आकृतियाँ बनाते हैं। इन मूर्तियों का निर्यात भी होता है। उदयपुर, जयपुर, कोटा, बूँदी, जोधपुर, सवाई माधोपुर, करौली, हिण्डौन आदि स्थानों पर काष्टकला के निर्माण कर्त्तारहे हैं। करौली के फूटा कोट, गणेश गेट, चटीना आदि मौहल्लों में लकड़ी के बने आदमकद 'लागुरे खडे दिखाई देंगें।'

स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थान में मूर्तिकला की परम्परा के बीजांकुर जयपुर के मूर्ति मोहल्ले से टटोले जा सकते हैं। वहाँ के सेठ देसी कलाकार स्व. उस्ताद मालीराम का नाम सबसे पहले उभरता है। पहलवानों का मल्लयुद्ध, शिव का नवीन रूप, विभिन्न आवक्ष प्रतिमाएँ, घिया पत्थर से गायें, मक्खी व मच्छर स्व कल्पना के जीवन्त प्रमाण हैं। सवाई माधोपुर की खण्डार तहसील के सेवती दौलतपुरा, झोंपडी, जयलालपुरा, दुमोदा, डांगरवाड़ा, गंगापुर, बालेर, बहरावदा, गण्डावर, सीगोर कलां, डूंगरी, फलौदी, टेटरा, तलवाडा, अनियाला, लहसोड़ा, चिरौली, खिजूरी, छाण, बहरावदा, सवांस, गोठ, बिहारी, बरनावदा, हलोन्दा, सेंवतीकला, बडवास, गोठ बिहारी ब्राह्मण, मीणा, गुर्जर, छीपी, कोहली, चमार, पण्डित, खाती, लुहार, कुम्हार, रैगर, जाट, माली, राजपूत, स्वर्णकार आदि जाति के लोगों द्वारा किये गये मांडनों, चित्रकारों, मिट्टी के खिलोनों, कशीदाकारी तस्वीरें, मूर्तियाँ, पलंग, नगीनों में छेद

करने सम्बन्धी कार्यों सभी जाति के लोगों का विशिष्ट योगदान रहा है। बरनावदा के गुर्जर अजीब कशीदाकारी।

मानव संस्कृति के इतिहास में स्थापत्य का अपना स्वतन्त्र स्थान है। चाहे वह रोम का हो या मिश्र का, यूनान का हो या तूरान का भारतीय हो या चीनी, स्थापत्य एक ऐसी शृंखला है जो शताब्दियों की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़कर देश और जाति की सच्ची सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत करता है। किसी भी देश की युगीन प्रगति का समुचित अध्ययन बिना स्थापत्य की विविध परतों तथा खण्डहरों के अध्ययन से नहीं हो सकता क्योंकि उनमें देश की वास्तविक आत्मा प्रतिबिम्बित होती है। उन्हीं के माध्यम से कला और जीवन का सामंजस्य एक दिव्य प्रकाश के रूप में प्रस्फुटित होता रहा है। जहाँ तक भारत की स्थिति का प्रश्न है, वहाँ हम अनुभव करते हैं कि यहाँ धार्मिक चिन्तन, भाव, प्रमाण और प्रगति का समूचा चित्रण स्थापत्य के अन्तर्गत निहित रहा है। यहाँ कला ने निरन्तर राष्ट्रीय अनुभूतियों और जनजीवन के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति की है और साथ-ही-साथ सौन्दर्य और माधुर्य के विरल स्त्रोतों को बहाकर जीवन और आत्मा को स्थायी तत्त्वों द्वारा सुखमय बनाया है। स्थापत्य के ये सभी सांस्कृतिक तत्त्व विकसित तथा समृद्ध परिमाण में पूर्वी राजस्थान में पाए जाते हैं, क्योंकि सभी युगों और जन-समुदाय में स्थापत्य की ओर सतत् रूचि बनी रही है। इस स्थापत्य की अभिव्यक्ति गाँवों, नगरों, मन्दिरों, राजभवनों, दुर्गों, जलाशयों, उद्योगों तथा समाधियों के निर्माण द्वारा प्रमाणित होती हैं।

लोक-संगीत

लोकगीत या संगीत आदि मानव के आनन्दवेगमय वाणी के उद्‌गार और प्रफुल्लित एवं आत्मरत अनुभूतियों के अजस्र स्रोत हैं। आदि मानव की हार्दिक भावना का स्रोत एवं संजीवनी शक्ति के बल पर अब तक जीवित है[1] और एक से दूसरे कण्ठ

1. वीणा ग्राम : संस्कृति अंक फरवरी मार्च 1971 सं. मोहन उपाध्याय पृ. 51

में, एक हृदय से दूसरे हृदय से प्रति ध्वनित होता सा प्रतीत होता है। लोक संगीत की मिठास से हृदय गद-गद हो उठता है जिसमें मानवीय कल्पना उत्तरोत्तर प्रकट होती रहती है। 'लोकगीत या लोक संगीत हृदय के खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दु:ख के गीत तो खोलते लहू में पनपते हैं और आसूओं के साथी बनते हैं।'[1]

व्यापक अनुभूति का पर्याय लोकसंगीत होता है। सहृदय की भावना का सार्वजनिक वस्तु होना लोक संगीत की सबसे बड़ी पहचान होती है। ''आत्मा का आनन्द आंगिक चेष्टाओं से व्यक्त होकर नृत्य बन जाता है और वाचिक होकर गीत।''[2] लोक संगीत का लोक साहित्य में व्यापक स्तर है। लोक गीत जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं है, ऐसा दृष्टिकोण नहीं, ऐसा स्पन्दन नहीं, जो लोकगीतों की सीमा संस्पर्श न करता हो। लोकगीत परम्पराओं के उस महानद के समान है, जिसे अनेक छोटी-मोटी धाराओं ने मिलकर महानद बना दिया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने ताने बाने बुने है। स्त्री पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई। इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं। जवानों में प्रेम की मस्ती आई है, बूढ़ों ने मन बहलाये हैं। वैरागियों ने उपदेश का पान कराया है। पथिकों ने थकावट दूर की है, किसानों ने अपने बड़े-बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ायें हैं।[3]

परिभाषाएँ :- पूर्वांचल की राजस्थानी सभ्यता व संस्कृति लोकगीतों से ओत-प्रोत है। इस संस्कृति की बहुरंगी छटा, धोरों की धरती को समृद्धिकारक बनाती है। आलोचकों एवं विश्लेषकों ने लोक गीत-संगीत को इस प्रकार से प्रस्तुत किया है।

---

1. देवे सत्यार्थी : धरती गाती है, पृ. 106
2. डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय : मानवीय लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन पृ. 4
3. डॉ. श्याम परमार भारतीय लोक साहित्य पृ. 54

1. आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। इसमें मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उमंगों की, करूणा की रूदन, सुख दु:ख की कहानी चित्रित है।[1]

2. लोक गीत आदिम अविरल संगीत होता है।[2]

3. लोक गीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।[3]

4. ग्राम गीत प्रकृति के उदगार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस हैं। छन्द नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रवृत्ति गान करती है। प्रकृति के वही गान ग्राम गीत हैं।[4]

लोक गीत :- संगीत बाह्याडम्बरों व बन्धनों की ओर ध्यान नहीं देती और ना ही नियम बन्धनों की चिंता करती। मेरी सम्मति में लोक जीवन से जुड़े सामान्य जन जीवन के धरातल पर अचिन्त्य रूप से फूट पड़ने वाले हृदयोदगारों की अभिव्यक्ति ही लोकगीत कहलाती है। पूर्वी राजस्थान अचंल की संस्कृति का परिधान धारण कर समाज की अमूल्य निधि है। डांग क्षेत्र सवाई माधोपुर, करौली, हिण्डौन, गंगापुर के पुरातन प्रमाणों का अभाव है। शिलालेख व ताम्रपात्र के अभाव में अनुसंधान करना दुर्लभ कार्य है। जिसमें लोकगीतों के दिशा निर्देश द्वारा पुरातन सांस्कृतिक परम्पराओं से अवगत होते हैं। सामाजिक राजनैतिक ऐतिहासिक भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

लोक संगीत :- लोक संगीत जनमानस के स्वभाविक उद्गारों का प्रस्फुटन है। विश्व के सभी राष्ट्रों में आरम्भ से ही लोक-संगीत का महत्त्व रहा है। कवीन्द्र

---

1. सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी राज.लो.गी. प्रस्तावना, पृ. 1
2. एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ ब्रिटेनिका, वाल्यूम व में पैरी का कथन पृ. 422
3. देवेन्द्र सत्यार्थी आजकल (मासिक, नवम्बर, 1951) पृ. 17
4. रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (ग्राम गीतों का परिचय प्रकरण) प्रस्तावना पृ. 1-2

'रवीन्द्र' ने लोक गीतों में संस्कृति का सुखद सन्देश ले जाने वाली कला कहा है। महात्मा गाँधी के शब्दों में ''लोकगीत ही जनता की भाषा है, लोक गीत हमारी संस्कृति के पहरेदार है।''

पूर्वी राजस्थान के विशिष्ट भौगोलिक परिवेश ने यहाँ पर नानारंगी लोक जीवन का निर्माण किया है। हरी-भरी घाटियों, वनों, पर्वत श्रेणियों और शुष्क मरूस्थल की वैविध्यपूर्ण सुषमा वाला यह प्रदेश राजपूत राजाओं के संरक्षण में लोक कलाओं का निरन्तर विकास करता रहा है। यहाँ के बहुरंगी जीवन का सच्चा इतिहास, उसका सामाजिक और नैतिक आदर्श लोक-संगीत में सुरक्षित रहकर अपनी अनूठी छटा, गीतों, नाट्यों, गाथाओं व नृत्यों के माध्यम से विकीर्ण करता रहा है। जीवन का कोई भी प्रसंग अथवा क्षेत्र ऐसा नहीं है। जिससे सम्बन्धित लोक गीत यहाँ पर उपलब्ध न हो तथा कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जिसका अभिव्यंजन लोक नाट्यों व गाथाओं में न हुआ है।

लोक संगीत का मूल आधार लोक-गीत है, जिन्हें विभिन्न अवसरों पर सामूहिक रूप में गाया जाता है। लाक-वाद्यों की संगति इनके माधुर्य की वृद्धि करती है और कभी गीत के भावों को नृत्य द्वारा भी साकार किया जाता है तब उसे लोक नृत्य कहा जाता है। जब कभी गीत में वर्णित किसी वीर या देव पुरुष का जीवन चरित अथवा प्रेरणास्पद कथानक अभिनीत किया जाता है तो वह लोक नाट्य की संज्ञा प्राप्त करता है। इसी प्रकार अनेक घटनाओं से युक्त दीर्घ-गीत लोक नाट्य की संज्ञा प्राप्त करता है। इसी प्रकार अनेक घटनाओं से युक्त दीर्घ-गीत, लोक-गीत, लोक-गाथा कहे जाते हैं। शेखावाटी के निवासियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, खानपान, मूल्य, विश्वास, देवी-देवता, पर्व आदि गीतों में अभिव्यंजित होकर यहाँ की संस्कृति को साकार करते हैं। स्वर, ताल, और लय में बद्ध लोक संगीत की धुनें संयोग और वियोग, हास्य और रूदन, रोष और भय, घृणा और विवशता, भक्ति

और वैराग्य, वीरता और भीरूता आदि सूक्ष्म मनोभावों के विशिष्ट सौन्दर्य के कारण किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को विमोहित किये बिना नहीं रहती।

करौली, सवाई माधोपुर लोक–गीत संगीत के क्षेत्र में अनमोल हैं। इनको किसी ने न लिखा है और न इनके रचयिता का पता चला है। इनका प्रादुर्भाव मानव–मानव और वाणी से सम्बन्धित है। ये मौखिक परम्परा और अनुश्रुति पर आधारित रहे हैं। मानस पटल की उपज होने के नाते इनमें सांस्कृतिक और कलात्मक प्रवृतियाँ प्रविष्ट हो जाती हैं। इनमें मानव समाज की विशुद्ध मनोवृतियाँ और भावनाएँ समयोजित प्रसंगों पर हर्ष–विषाद, प्रेम–ईर्ष्या उल्लास–भक्ति आदि प्रकट होती है। मौखिक होने से एकल और बहुधा सामूहिक रूप से इन्हें गाया जाता है।

इनके द्वारा बुद्धि, सौन्दर्य, सुख, भक्ति तथा आनन्द का अनुभव होता है। विवाह, जन्म या अन्य त्यौहारों पर पति–पत्नी, ननद–भौजाई, सती, मातृ–भक्ति, शौर्य, रीति–रिवाज, शक्ति, आराधना, ज्ञान, दर्शन, नीति आदि विषयों को प्राचीन और वर्तमानकालीन आदर्शों और मानव धर्म के सिद्धान्तों को इनमें व्यक्त किया जाता है। गीतों में उपदेश और त्याग का इतना वर्णन रहता है कि गाने वाले और सुनने वालों में एक नई प्रेरणा का भाव रहता है। विवाह और पुत्र जन्म के गीतों में उल्लेख है तो पुत्री की विदाई में लौकिक दु:ख का प्राबल्प है। इसी तरह रात्रि जागरण के गीतों में 'भक्ति' रस समाहित रहता है। तीज के गीतों में प्राकृतिक छटा और पति–पत्नी संयोग या वियोग तथ सहेलियों के सहवास के भावों का अच्छा संयोग दिखाई देता है। जन–जीवन में व्याप्त हर्ष, कामनाओं और अभिलाषाओं का यदि अविरल स्रोत प्राप्त करना है तो वह लोक गीतों में मिलेगा।

लोकगीतों का माध्यम जितनी स्त्रियाँ है, उतने पुरुष नहीं। जितना प्रेम, स्नेह, विवाद, पीड़ा और उल्लास का चित्रण महिलाएँ कर सकती है, अन्य व्यक्ति नहीं कर सकते उनके कण्ठ से जो स्वर निकलते हैं वे वास्तविकता के निकट सहज ही पहुँचते

हैं। गीत के बोल बालिका अवस्था में यौवन या प्रौढ़ अवस्था तक वेद वाक्य बन जाते हैं, जिससे महिलाओं में एक अनमोल आस्था और शक्ति उत्पन्न होती हैं। वेदों की भाँति लोकगीत भी हमारी संस्कृति के अटूट भण्डार बन जाते हैं और समाज के भव्य-भवन को स्थायित्व प्रदान करते हैं।[1]

जनसाधारण के गीत

सवाई माधोपुर करौली क्षेत्र में लोक गीतों की विशिष्टता ग्रामीण परिवेश जनित रुढ़ियों, परम्पराओं व संस्कारों, त्यौहारों, पर्वों पर गाये जाते हैं। सोलह संस्कारों में जन्म विवाह के गीत बधावे, बन्ने आदि अक्सर पूर्वांचल में सभी जगह महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं। जैसे पाणिग्रहण संस्कार के समय चाक-भात, लग्न, फेरे, फेरपट्टा, गौणा व विदाई के गीतों का तालमेल बुजुर्ग महिलाओं के साथ-साथ नई औरतें भी सुर मिलाती हैं। तीज, होली, रक्षाबन्धन, दीपावली, भैया दूज, गणगोर पर महिलाएँ व बालिकाएं गणगौर के गीत गाती हुई ईश्वर पार्वती के सोलह दिन तक गीत-गाती है। फाल्गुन मास में होली के गीत रसिया, फाग आदि गाती है।

पुत्र जन्म का गीत दृष्ट्व्य है-

गावहिं मंगल मंजुलवानी।
सुनि कलरव कल कंठ लजानी।।

जन्म के अवसर पर जच्चा गीत—

दिन आज खुशी का आया है जच्चा ने बच्चा जाया
जच्चा की दायी आवेगी, वो ललन जनाई नेग मांगेगी
उनका भी नेग चुका देना नहीं झगड़ा हमसे डालेगी,
दिन आज खुशी का आया है जच्चा ने बच्चा जाया।[2]

---

1. गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. सं. 207, 208
2. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 6

एक अन्य गीत—

काहे कूँ छाई ऊँची अटारियां, काहे कूँ छायो परदेश
जा दिन जन्मो कँवर कन्हैया बाबुल बसत द्वार
जा दिन जन्मी धीमर (कन्या) वा दिन बाबुल बसत खिरान

× × ×

लाला जी की ऊँची अटारिया वाही ते लाल किवरिया
वाही में देवर भाभी साये, मैं तोय पूंछी बैयर वात
का गुन तारो पेट कदको, लालजी ने खीर रधाई
वा दिन मेरो पेट गदको।
मैं तोय पूछूँ वीयर वात, का दिन मुख तेरो पीरो जान
लाला जी ने हरद पिसाई, वा दिन मुखड़ा मेरो पियरो
मैं तोय पूछूँ बैयर वात का।

मंडरापूजा, छठीपूजा लगभग 11-15-20 दिन पश्चात् कुआँ पूजन कुछ इस प्रकार पूजा जाता है—

ससुर के अंगना, जल पूजन जाऊँगी।
मोमन पटिया सींकन सुमरन सारी।
बोली री नाइन की बिटिया नगर बुलायो देय।।

उपनयन संस्कार :- 'जनेऊ' संस्कार को सोलह संस्कारों में से एक माना है। यह संस्कार करौली सवाई माधोपुर क्षेत्र में इस प्रकार के गीतों से होता है।

''होय जनेऊ आज हमारे वरना को।
पण्डित जी ने वेदी रचा के मन्त्र की आवाज हमारे।
बोले स्वाहा आहुति छोड़े है रहे मंगल काज हमारे।।[1]

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 8

विवाह के मंगल गीतों में **ज्योंनार के गीतों** का अपनी भाषा में अनूठा संगम देखा है—

हाँ राम रंग बरसे गो।
रंग बरसे कुछ अमृत बरसे।
और बरसे किरत्तुरी।
राम रंग बरसेगो।

फेरे पड़ने (भाँवर) के गीतों में सम्पूर्ण जीवन में होने वाले परिवर्तनों व एक दूजे का जीवन भर साथ देने की सौगन्ध खाई जाती है।

ए मेरी पैली भाँमरी अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी दूजी भाँमरी अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी तीजी भाँमरी अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी चौथी भाँमरी अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी पंचई भाँमरी अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी छठी भाँमरी अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी सातई भाँमरी अबऊ बेटी ससुर की।[1]

विदाई का गीत—

ओ मेरी सोन चिरैया उड़ चली
बाबुल मेरे तैने दइयै निकार जैसे जल की माछरी
मैया मेरी राखियो दुआर जैसे गुर की माथरी
चाचा मेरे दईऊ निकार जैसे जल की माछरी
चाची ने राखिओ दुआर जैसे गुर की माथरी।।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 12

इस प्रकार विवाह में विदाई तक में लोक गीतों की परम्परा पूर्वांचल की अनूठी देन है। मृत्यु के गीत भी लम्बी उम्र प्राप्ति के समय अंतिम समय गाये जाने वाले गीतों का प्रचलन चला आ रहा है।

ऋतुओं के गीत

भारत वर्ष में छः ऋतुओं के कारण प्रत्येक ऋतु का अपना महत्त्व है इन गीतों का बारहमासा वर्णन ऋतु गीतों के रूप में प्रसिद्ध हैं। श्रावण के गीत, रागमल्हार, बारहामासी व काजरी आदि गातों का प्रचलन करौली, हिण्डौन, महावीर जी, गंगापुर, खण्डार, सवाई माधोपुर व उसके समीपवर्ती धोलपुर के क्षेत्र में सम्पूर्ण पूर्वांचल को समेटे इन गीतों का प्रचलन है। ताल से समा बांधने वाले गीत सुनने योग्य है।

सावन आयो रे पिया।
कोई आई रे हरियाली री तीज।
हिडोले गड़ा दे, चम्पा बाग में जी।
ऐ जो कोई है। हम्बे कोई जी।।[1]

बागों में झूले पड़े रहते हैं, और सखियाँ गाती रहती हैं–

सखी री चलो दरसन कर आएँ
झूला डारो है कदम की डार
सखी री एक लंग झूले राधिका रानी
कोई एक लंग कृष्ण मुरार 'सखीरी'।[2]

श्रावण मास का प्रियतम विछोह असहनीय होता है। हमारे यहाँ नव विवाहित नारियाँ पीहर में रहती है। वर्षा की रिम–झिम में दादूर पपीहा की ध्वनियाँ विरह के गीतों से व्याकुल हो उठती है। मल्हार और कजरी की धुन, बूरा खाने का पर्व भी

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 14
2. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 15

आता है। इन मल्हारों में राष्ट्रीय राजनीति व भ्रष्टाचार से ओत–प्रोत गीतों का प्रभाव देखने को मिलता है। पूर्वांचल के गीतों में लोक प्रचलित मल्हारों में पुरुषों के समसामयिक समस्याओं पर तीव्र व्यंग्य है।

झूला झूलती एक नवविवाहिता (विरहिणी) स्त्री अपने प्रियतम को संदेश भेजते हुए कहती है—

उड़ उड़ जा म्हारे कारे कागळा
जब पिबजी म्हारे घर आवे।

स्त्रियों में **मल्हारों** में उनके हृदयानुकूल कोमलता प्रकट हुई है—

झूला तो झूले भवानी रानी भवन में जी
ऐजी कोई जोगन रही झुलाय
पण्डा करते तेरी आरती जी मय्या।
ऐ जी कोई चौमुख दिलवा सजाय।।

बारहामासा, चन्दना के गीतों के माध्यम से विरहणियों की मनोव्यथा प्रकट होती है। यह आदिकालीन साहित्य से व जैन कवियों के साहित्य से यह परम्परा जायसी की परम्परा 'बूढे की बारहमासी' के माध्यम से वृद्ध विवाह पर तीव्राघात किया है यह भाव–व्यंजना वृद्ध की नवविवाहिता युवा पत्नी द्वारा की गई है।

'सामन महीना लागो, डोकरा पौरी में सोवे।
धन्धो नाही करै पजारो प्रानन कू खोवै।

चन्दना के विरह के गीत में योगी के गीत को नारियाँ झूले पर झूलती हुई बड़े करूण–रस में गाती है–

तीजन चर्चा ऐरी चन्दना चल रही जी।
ऐजी कोई पड़ा है, नगर में शोर जी।
बदनामी ऐसीचन्दना है रही जी।

राजा से रानी ऐरी चन्दना यौ कहेगी।
सुन राजा मेरी बात।
चिट्ठी तो भेजे वा चन्दना के सासुरे जी।
धौरे पै कारो लिख दिया जी।।[1]

पर्व एवं त्यौहारों के गीत :- हरियाली तीज, होली के रसिया सर्वाधिक प्रसिद्ध है। गोपिकाओं व कृष्ण की नट-खट लीलाओं का अनूठा संगम गोतों में देखा गया है-

''मेरी अखियन बीच गुलाल रसिया जिन डारो।
हा हा करत तेरे पैय्या परत हो नन्द महर के लाल।
सुनि है मेरी सास ननदिया तब जिय होत जलाल।।

ब्रज में मनाई जाने वाली होली का रंग तो अनूठा और भव्य है ही साथ ही पूर्वांचल करौली, मदनमोहन के मंदिर व गंगापुर हिण्डौन एवं भरतपुर के आस-पास की होली का सुन्दर चित्रण कुछ इस प्रकार है जो कि रसिया के माध्यम से कृष्ण की लीलाओं का बखान किया जाता है। द्रष्टव्य है—

काना बरसाने में आजइयो
बुलाइगयी राधा प्यारी।
बुलाइगयी राधा प्यारी।
× × ×
'मेरो बारो सो कन्हैया, काली दह पर खेलन आयो री।
रेशम की पट गेंद बनायी, चंदन का डंडा लायो री।
मारो टोल गैंद गई दह में गैंद के संग धायोरी।
हुआ युद्ध दोनों में भारी अंत में नाग हराया री।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 19

रसिया में तन्मयता होती है, भाव विदग्धता भी। श्रोता भावों के साथ डूबता उतरता है—

इकली धेरी बन में आय, श्याम तैने कैसी ठानीरे।
श्याम मोय वृंदावन जानो, लौट के बरसाने आनो।
मेरे कर जोरे की मानो।
जो मोय होय अबेर, लड़े घर ननद जिठानी रे।।

रसियाओं में **सूर व मीरा** ने भी पद लिखे व गाये हैं, जिनको गाया जाता है–

पपइया पिया मत बोले, मेरे होत जिगर में पीर।
पपइया बोले पिया के बैन, पिया बिनुद तड़फत दोऊ नैन।
कहै नहीं पायी बैरिन रैन।
कारी को कोकिला काहे को बैर काठत री
पिपइया रे पिव की वाणी मत बोल।

लोक जीवन का सरल, आस्थापूर्ण, निष्कपट एवं शुचिरूप पूर्वांचल की धरा पर स्पष्ट झलकता है। यही उदगार लोक जीवन में प्रेम के रूप में प्रकट होने वाला उदगार है जिसमें बुद्धि तत्त्व की अपेक्षा भाव तत्त्व की अधिकता झलकती है।

भक्ति गीतों मं सत्यनारायण की कथा, देवी देवताओं के गीत, चतुर्थी (करवा) अहोई अष्टमी, चेचक मुक्ति हेतु शीतला माता की पूजा (बासेडा) पर गाये जाने वाले करौली वाली माता (कैलादेवी) के दर्शनार्थियों द्वारा मण्डलियों में गाडियों में पैदाति भक्तगणों द्वारा अलग–अलगरागो द्वारा मन्नत माँगते हैं।

दोहा माता तेरे भवन में, घण्टन की ध्वनि घोर।
वन में शेर दहाड़ता, तरूवर कूंके मोर।।

चोपाई तरूवर फूँके मौर, मात तुम ऊँचे शिखर विराजो।
श्याम थिला रमणी कुमात, तुम लखिया वन में जागो।
दास आस करके दर्शन की मंदिर तेरे भाजो।।

नवरात्र में माँ के दरबार में लक्खी मेले में लांगुरिया के गीतों की सम्पूर्ण ध्वनि सुनने को मिलती है। लांगुरिया देवी का भक्त होता है। माँ को प्रसन्न करने से पूर्व लांगुरिया को सम्बोधित करना होता है। असुरों का वध करने वाला आज्ञा प्राप्त भक्त होता है।

लांगुरिया को गांजा पिलाया जाता है, उसकी प्रसन्नता ही माता की प्रसन्नता है, यह लोक मान्यता है। लांगुरिया एक प्रतीक है। मन को सुसुप्त भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए वह आड है, वजन को मुखर करने के लिए तथा कुण्ठाओं को निकालने के लिए यौन सम्बन्धों की स्वच्छन्दता दो–दो योगिनियों के बीच फँसा हुआ लांगुरिया गोपिकाओं के बीच फँसे हुए कृष्ण की याद दिलाता है पर गोपिकाओं ने योगिनियों की तरह माँग नहीं रखी थी—

दो–दो जोगिनी के बीच अकेलो लांगुरिया।
एक जोगिनी यों कहे रे हँसली ला दे मोय।।
और एक जोगिनीयों कहे रे कठला ला दे मोय।
दो–दो जोगिनी के बीच अकेला लाँगुरिया।

लांगुरिया को कहीं–कहीं पति के रूप में भी गोतों में व्यक्त किया है। परदेश गमन की लांगुरिया की बात सुनकर दु:खी हो गई।

परदेश मत जाउ लांगुरिया, जिया लगे ना तेरे बिना कहकर योगिनी विरह में व्याकुल हो उठती है। भर्तृहरी लीला, गोपीचन्द लीला, प्रहलाद लीला, द्रोपदी चीरहरण, मोरध्वज लीला, सुदामा लीला, जयद्रथवध लीला, नरसी भात लीला आदि प्रसिद्ध है। सूरदास की सूरसागर, भ्रमरगीत व तुलसी दास कृत 'रामचरित मानस' के पदों को लोकगीत में गाने की परम्परा करौली व सवाई माधोपुर अंचल में अधिकता है।

सभी जातियों के लोग गणेश जी के दर्शन, महावीर जी के मेले में, मदन मोहन जी के और कैला मैय्या के दर्शनार्थ भक्तगण जातिगत गीत भी गाते हैं। कुम्हार, गुर्जर, चमार, मालियों व मीणा बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण उनके लोक गीतों ब्रजभाषा की भी बहुलता दृष्टिगत होती है। देखिए –

''मैया का समाचार आया डाक गाड़ी में।
ढोला तू आजा में आऊँ चील गाड़ी में।
× × ×
हाथ में इत्तर की शीशी कन्धा पै थैलो।
तोते न्यों पूछू जावाड़ा कुणसा गाँव को छै लो।।

श्रम विनोद, नीतिगत गीतों का प्रचलन भी पूर्वांचल की अतुल धरोहर है। इस प्रकार करौली, हिण्डौन, गंगापुर, माधोपुर, भरतपुर आदि क्षेत्रों में लोकगीतों की अपनी पहचान है।

लोक वाद्य

भारतीय संस्कृति अति प्राचीन है। वेद पुराणों की दन्त्य कथाओं के आधार पर शिव के डमरू से निकले 14 माहेश्वरी सूत्रों से वाद्य उत्पन्न हुआ। चार प्रकार के वाद्यों का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। **तत, सुषिर, अवनद्ध** तथा **घन**। **तत–तार** वाद्यों में तारों की भूमिका ही प्रमुख रहती है। इनमें पशु की तांत (आँत) के अथवा धातु निर्मित (ताम्र, पीतल, लोहे) के तार लगाये जाते हैं। **सुषिर**, स्वर, फूँक वाद्य से प्राय: नलीदार होते हैं। गले की वायु फूँक ही इनके वादन की प्रमुख होती है। **अनवर्द्ध** चर्ममण्डित कुण्डीनुमा होते हैं। चौथा **घनवाद्य** प्राय: धातु निर्मित होते हैं।

लोकवाद्य संगीत का महत्त्वपूर्ण अंग है। इनके माध्यम से गीत संगीत में माधुर्य झलकता है। करौली, सवाई माधोपुर क्षेत्र के लोक वाद्यों में **ढोलक, मंजीरा, ताल, खंजरी, करताल, चींपिया घुघंरू** आदि ऐसे वाद्य हैं, जो पूर्वांचल के मीणा जाति,

अनुसूचित जातियों के प्रचलन में अधिक हैं। **घुंघरू** की बेरनुमा आकृति होती है। प्राचीन मध्यकाल में इसे घर्घरिका, मर्मरा, क्षुद्रघंटिका, घुंघरा आदि नामों से अभिहित किया है। करताल अंगुलियों में बांधा जाता है। ऊँट भैस आदि मवेशी के गले में बाँधने की रिवाज है। **झालर, मंजीरा**, पीतल, तांबा व काँसे के बने होते हैं। झांझ गोल चक्र में बीच में अर्द्ध गेन्दाकार गोल उभरा हुआ होता है। **चौंतारा** (तंदूरा-बीणा) कामड़ जाति में प्रचलित 'चौतारा' वाद्य भक्ति संगीत का श्रुति लयात्मक वाद्य है। कामड़ लोग इसका वादन 'तेराताली' नृत्य में करते हैं। निर्गुण भक्ति व रामदेव जी के भजन गाये जाते हैं। लौकिक भाषा में **तम्बूरा, तंदूरा, वीणा, निशान** आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। सुरमण्डल मांगणिया लोक कलाकारों में प्रचलित 'वाद्य सुर मण्डल' का निर्माण लकड़ी की पट्टियों से चतुष्कोणीय शक्ल में बनाया जाता है। 21-26 तारों की संख्या होती है। रावण हत्था राजस्थान का प्राचीन लोक वाद्य है। यह पाबूजी के भोपों का वाद्य है। इसकी तबली नारियल के खोल की बनती है। इकतारे की तरह बाँस का डण्डा होता है।[1]

चिकारा मैव अलवर क्षेत्र के मेव लोगों द्वारा बजाया जाने वाला वाद्य है। लंगा जाति का वाद्य कमायचा, शीशम आम या रोहिड़ा की लकड़ी से बनाया जाता है। सुरिदां लोकवाद्य का प्रयोग मारवाड़ के लोक कलाकारों द्वारा बजाये जाने वाला वाद्य है। पूर्वी राजस्थान के अलवर भरतपुर क्षेत्र में लोक गाथाओं की संगत में बजाया जाने वाला वाद्य '**धानी सारंगी**' निहालदे जोगियों का वाद्य है। **खाव भाट** अथवा राव जाति का प्रमुख वाद्य है। इस अधिक प्रचलन मेवाड़ में है। **जंतर** भोपों का वाद्य है। ढोलकनूमा काँख में आने वला वाद्य-**भपंग** है, तुंबी, कद्दू या लकड़ी का बना होता है। यह **भपंग** से मिलता-जुलता वाद्य है। पूर्वी राजस्थान की स्त्रियों का लोकनृत्य मण्डलियों में गुर्जर स्त्रियाँ हाथों में पीतल की चूड़ियाँ पहनकर वाद्य की

---

1. रमेश बौराणा : राजस्थान के लोक वाद्य पृ. 160-162

तरह बजाती हैं। **कमट** भी ऐसा ही वाद्य है। **सहनाई, सुरनई, सनही** आदि नामों से जाना जाता है। लकडी की नाली बनाकर ताड की रीढ़ लगाई जाती है। प्रमुख रूप से जोगी, भील, ढोली तथा जैसलमेर के लंगा लोग बजाते हैं। **अलगोजा** में दो बाँसुरियों का युग्म होता है जो एक फुट का होता है। यह चरवाहों का जातिय वाद्य है। पूर्वांचल में अधिकाधिक प्रयोग में आता है। अलवर, भरतपुर, अजमेर व हाडौती के क्षेत्र कोटा, बूँदी में प्रयुक्त होता है। राजस्थान के सेपरों व काल बेलियों का प्रमुख वाद्य है **पूंगी का ढाँचा** लौकी की तूंबी से बनाया जाता है। **बांकियाँ** जिसे पूपांडा (शहनाई) भी कहते हैं। यह विवाहोत्सवों अगवानी आदि करने में बजाया जाता है। **तुरही** मंदिरों व दुर्गों में चिलम नुमा आकृति की तुरही कहलाती है। **शंख** नैसर्गिक रूप वाला वाद्य (घोंघा) समुद्री जीव है। संगीत रत्नाकर, संगीत पारिजात, संगीतसार आदि ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है।

मशक में बकरी की खाल को गुब्बारें की तरह काँख से दबाकर बजाया जाता है। पूर्वांचल का लोकप्रिय वाद्य है। भरतपुर, अलवर, सवाई माधोपुर के नाथ जोगियों द्वारा बजाये जाने वाला पारम्परिक वाद्य है। इसे भैरोजी के भौंपों का वाद्य भी माना जाता है। इस प्रकार राजस्थान के पूर्वांचल में हिण्डौन, महावीरजी, सवाई माधोपुर, भरतपुर, धोलपुर व करौली अंचल में इन वाद्यों का प्रचलन पारम्परिक रूप से रहा है। किन्तु कालांतर में युगीन परिवेश व भौतिकता के कारण इनका महत्त्व धीरे-धीरे क्षीण सा हो रहा है।

मंगलाचरण विधान

राजस्थानी संस्कृति व साहित्य की ही नहीं वरन् वेद, वेदांग, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि सभी में मंगलाचरण का विधान देखा गया है। किसी कार्य को निर्विघ्न समाप्ति हेतु, अनिष्ट निवारण हेतु देवी-देवताओं व राजा और महाराजों की स्तुति की जाती है। या राजा का यशोगान किया जाता है। संस्कृत साहित्य की परम्परा से हिन्दी साहित्य में इस परम्परा ने पदार्पण किया है। आदिकाल से लेकर

आधुनिक काल तक के साहित्य का विश्लेषण परक अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि हिन्दी काव्य या लोक काव्य में भी मंगलाचरण का विशिष्ट महत्त्व है। मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत, मझन की मधुमालती, पृथ्वीराज बिहारी की 'सतसई' में सर्वप्रथम गणनायक, गणपति, सरस्वती की वन्दना की गई है। शिव पार्वती, हनुमान, भैरव, माता आदि। कई देवी–देवताओं से की गई वन्दना सम्पूर्ण पूर्वी राजस्थानी साहित्य की अनूठी परम्परा है।

देवी का माहात्म्य और स्वरूप का दिग्दर्शन कराया जाता है–

पीकर मद का प्याला, भवानी मैय्या–सिंह चढ़ी।
कैला रानी सिंह चढ़ी पीकर मद.....1
खडग खप्र कृपाण हाथ में, और सँभाले माला।
भवानी मैय्या सिंह चढी पीकर मद.....2
शीश मुकुट विकराल रूप धरि, गल मुण्डन की माला।
भवानी मैय्या सिंह चढ़ी पीकर मद.....3
सखिया वन में दानव मारे, वहै रक्त को नाला।
भवानी मैय्या सिंह चढ़ी पीकर मद.....4
बावन भरौ छप्पन कलुंआ हनुमत है मतवाला।
भवानी मैय्या सिंह चढ़ी पीकर मद.....5

राजस्थान के पूर्वांचल सवाई माधोपुर, गंगापुर व करौली के डांग क्षेत्र में माता करौली (कैला देवी) की मान्यता राजस्थान के अलावा यूपी, एमपी व अन्य दूर प्रांतों तक है। इस प्रकार सभी महिमा का गुणगान करते हैं।[1]

दुनिया में रोशन नाम करौली वाली कैला का
करौली वाली मैया का, पर्वत ऊपर बसी है,
डांगन में केलागांव, दूर–दूर के यात्री आवे,
सुनि सुनि तेरो नामकरौली वाली मैया का।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य पृ. 29

माता के दरबार में मंगल गीतों की ध्वनि गुंजायमान होकर परिसर भक्तिमय हो जाता है। माता के लांगुरियों की धुन जातिय रूप में भी प्रसिद्ध है। जैसे मीणाओं के गीत, गुर्जरों, कुम्हारों व चर्मकारों के भक्तिमय गीतों द्वारा माता का यशोगान करते हैं। गुरु की महिमा का गुणगान भी किया जाता है। गुरु को तो राह दिखाने वाला तथा ईश्वर से भी बड़ा माना गया है। वह प्राणी को अज्ञान की राह से दूर कर ज्ञान की गंगा में स्नान कराकर पवित्र रूप धारण करवाता है। सद्मार्ग की ओर प्रेरित करता है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पॉय।
बलिहारी गुरु आपणो, जिन गोविन्द दिये मिलाय।[1]

लोक दोहों में भी कहा गया है–

गुरु गम ग्यान प्रगासियै, गुरु बिना ग्यान न पाय।
गुरु अग्या गुरु मन्त्र गहि, गोविन्द का गुण गाय।।[2]

कैला मैय्या के लांगुरियों, ख्यालों, गीतों में ईश्वर की तरह गुरु के प्रति श्रद्धाभाव दृष्टिगोचर है। तुलसीदास, सूरदास मीरा की भक्ति से जुड़े हुए गीतों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। 'दूहा विहार' में नरोत्तम दास ने कहा है—

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढ़–मढ़ काढै खोट।
भीतर हाथ सहार दै बाहा बाहर चौय।।[3]

देवी की भक्त रमणियाँ योगिन कहलाती है। ऐसा माना जाता है कि इनके सिर पर देवी आती है। नव दुर्गा के दिनों में ये भक्त नर–नारी उपवास रखते हैं। इनके केश खुले होते हैं। हाथों में हरी, चूड़ियाँ और सफेद कोरी धोती होती है।

देवी सम्बन्धी गीतों में भी माता की पूजा–अर्चना लांगुरिया के गीतों में प्रकट होता है। नवरात्र में लांगुरिया लाखों की भीड़ गाती हुई आती है। समस्त पूर्वांचल लांगुरिया मय हो उठता है।

---

1. पूरनचन्द टण्डन, विनिता कुमारी : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 105
2. स्वामी नरोत्तम दास : राजस्थानी दूहा बिहार, पृ. 10
3. स्वामी नरोत्तम दास : राजस्थानी दूहा बिहार, पृ. 210

दो–दो जोगिनी के बीच अकेलो लांगुरिया।
एक जोगिनी यों कहे रे हँसली ला दे मोय।।
और एक जोगिनीयों कहे रे कठला ला दे मोय।
दो–दो जोगिनी के बीच अकेला लाँगुरिया।

लोक साहित्य में सभी विधाओं में ईश्वर के प्रति पूज्य भाव की अभिव्यक्ति स्पष्ट झलकती है। डांग क्षेत्र के लोक साहित्य में मानस की अभिव्यक्ति स्पष्ट है। राम वन गमन से सम्बन्धित भजन है–

कैकेयी ने गजब कर दइयै, कैपाती लिख वनोवास दई यै।
ऐजी सिया सुनत महल डकरावै।
ओ पिया मोय छोड खाँ जावे, तेरे महलन पै काग पडेंगे।
ओ छोटे दिवरा संग चलेंगे, मोय मत रोके भँवर हजारी।।

यहाँ सीता रामजी से वनगमन हेतु आग्रह कर रही है। राम वनगमन पूर्व माता से आज्ञा लेते हैं। यह प्रसंग लोग गीतों में बड़ा ही मनोहारी रूप में व्यक्त किया है।

राम बनी को जाता री माता, राम बनी को जाता री माता।
चरणों में शीश नवाता री माता, राम बनी को जाता री माता।
जिंदा रहेंगें फिर मिलेंगे काल सभी को खाता री माता।
राम बनी को जाता री माता।[1]

आस्तिकता :– लोक साहित्य की चाहे कोई भी विद्या क्यों न हो? सभी में ईश्वर के प्रति पूज्यभाव की अभिव्यक्ति मिलती है। लांगुरिया और योगनियों की यह प्रेम लीला, कृष्ण और गोपिकाओं की प्रेम क्रीडाओं का स्मरण करा देती है। वह लांगुरिया पनघट पर बाज नहीं आता है। करनी अनकरनी कर बैठता है। शिकायत तो देवी के दरबार में ही कर सकते हैं।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 38

चुन्दरी ना खींचो ना लांगुरिया। मेरे सिर मटकी।
मेरी एक न मानी लांगुरिया डारदई गल बैय्या।
मेरी लूटी रे दुकनियाँ कैसी झट–पट की।।[1]

प्रस्तुत कथन में देवी माँ के प्रति आस्था लांगुरिया के माध्यम से भक्ति भाव विभोर होकर अपनी श्रद्धा को प्रकट करता है। लांगुरियों के माध्यम से राधा कृष्ण प्रेम की अभिव्यक्ति, भक्त–भक्तिन की मानसिकता को प्रकट करते हैं। लांगुरिया देवी का परम भक्त होता है। असुरों का वद्य करने में सहयोग देता है। डांग क्षेत्र की हरी–भरी धरा का काव्यात्मक सौन्दर्य स्पष्ट झलकता है, वहीं माधोपुर के गणेश जी की महिमा निराली है। जिसे किसी भी मंगल कार्य में विशेष रूप से विवाह में निमन्त्रण सर्वप्रथम वहीं पर जायेगा।

राजस्थान प्रदेश वीर बहादुरों के रजवाडों की गाथा से ओत–प्रोत है। चाहे आमेर, जयपुर, जोधपुर हो या उदयपुर, करौली, फतेहपुर सीकरी चाहे राजा हम्मीर का राज सवाई माधोपुर हो सर्वत्र वीरोचित काव्य लिखे गये हैं तथा इनकी कथाएँ महाराणा प्रताप, राजा हम्मीर, मानसिंह, जयसिंह शेखावाटी के महाराव शेखा जी एवं उनके वंशजों का शाशित प्रदेश महान् है–

खांटी वीरां साग सू लाह जसरे लाह।
दादी घर दुश्मन दव्हाँ शेखावाटी वाह।।[2]

दो–दो जोगिनी के बीच अकेलो लांगुरिया।
एक जोगिनी यों कहे रे हंसला लादे मोय।
और एक जोगिनी यों कहें रे कहुला दे मोय।
दो–दो जोगिनी के बीच अकेला लाँगुरिया।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 32
2. कल्याण सिंह रसकलश सं. 2005 पृ. 80 की

पूर्वांचल के भजनों में चन्द्रसखी के भजन विशेष रूप से लोकप्रिय है। श्री कृष्ण की विविध लीलाएँ लोक साहित्य के भाग हैं।

दानशीलता :- वैसे तो सम्पूर्ण राजस्थान की लोक गाथाएँ वीरोचित हैं। मारवाड़, मेवाड़, हाडौती व पूर्वांचल की वीरता से ओत-प्रोत रचनाएँ भरी पड़ी है। वीरों की उदारता, त्याग, धैर्य एवं दान वीरता की रचनाओं के उदारहण इतिहास में भरे पड़े हैं। ये वीर शरीर की दृष्टि से 'वज्रादपि कठोर' और हृदय से 'कुसुमादपि कोमलम्' है। एक बार दान करने के बाद तो पृथ्वी पर भी पैर रखना नहीं चाहते। 'निहालदे-सुलतान' लोकगाथा में सुलतान की दानशीलता इस कथन से स्पष्ट है- 'तुम्हारा जैसा दाता और परहितकारी और कौन है। वह सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है। नरपर गढ़ में वह प्रतिदिन सवालाख का दान देता है। ठगों की सहायतार्थ अश्व के जडाऊ झब्बे देने को प्रस्तुत हो जाता है। उसका वर्णन है—

''सभा में बैठ चू कूं ना दान।''[1]

सुलतान अपने विषय में कहता है-

''नाडा का जती, हाथ का सती मनै जाणिये।''[2]

जनता के इस कथन में सुलतान की दानवीरता झलकती है-

''मंगत की क्षाप्या बे ताबांगढ़ शहर का।
ज्याणौ ऐसा यो दाताखी कोई दुनिया में है नांय।।''[3]

दानवीर (भामाशाह) व्यक्तियों के पास अरबों खरबों की सम्पति व खजाने होते हैं। वे धन का संचय न करके परोपकार में खर्च करते हैं। दूसरी और कंजूस सदैव

---

1. उषा कस्तुरिया : राजस्थानी वीरगाथात्मक पवाडे संरचना एवं लोक परम्परा, प्र.सं. 1989 पृ. 175
2. वही, पृ. 176
3. वही, पृ. 176

संचित करने पर तत्पर रहते हैं और जीवन भर माया की आसक्ति में फँस कर उस परमपिता परमेश्वर को भूल जाते हैं जिसने यह मिट्टी का शरीर बनाया है।

राजस्थान की मरूधरा के दान का इतिहास साक्षी है। अपनी जुबान से कही हुई बात और दान की हुई वस्तु वापस न लेना क्षत्रीय वंश की परम्परा रही है। दान देने की कथाएँ पुराणों, वेद-वेदांगों, रामायण, महाभारत में सुनने को मिलती है। करौली के राजा के दान के चर्चे इतिहास प्रसिद्ध हैं। हम्मीर राजा की वीरता व उदारता के चर्चे इतिहास में अंकित हैं। पूर्वी राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, हिण्डौन, गंगापुर, माधोपुर व करौली क्षेत्र के राजाओं ने पर्याप्त दानपुण्य किया है। माता व मातृभूमि की रक्षा के लिए शहीद हुए वीरों ने मातृभूमि की रक्षा के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया। देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत सेनानियों ने मातृ भक्ति, देश भक्ति व कुल की रीति का परिचय दिया है।

पतिव्रता नारियाँ राजस्थान की गौरव रहीं हैं। परिनिष्ठा व वचनदृढ़ता नारी की चहु और बिखरी हुई है। राजा हरिश्च के ख्याल में पतिव्रता रानी 'तारामती' पति के वचन रक्षार्थ राज-पाट, धन-धान्य आदि सर्वस्व त्याग कर पति के साथ वन में चली जाती है। पति के सत्यव्रत के ध्यान में रखते हुए वेश्या के हाथों पुत्र वियोग सहती हुई बिक जाती है। राजा मेघराज की पत्नी 'पद्मावती' भी अपने पति के सत्य धर्म की रक्षा हेतु इकलौते पुत्र रतन कँवर को आरे से चीर देती है। नारी धर्म की रक्षार्थ पूर्वांचल की स्त्री जाति के शौर्य का अदम्य साहस भी अनुकरणीय है।

भारतीय नारी का आदर्श सदैव पति परमेश्वर मानकर सर्वस्व समर्पित व पति को अमृत्व प्रदान कराने के लिए दृढ़ संकल्प है। नानू लाल राणा कृत 'ढोल मखण ख्याल' में ढोला व मरणजी के संवादों में सत् दिखाने का प्रयत्न है-

''सांची सुण प्यारी बुरख की,
पीवां जद पाणी सत् थारो दिखला घटजी

कह कवि नानू लाल ढोला यूँ सुणावै साँच।
येता कर काम नार मोंकू जल प्रियावोंजो।।[1]

होली हिन्दू धर्म का प्रमुख त्यौहार है। इसमें जाति, धर्म, लिंग के भेद-भावों से ऊपर उठकर प्रेम की महानता व सामंजस्य की झलक स्पष्ट है। राधा कृष्ण की होली विश्व प्रसिद्ध है, जो कि पूर्वी राजस्थान अचंल को भी प्रभावित करती है। ब्रज की होली का उदाहरण राधा सखियों का आह्वान करते हुए कहती है-

आ जईयो श्याम बरसाने गाँव,
तोय होरी खूब खिलाइ दूँगी,
तोय रंग में खूब रंगाय दऊंगी,
काना यो मत जाने भोरी,
हम बरसाने की गोरी हैं।
कर सोलह शृंगार श्याम
तोय नर से नारि बनाय दऊँगी,
तोय लहंगा चोली पहनाऊँगी
तेरे माते बिन्दियाँ लगाऊँगी
तोय होरी खूब खिलायदऊँगी।[2]
× × ×
चलो चलो सखी खेले होरी,
गिरि खोरी वर जोरी।
होली बरस दिना में आवेगी
नैक ओड़ी डौड़ी रहियो।

प्रेम की महानता में लोक मर्यादा का अवरोध है-

---

1. सं. मदन लाल प्रधान, बसंत लाल शर्मा, मरूभारती जनवरी 1996 वर्ष अंग 43, प्रकाशक राजस्थानी शोध विभाग बिरला एज्यूकेशनल ट्रस्ट पिलानी, पृ. 109
2. मुरारीलाल गुप्ता : मदनमोहनजी मंदिर में (होली के समय) गाये जाने वाला गीत : साक्षात्कार द्वारा।

मेरी अंखियन बीच गुलाल रसिया जिनडारो
हा हा करत तेरे पीया परत हो नन्द महर के लाल।।[1]

प्रेम की महानता का उदाहरण रसिया में तन्मयता प्रकट करता है।

इकली घेरी वन में पाय श्याम तैने कैसी ठानी रें।
श्याम मोय वृन्दावन जानो, लौटके बरसाने आनो।
मेरी कर जोरे की मानो।
जो मोय होय अबेर, लडे घर ननद जिठानी रे।।

नव दुर्गा की भक्ति में प्रेम दिखाई देता है। देवी कैला मैय्या के विविध रूपों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत है जिससे पूर्वांचल का साहित्य प्रेम पूर्वक कथानकों से ओत-प्रोत है। राजस्थानी ख्याल परम्परा में प्रेम की महत्ता प्रकट हुई है। राजस्थानी सूफी सिद्धान्तों पर आधारित है। अलख निरंजन की साधना करते हैं। संसार नाशवान है। आत्मा-परमात्मा का मिलन ही प्रमुख है। इस संसार में अवतारी पुरुष आये और चले गये मृत्यु लोक में जो भी आया है उसे जाना निश्चित व शाश्वत है। मानव जीवन ईश्वर के अधीन है। ''अनहोनी होनी नहीं, अरू होने हो सो होय। भाग्यवाद और कर्मवाद का परस्पर सम्बन्ध है। निराशावादी विचारधारा को समाप्त करने के लिए भाग्यवाद का सहारा लिया जाता है। कर्म के फल के सन्दर्भ में गीता में स्पष्ट लिखा है। कर्मण्याधिकारस्ते या फलेषु कदाचन्। अत: दुराचरण, दुर्बुद्धि, व्यसन, कपट लालच आदि बुराई के प्रतीक हैं। सुन्दरकाण्ड का दोहा इस तथ्य को स्पष्ट करता है—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुवीर पद, भजहु भजहिं जेहि संत।।

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह सब नरक के रास्ते हैं। श्री राम का स्मरण ही ऐसा है जो संसार में प्रेमपूर्वक जीवन जीनें की राह दिखाता है।

---

1. मुरारीलाल गुप्ता : मदनमोहनजी मंदिर में (होली के समय) गाये जाने वाला गीत : साक्षात्कार द्वारा।

प्रेम की महत्ता :- प्रकृति के जीवों में मानव को सबसे बुद्धिमान् माना है क्योंकि वह विवेक अविवेक का अन्तर स्पष्ट कर निर्णय लेने में सक्षम है। प्रेम और शत्रुता मानवीय स्वभाविक प्रवृत्ति है। प्रेम में मनमुटाव हो जाता है वैमनस्य नहीं जो व्यक्ति प्रेम के महत्त्व को समक्ष जाता है वही विद्वान् है। केवल पुस्तकीय ज्ञान ही सर्वोपरी नहीं। कबीरदास जी ने कहा भी है कि -

''पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढै सो पण्डित होय।।'' — कबीर

इस प्रकार सवाई माधोपुर व करौली के अंचल व लोक साहित्य में प्रेम की एक निष्ठा उजागर कई रूपों में होती है। दैहिक, मानसिक, सात्विक, वासनात्मक, स्वार्थ से प्रेम। पूर्वांचल की हरी-भरी भूमि पर भक्ति नीति और शृंगार तीनों में अनूठा विहंगम दृश्य देखने को मिलता है। वह ब्रजभाषा मिश्रित बोली रहन-सहन एवं आचार विचार 'अतिथिदेवाभव' की महिमा प्रमुख है। सावन के गीतों में नवोढ्या पीहर में होती है तो विरह सताता है विरह की वेदना चातक पक्षी की तरह व्याकुल होकर प्रेम की वेदना व्यक्त करती है। करूण हृदय के उदगार अभिव्यक्त हुए है। उदाहरण दर्शनीय है—

''अरी बहना हमें न सुहाय,
पिया बिनु सूना लगत है।
तीज मनामें घर कामिनी,
अरी बहना झूलें बगीचा में जाय।''[1]

हरियाली तीज, होली, दीपावली, दौज, तीज पर गाये जाने वाले गीतों में प्रेम की महत्ता स्पष्ट परिलक्षित है। फागुन मास के गीतों का वर्णन देखें-

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 17

''ब्रज को दूल्हो रंग भरयो
ऐसे होरी खेलत डोले, हाथ लकुट सिर मुकुट धारयो।
गाढ़े रंग रग्चों ब्रज सगरो, फाग खेलको अमल भरच्चो,
वृन्दावन हित नित सुख बरसे, तान मान लै मनुज हरच्चो।।''

संसार की नश्वरता :– हिन्दी साहित्य की भाँति लोक साहित्य में भी संसार की नश्वरता को लेकर अंचल में प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ है। भारतीय संस्कति में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है। मृत्यु का समय शोक व अवसाद से पूर्ण है। वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर इतना दु:ख नहीं होता जितना कि युवा व्यक्ति की मृत्यु पर होता है। कई जगहों पर वृद्ध की मृत्यु शय्या गाजे–बाजे से निकलती है किन्तु पूर्वांचल के मृत्यु गीत अत्यन्त विरल हैं–

अरी बहना हमें न सुहाय,
पिया बिन सूनो लगत है।
तीजे मनामें घर कामिनी,
अरी बहना झूलें बगीचा में जाय।
अरी मौकू पति की याद रही सताय।

मेढ़ बंदी का उदाहरण देखिये–

रोक बुरी बातों को रेमन, ले राम नाम का सुमिरन कर,
रख भगवत की याद, नहीं तो मरेगो यों ही रे खर।
रहा ज्ञान के वेग पकड़, चौरासी लाख से रे बाहर।
रक्षपाल भगवान् भक्त के, रखले दिल में दो अक्षर।

इस प्रकार सवाई माधोपुर, करौली जिले में संसार की नश्वरता को लेकर विविध काव्य सृजन हुआ, जो कि समाज के लिए प्रेरणास्पद रहा है। 'अतिथिदेवभव' की परम्परा राजस्थान की नारी की सेवा, त्याग, परोपकार आदि संस्कारों को प्रस्तुत

करती है। तानामारने पर सत्कार पूर्ण उत्तर देना या गाली देना भी कहते हैं। पाबूजी के पावडों में भी यह देखने को मिलता है। चरित्रवान होना नारी जाति का आभूषण है। शेखावाटी सीकर स्थित जीणमाता के माता–पिता की मृत्यु पर्यन्त भाई हर्ष के संरक्षण में बड़ी हुई। भौजाई से मतभेद हो गये, जीण के चरित्र पर संदेह प्रकट किया और विरक्ति हो गई।

विवेक की श्रेष्ठता करौली, सवाईमाधोपुर क्षेत्र की मधुर ब्रज भाषा आगरा, भरतपुर, धौलपुर क्षेत्र की भाषा व बोली का प्रभाव स्पष्ट है। पराविद्या का महत्त्व उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान के महत्त्व को प्रकट किया है। ईशावास्योपनिषद में लिखा है–

विद्या चाविद्यां च यस्त द्वेदोमयं सह।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्या भृत मश्नुते।।[1]

पूर्वांचल के ज्ञानी, मानी, बुद्धि जीवी वर्ग ने उपनिषदों का अनुसरण कर समाज के सभी वर्गों को सदमार्ग की ओर प्रेरित किया है। निष्काम कर्म भगवान् कृष्ण के प्रवचनों का गाम्भीर्य अंकित है। 'कर्मण्याधिकारेषु माफलेषु कदाचन'। चिंता की अपेक्षा चिंतन पर बल दिया है। ईश्वर द्वारा सद्बुद्धि देने की नवीन राह की और उन्मुख किया है। आत्म चिंतन के लिए कहा है–

''आत्मचिंतना कर सदा पाप करो सब दूर।
निर्मल वध निपजे तथा पावे सब सुख भरपूर।।''[2]

पुराने समय में एक डुकरियाई। वाने एक मैना पार रखी। बू डुकरिया वा मैना ए बड़े प्यार तै रखो करे ई वा डुकरिया को का काम जो कि वु मुसाफिरन पानी पिलावो करै ई। इस प्रकार की मधुर प्राजंल भाषा में धर्म, राजनीति, कर्म, नारी शक्ति की

---

1. स. मदन लाल प्रधान, बसंत लाल शर्मा : मरूभारती स्वणजयन्ती अंक 2002 जनवरी, 2002, दिसम्बर, 2002 वर्ष 50 अंक 1–4 पृ. 44
2. स. किरण चन्द नाहटा : राजस्थानी नीतिरा इहा सं. 1996 पृ. 14

महत्ता को पूर्वांचल के लोक जीवन में घटित घटनाओं के रूप में व्यक्त किया है। इस प्रकार पूर्वांचल की लोक कथाओं, भाषा, संस्कृति, परिवेश जनित घटनाओं को बोलचाल की मधुरभाषा का प्रयोग कर लोक साहित्य, लोकनृत्य, लोकवाद्य, लोक संस्कृति, लोक संगीत आदि संदर्भों से जोड़कर मरूधरा से लेकर पांचना बाँध की हरी भरी धरोहर को सुशोभित किया है।

❑

अध्याय–पंचम

करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के लोक साहित्य में चित्रित समाज

समाज और साहित्य का परस्पर गहन सम्बन्ध होता है। दोनों ही परस्पर युग जीवन की चेतना का सजीव आलेखन है। वास्तव में ही समाज और साहित्य एक–दूसरे के पूरक है। एक सजग साहित्यकार को समाज की धाराओं से अलग नहीं वरन् एक साथ रहना होगा। वैदिक कालीन सभ्यता का प्रभाव राजस्थानी साहित्य पुरुष रणक्षेत्र में जुझारू बनकर अपना करवाल जीवी व्यक्तित्व बनवाता है। पूर्व मध्यकाल में भक्त रूप दर्शाता है तथा उत्तर मध्यकाल में सामंती विलासी संस्कृति की रूग्ण शृंगारिकता में आपादमस्तक निमज्जित होकर भी जब वर्तमान युग बोध पुर्नजागरण की रणभेरी फूँकता है, तो जागृत होकर नवीन युग की नूतन भाव बोधानुरूप अपनी कर्मण्य मनोवृत्ति का परिचय देता है। साहित्य और समाज के अकाट्य सम्बन्धों का यह सजीव और जीवंत प्रमाण है।[1]

राजस्थान का पूर्वांचल करौली एवं सवाई माधोपुर क्षेत्र का साहित्य लोक जीवन का रत्नागर है। क्षेत्रीय बोली की अमृतवाणी सर्वजन को प्रिय है। डांग क्षेत्र में गंगापुर करौली व सवाई माधोपुर क्षेत्र विशिष्ट संभाग है। इन सामाजिक राजनीतिक एवं भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान प्रांत के दोनों जिले सम्पन्न है। अन्य जिलों की

---

1. नन्दलाल कल्ला : राजस्थानी संस्कृति और लोक साहित्य द्वितीय संस्करण 2000 पृ.सं. 2

अपेक्षा लोक साहित्य कम जरूर लिखा है किन्तु प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी है। साहित्य में क्षेत्रीय संस्कृति की विविध छटाएँ आलोकित हुई हैं।

लोक साहित्य ऐसी विद्या है जो लोकगीत के आधार पर ही चलती है। लोकगीतों की काव्यात्मक अनुभूति का कारण परिवार की मंगल स्तुति रागात्मकता से ओत-प्रोत है। पूर्वांचल के लोकगीतों का वही सम्बन्ध है, जो कि धरती और पौधों का होता है। भूमि की विशाल गोद में जिस प्रकार पौधे छोटे अवयव को लेकर सुरक्षित एवं सुन्दर अनुभव करते हैं। जैसी ऋतु होगी पौधे को गरिमा भी वैसी ही होगी। इसी प्रकार समाज के अनुरूप गीत का उद्‌भव होगा। समाज में रागात्मक सम्बन्धों का जितना वैभव ठीक होगा, उतनी ही सुन्दर अभिव्यक्तियाँ।[1]

लोकगीत जहाँ उत्पन्न होते हैं वह समाज ही हैं, किन्तु धरती जगह-जगह अलग रूपों में दृष्टिगत होती है। कहीं काली, कहीं भूरी, कहीं रेतीली, कहीं दोमट मिट्‌टी है। उसी प्रकार समाज के विविध रूपों की झलक सामाजिक सन्दर्भों को प्रस्तुत करती है। पशुपक्षी बोलते हैं। पवन संदेश ले जाता है। मेद्य विरहणी की याद दिलाता है। करौली, सवाई माधोपुर क्षेत्र का जन-जीवन सामान्य है। आय की दृष्टि से तीनों श्रेणियों के लोग रहते हैं। अधिकांश परिवेश ग्रामीण जन-जीवन से अभिप्रेरित है। व्यवसाय कृषि व पशु-पालन हेतु तत्पर है। मध्यमवर्गीय उच्चवर्गीय तथा निम्नवर्गीय लोगों की संख्या गिनी चुनी है और वे अधिकतर बाहर रहते हैं। इसलिए यहाँ के रहन-सहन सामान्य ही अंकित किया जाता है। यहाँ आय के साधनों, व्यापार, उद्योग-धन्धों, कारखानों, मिल आदि की कमी हैं।[2]

पूर्वांचल का परिवेश संघर्षमय है। **देवेन्द्र सत्यार्थी** के अनुसार 'इसमें गाँव का जीवन गाता है, रोता है, हँसता है, खिल्ली उडाता है, मुँह चिढ़ाता है, व्यंग्य कसता

---

1. स. विजयदान देथा : मीठा वीरां रौ बोलणौ, पृ. 8
2. उदयवीर शर्मा शेखावाटी के साहित्य का इतिहास, पृ. 10

है, प्रेम करता है, स्वछन्द विहार करता है। रूप दर्शन पर रीझता और कटाक्ष करता है, ऋतु पर्वों पर आनन्द करता है। अपने दु:खों की शिकायत करता है। स्थानीय महाजन, मुखिया जमीदार लगानकर, बेगार, रोग सूखा, बाढ़, टिड्डी आदि कष्टों पर दाँत पीसता और हाथ मलता है। घर खेत खलिहान पर हर समय के कार्य को गीतों की वाणी देता है। भूत चूडैलों से लेकर देवी देवताओं की मनोती मानता है। रिमझिम वर्षा में जीवन रस का आह्वान करता है। या फाल्गुन में 'निबुओं की कपट' का रस लेना चाहता है तो साथ ही सामयिक समस्याओं जातीय भावनाओं, जन आन्दोलनों से उद्वेलित भी होता है।[1] निम्नलिखित तथ्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर निम्न रूपों को उल्लेखित किया है–

1. संयुक्त परिवार :– पूर्वांचल ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय समाज की विशिष्टता है। करौली सवाई माधोपुर के लोक साहित्य में संयुक्त परिवार का चित्रण हुआ है। जिसमें दादा–दादी, माता–पिता, चाचा–चाची, ताई–ताऊ उनके पुत्र–पुत्रियाँ, पोते, नाती अर्थात् तीन पीढ़ियों तक मिलकर संयुक्त परिवार में रहते थे। सम्पति पर सामूहिक अधिकार हुआ करता था। परिवार के सबसे वृद्ध व्यक्ति के निर्देशन से पारिवारिक कार्यों की क्रियान्विति होती थी। राजस्थान की यह कहावत सोटका सही है 'बँधी भारी लाख की खुली तो खाक़ की।' अर्थात् परस्पर मिलकर भाइयों का एक साथ रहना परिवार की प्रतिष्ठा होती थी।

संयुक्त परिवारों का संचालन करने में गृहप्रमुख की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कालान्तर में सामाजिक मर्यादाओं का विघटन होता रहता है, किन्तु सामाजिक कार्यों में संगठनात्मक ऊर्जा का प्रभाव रहता था। संयुक्त परिवार में प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य निर्वाह की प्रतिक्रिया अपने आप चलती रहती थी।

---

1. मनोहर शर्मा राजस्थानी लोक साहित्य 1982 प्रथम संस्करण, पृ. 63

2. एकल परिवार :- पाश्चात्य सभ्यता के आये प्रभाव ने संयुक्त परिवारों को तोड़कर भौतिकवादी, यांत्रिकवादी आधुनिक वैज्ञानिकता ने संकुचित मनोवृत्ति बना दी है। माता-पिता का सम्मान न करने की अपेक्षा विविध प्रकार के झगडे करके एकल परिवार की व्यवस्था प्रारंभ हुई। छोटी-छोटी बातों पर कलह होता है। 'राई से बाई भली' की उक्ति को मानकर अलग रहना ही ठीक होगा। करौली सवाई माधोपुर क्षेत्र सम्पूर्ण कृषि पर आश्रित है। 21 वीं शदी में छोटा परिवार सुखी परिवार की धारणा को मानकर छोटा परिवार उन्नति कर सकता है। लालन-पालन आसानी से हो सकता है। मानवीय धारणा है कि भूमण्डलीकरण के दौर में छोटा परिवार होने से बच्चों को उच्चा शिक्षा दिलाकर उज्ज्वल भविष्य की कामना करना प्रमुख ध्येय रहा है।

3. पुत्र प्राप्ति कामना :- पिता को पुत्र प्राप्ति होने पर वह गौरवान्वित महसूस करता हैं। पूर्वांचल की देवी कैला मय्या व गणेश जी, महावीर जी, नरसिंह भगवान् से पुत्र प्राप्ति हेतु भक्तगण परिक्रमा देकर उत्तम गुणवान पुत्र की कामना हेतु भक्ति भाव में लीन रहते हैं। उस पुत्र के लिए माँ नौ माह दु:ख पाती है। पुत्र कुपुत्र बन जाता है तो माता को अपने दूध पर ग्लानि होती है।

4. माता-पिता का वात्सल्य पुत्री के लिए धरोहर सदृश्य :- माता-पिता का प्यार ही लड़की के लिए थाती स्वरूप होती है। जिसके छिन जाने मात्र से ही पुत्री का जीवन नारकीय हो जाता है। 'जीण माता' अपने भार्ष हर्ष के लिए। 'कैला माता भाई कृष्ण के प्राणों की रक्षार्थ स्वयं आसमान में उड जाती है। ऐसी पूर्वांचल की बहुत-सी दन्त्यकथाएँ होती हैं।

5. भाई-बहिनों का प्रेम :- पर्वाचंल राजस्थान की ग्रामीण संस्कृति में भाई-बहिन का रिश्ता विशुद्ध प्रेम का होता है तथा बहिन की रक्षार्थ भाई उदत्त रहता है। रक्षाबन्धन त्यौंहार, भैया दोज आदि त्यौहार इसी सत्य को प्रमाणित करता है।

6. पति–पत्नी सम्बन्ध :– पूर्वी राजस्थान की गौरवशाली परम्परा में गृहस्थी जीवन की बागडोर परिवार की धुरी के रूप में पति–पत्नी के सम्बन्धों की मधुरता देवतुल्य पति मानने में त्याग, बलिदान व समर्पण की भावना नारी त्याग का घोतक है। नारी का त्याग व समर्पण कुल को तार देता है। नारी सौत को कभी सहन नहीं कर सकती। इसलिए कालिदास ने भी 'कुमार संभव' में उमा को यही आशीर्वाद दिलवाया है। 'अखण्डित प्रेम लभस्य पत्यु:' अर्थात् सुहाग की लम्बी उम्र की कामना करना। पूर्वांचल के लोक गीतों में सावन के गीतों में प्रेम का उदगार प्रकट करती है।

''सावन आयो रे पिया।
कोई आई रे हरियाली री तीज।
हिंडौले गढा दे चम्पा बाग में जी।
ऐजी कोई हाँ हम्बे, कोई जी।।''[1]

नवविवाहिता झूला झूलती हुई, अपना संदेश प्रेषित करती है—

उड़ उड़ जा म्हारे कारे कागजा
जब पिबजी म्हारे घर आवै।

पति के अलावा सास, ससुर, देवर, ननद, भौजाई, नाती, पोता–पोती सभी के प्रति वात्सल्य, उदारता व समर्पण की भावनाओं से ओत–प्रोत नारी में त्याग की भावना होती है। पूर्वांचल में लांगुरियाओं के माध्यम से गीतों की पंक्तिया आदर्श व मर्यादा का पाठ पढ़ाती हैं।

सास बहु के रिश्ते को मधुर भावों की झलक पूर्वांचल के साहित्य में बखूबी देखा गया है। सास बहु के आने पर प्रसन्न होती है। बहु ज्यों ही सास के चरण छूती है त्यों ही उसकी परीक्षा हो जाती है। अच्छी बहु अपने परिवार की पहचान बन जाती है। माँ आशीर्वाद देती है '**शीली सपूती**' हैं। अर्थात् शील सम्पन्न पुत्रवती होवे। सास बहु का पुत्रीवत रखने पर भी इस पद को बदनाम किया जाता है। 'सास दारी न बऊ

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश राजस्थान के पूर्वाचंल के लोकगीत, पृ. 14

बिचारी'[1] का लोक साहित्य में वर्णन देखा गया है। सास बहु का विवादित विषय सदैव से ही तथा प्रत्येक समाज व वर्ग में व्याप्त है। पत्नी पति पर अधिकार चाहती है किन्तु माँ अपने पुत्र पर पत्नी से अधिक अधिकार पूर्ण कह सकती है। पूर्वांचल राजस्थानी समाज में एकाकी परिवार सास–बहु के झगड़े अथवा संयुक्त परिवार में कटुता का भाव देखने को मिलता है तो कहा जाता है।

ऊँचे चढ़कर देखो घर–घर यो ही लेखो।[2]

अर्थात् समाज के सभी वर्गों में घरों की स्थिति ऐसी ही कर्कश नारी, कपटी मित्र, चोर पुत्र मानव के लिए अशांति कारक है–

''नारी करकसा कहर घोर।
हाकिम हैक खाय अंकौर।
कपटी मित्र, पुत्र है चोर।
इन सबरे ने को जाहिरे बोर।।''[3]

पुत्री, पत्नी व माँ तीनों रिश्तों में मधुरता–कटुता दोनों रहती हैं। पुत्री व पुत्र का लिंगभेद आज के युग में बढ़ता जा रहा है तथा सामाजिक कुरीतियों के कारण स्त्री रक्षार्थ पुत्र–पिता के बाद पति को दायित्व का निर्वाह करना होता है। विवाहोपरांत मृत्यु के बाद दूसरी पत्नी को 'लाड़ी' कहकर सम्बोधित किया जाता है तथा उसे उतना ही सम्मान दिया जाता है जितना पहले वाली पत्नी को। विधवा जीवन तो नारकीय जीवन होता है। पूर्वांचल में विधवा जीवन को अभिशाप तुल्य माना है। हिन्दू संस्कृति में मांगलिक कार्यों में कोई जगह नहीं मिलती है। कोई भी शृंगार करती है तो उस पर अंगुलियों के प्रश्न चिह्न खड़े हो जाते हैं। कालांतर में शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने स्त्री

---

1. एक महिला से साक्षात्कार (मूली देवी करौली)
2. कन्हैयालाल सहल : राजस्थानी कहावतें, पृ. 72
3. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वांचल का लोक साहित्य पृ. 174

को जीवन जीने की नई उम्मीदे सरकारी, अर्द्धसरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा सुखी जीवन निर्वाह करने के लिए कई कल्याणकारी योजनाओं का लाभ दिया जा रहा है। पूर्वांचल संस्कृति की अक्षुण्ण त्यागमय परम्परा का निर्वाह किया जा रहा है। शिक्षा के प्रसार के कारण पूर्वांचल की महिलाओं ने विभिन्न राजनैतिक पदों को सुशोभित किया है।

अन्य धारणाएँ :- नारी सम्बन्धी पूर्वांचल की विविध धारणाएँ विद्यमान हैं। जर, जोरू और जमीन पर हक हटने से दूसरों की हो जाती है। स्त्रियों की दयनीय अवस्था पर तरस खाकर लोककवि गा उठता है।

''भारत में अबलान की हो रही मिट्टी ख्वार।
होय अनादर कुटुम्ब में पावें नहीं सत्कार।।''

औरत के पेट में बच्चा समा जाता है किन्तु बात नहीं पचती। इस प्रकार नारी के सदलक्षणों, सदव्यवहार अथवा कुलक्षणों पर निर्भर करता है कि वह घर की उन्नति करेगी अथवा अवनति। क्योंकि नारी परिवार की धुरी होती हैं। पूर्वांचल करौली व सवाई माधोपुर क्षेत्र की स्त्रियाँ त्याग, तपस्वी, पति परायण व सति सावित्री अधिकांश है।

संस्कार

संस्कार भारतीय हिन्दू संस्कृति की अनुपम विशेषता है। सनातन धर्म शास्त्रों में जीवन को कर्म आश्रम की तरह मानव जीवन शरीर व मन के विकास और शुद्धिकरण की आवश्यकता पर बल दिया है। सोलह संस्कारों का वर्णन वेद पुराणों में भी देखा गया है। हमारी संस्कृति में प्रत्येक मानव को संस्कारों में बाँधा गया है। गर्भधान से अन्त्येष्टी संस्कार तक माना है। इन संस्कारों का निम्नानुसार वर्णन है।

1. गर्भाधान - हिन्दू संस्कृति के सोलह संस्कारों में प्रथम एवं महत्त्वपूर्ण संस्कार है। विवाहोपरांत पत्नी गर्भधारण करती है। प्रस्तुत संस्कार का प्रचलन वैदिक

काल में ही हो गया।[1] इसका उद्देश्य स्वस्थ सुशील व सुन्दर गुणवान संतति प्राप्ति। लोकगीतों में राजस्थानी संस्कृति में हाकरिया भी कहते हैं। पूर्वांचल में गर्भवती महिला को दो जीवा भी कहते हैं। इस समय में उसे खट्टी वस्तुएँ अच्छी लगती हैं। उसे घेवर, नीबू, केर, मतीरा, फलियाँ, अचार, बेर आदि खट्टी वस्तुएँ खाने की इच्छा होती हैं। जिसे 'हंसपूरणी'[2] कहा जाता है। भाँति-भाँति की खट्टी-मीठी वस्तुएँ लाने के लिए वह परिवार के सदस्यों को निवेदन करती है।

2. पुंसवन :- गर्भ के तीसरे माह में किया जाने वाला संस्कार 'पुंसवन संस्कार' कहलाता है। सन्तानोत्पति के निमित्त निष्पन्न किये जाने वाला दूसरा संस्कार है। जिससे पुत्र प्रधान करने वाले देवता को प्रसन्न किया जाता है। संस्कार प्रकाश में पुंसवन के संदर्भ में लिखा हैं। ''पुमान प्रसूयते येन कर्मणा तत पुनसवनमीरिता''[3] यह संस्कार पूर्वी राजस्थान की ग्रामीण संस्कृति का महत्त्वपूर्ण संस्कार है, जो आज भी प्रचलित है।

3. सीमन्तोन्नयन संस्कार :- हिन्दू शास्त्रकारों के अनुसार सीमंत संस्कार गर्भ के चतुर्थ मास में होता है। इस समय केशों को ऊपर किया जाता है। ऊपरी शक्तियों के भय निवारणार्थ यह संस्कार किया जाता है। प्रजापति को आहूति देते हैं तथा मातृ पूजा होती है। वेदोक्तों द्वारा पति-पत्नी के गर्भ की रक्षार्थ ईश्वरीय कृपा के लिएआराधना करता था। ''यह वृक्ष ऊर्जस्वी है, तुम भी ऊर्जस्वती होओ।''[4]

4. गोदभराई (अष्टमी पूजा) :- गर्भ के सातवें मास में गोदभराई होती है, कहीं-कहीं आठवाँ भी पूजा जाता है जिसमें पीहर पक्ष से मिष्ठान एवं परिधान भेजने

---

1. हरि शंकर शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार सं. 2007, पृ. 271
2. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य द्वि.सं. 2000 पृ. 63
3. हरि शंकर शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 271
4. हरि शंकार शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 271

की परिपाटी पूर्वी राजस्थान में प्रचलित है। उत्तम गुणवान सन्तान होने की मंगल कामना हेतु सभी सरीक होकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

5. जन्मोत्सव :- चौरासी लाख यौनियाँ पार कर श्रेष्ठयोनी में जन्म लेना श्रेष्ठ माना गया है। राजस्थान प्रदेश व पूर्वी क्षेत्र में प्रथम संतान पीहर उत्पन्न कराने की रिवाज है। सोहर के गीत गाये जाते हैं। तुलसीदास ने रामचरित मानस में सोहर के लिए मंगल शब्द का प्रयोग किया है-

दिन आज खुशी का आया
जच्चा ने बच्चा जाया है।
जच्चा री दाई आवेगी
वो ललन जनाई नेग मांगेगी।
× × ×
गावहिं मंगल मंजुलवानी।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।।

पूर्वांचल में गाये जाने वाले इन गीतों में करूण रस की प्रधानता होती है। एक नारी प्रसव पीड़ा के कारण अत्यन्त व्यथित है, वह ऐसी विपन्नावस्था में पति का स्मरण करती है-

'घमरै-घमरै आबे पीर रे, सईयाय कोई बुलाय लाय' वेदना की तीव्रता बढ़ती जाती है, उसका चित्रण मण्डरा पूजने वाले दिन इस लोकगीत द्वारा दिया जाता है।

अलिया डोरू, डलिया डोरू, फूल बखेरू।
मारू बिछुअन की मार, पुकार तेरी कौन सुनेगो।।

वर्तमान परिवेश में समय एवं परिस्थिति के बदलाव के कारण चिकित्सालयों में प्रसव की प्रक्रिया ग्रामीण परिवेश में भी आधुनिकी विचारधाराओं का प्रभाव है। पुत्रोत्पन्न होने पर डांग (करौली सवाई माधोपुर), हाडौती व मेवाती क्षेत्र में विशेष

रूप से थाली बजाई जाती है। किन्तु कन्या जन्म से लिंगभेद कर अभिशाप जनक मानते हैं। पुत्र के लिए गुड बाँटते हैं। सभ्य घरों में लक्ष्मी की उपमा लड़की से दी जाती हैं। भूल से नाम आ जाने पर माताएँ एक दिन का व्रत रखती हैं। उसको बाई अथवा 'गुड्डी' कहकर पुकारा जाता है।[1] इस अवसर पर 'जच्चा' और बंधाये गाने की परम्परा है। पुत्रोत्पन्न पर्यन्त बूआ 'बधाया' लेकर आती है। बालक के लिए वस्त्र, खिलोना आदि लेकर आती है और बूआ को सम्मान पूर्वक (माडंला) पूजन का नेग दिया जाता है। जच्चा को आटे का चून व गूंद मिलाकर अजवायन सौंठ आदि विशेष रूप से खिलाये जाते हैं, जिससे वह पुन: उसी रूप को ग्रहण कर सके।

दोनों बहिने बंधायो ले आयी
बड़ी तो लायी चूना खनवारी
छोटी लाई झंगा टोपी।

यशोदा ने कृष्ण को जन्म दिया है, उस अवसर पर नाइन द्वारा नगर को बुलाया दिया जा रहा है–

अरी माई जशोदा ने जाये है लाल, बधाई रघुनन्दन की।
बोलो री नाइन की बिटिया, नगर बुलावा देवो।
सब सब से पालागन कहियो, नैक बिरन की ओट। बधाई रघु.।।
बाबानन्द वजाट कू निकले, सुआ, सालू लै जैसी जाके मन में।
आके ओढ़ घर जाओ, बधाई रघुनन्दन की
चन्द्र सखी मोहन का झगड़ा, होलर जीओ तेरी लाख बरस।
बन्दरवान बँधी दरवाजे, नन्द बाबा की पौली मैलन में।

× × ×

दिन आज खुशी का आया है जच्चा ने बच्चा जाया है।
जच्चा की दायी आवेगी, वो ललन जनाई नेग मांगेगी

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम राजस्थानी लोक साहित्य द्वितीय सं. 2000 पृ. 61

उनका भी नेग चुका देना नहीं झगड़ा हमसे डालेगी,
दिन आज खुशी का आया है जच्चा ने बच्चा जाया है।

6. जातकर्म संस्कार :– यह संस्कार वर्तमान में समाप्त प्राय: हो चुका है।

7. सूरजपूजा :– पूर्वांचल राजस्थान में नवजात शिशु के जन्मोपरांत पाँचवे या छठवें दिन 'सूरजपूजा' या सूरज जी के छींटा देना कहा जाता है। गण्डमूलनक्षत्र में मूलशांति 27वें दिन सम्पन्न करने की रिवाज है। स्वस्ति चिन्ह मेहंदी या गोबर के लगाये जाते हैं। जच्चा महावर लगाती है। डाकोत (ज्योतिषी) द्वारा लोकाचार के अनुरूप मूलशांति पर्यन्त विप्र द्वारा अनुष्ठान करवाया जाता है। 21 प्रकार के पेडों के पत्ते और 27 कुओं का पानी लिया जाता है। पंचामृत शुद्धि पर्यन्त वस्त्रधारण कर नीम की डालियों को डालकर सूर्य देव को जल देने की रीति पूर्वांचल में प्रचलित है। हवन पूजन पर बैठते समय पीला परिधान धारण करती है। जो मंगल कामना का प्रतीक है। 11, 15, 20 दिन में कुआँ पूजन व वरूण पूजा होती है। उस समय का प्रचलित गीत है–

ससुर के अंगना जलपूजन जाऊँगी।
सात सखी रावरे ते उतरी, हसत, खेलत मुस्कात।
चलोरी सखी बाबानन्द घर चाले, जसोदा ने जायो नन्द लाल।
हाथ सरेंदी पैर पाँतरी जुर दिए जनन किंवार।
चलोरी सखी, उलट घर चाले यां न आदर भाव।।

कूप पूजन पर घूघरी (गेहूँ–चना) उबालकर बाँटी जाती हैं तथा कहीं–कहीं बर्तनों में मिष्ठान्न रखकर बाँटे जाते हैं। पूर्वांचल में यह परम्परा लोकप्रिय है। पुत्रोत्पन्न होने पर प्रीतिभोज की रीति भी पूर्वांचल प्रदेश में देखी गयी है। जिसे 'डायजा' दसोटन या कूप पूजन आदि नामों से बोला जाता है। जच्चा अपनी निद्रापूरी करने हेतु बच्चे का रोना माँ को सुहाता नहीं है। दादी पौत्र उत्पन्न होने पर बताशे बटंवाती है। बच्चे को लोरी सुनाती है।

''लल्ला लल्ला लोरी
दूध की कटोरी
दूध में बतासा
मुन्ना करै तमासा।।''

पुत्री को सुलाती हुई माँ लोरी सुनाती है—

"नन्नी परी सी मेरी लाडिली
चंदा की किरन मेरी लाडिली
जुग जुग जिए मेरी लाडिली।"

8. नामकरण संस्कार :- सोलह संस्कारों में नामकरण संस्कार का अपना विशेष महत्त्व है। सनातन (हिन्दू) समाज में संतान को नाम प्रदान करना भी एक संस्कार माना जाता है। नवें दिन यह संस्कार सम्पन्न होता है।[1] जन्मोपरांत मुखिया विद्वान् पण्डित के पास जाकर जन्मनक्षत्र एवं मुहुर्त व कुण्डली के सन्दर्भ में चर्चा करता है। स्वर्णपाद-स्वास्थ्य की दृष्टि से मध्यम, रजतपाद श्रेष्ठ, ताम्रपाद मध्यम सुखदाता मानते हैं। कुछ परिवारों में पण्डित द्वारा शिशु के लिए जो नाम बताता है, वही रख लेते हैं और कुछ परिवारों में जन्म राशि के आधार पर सुन्दर संक्षिप्त एवं कर्ण प्रिय नाम रख लेते हैं। हमारे यहाँ कहावत है कि 'यथा नाम तथा गुण' किन्तु किसी व्यक्ति को गुणों के विपरीत नाम दिया जाता है। आँखों से अँधा है नाम नयन सुख लेकिन वह नेत्रों को सुखदेने वाला पूर्वांचल में नाम को इतना महत्त्व नहीं दिया जाता है, क्योंकि नाम तो पहचान मात्र के लिए या बुलाने हेतु होता है। नाम की अपेक्षा गुणों को महत्त्व अधिक दिया जाता है।

9. निष्क्रमण :- नवजात शिशु के जन्म से लगभग एक महिने बाद जब उसे प्रथम बार बाहर निकाला जाता है, तब उसे निष्क्रमण कहा जाता है।[2] पूर्वांचल क्षेत्र में

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य, द्वि.सं. 2000 पृ. 75
2. हरि शंकर शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार, सं. 2007 पृ. 272

इस संस्कार से पहले माता को बच्चे के साथ एक कमरे में रखा जाता है। बाहर जाने का परहेज करते हैं। घरों को लीपा–पोती कर गोबर लगाते थे। आज भी यह परिपाटी राजस्थान प्रदेश के करौली एवं सवाई माधोपुर जिले में प्रचलित है। शुद्ध स्नान वस्त्रधारण कर सूर्य स्नान कराया जाता है। शिशु का चाचा छाजला ओढ़कर बच्चे को गोद में लेकर घर के मुख्यद्वार तक जाता है, वापस उसी कमरे में वापस ले आता है।

10. अन्न प्राशन संस्कार :– पाँच–छ माह में बच्चा खाने योग्य हो जाता है, तब बच्चे का 'अन्न प्राशन' संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इस संस्कार में पंचामृत व पके हुए चावल, खीर, खिचड़ी, दही, मुख से स्पर्श कराये जाते हैं।[1] इस संस्कार बाद ही बालक को अन्न खाने की शुरुआत की जाती है। पट्टी पुजाने का संस्कार भी कहते हैं। पूर्वांचल में माता की व्यग्रता के साथ उनके द्वारा पुत्र के सद्मार्गी होने की कामना की जाती है–

''मेरा पढ़ने को जावेगा लाल, पण्डित बुलवायो।
पाँच बरस का हो गया लाल, कृपा करी कृपाल।
पण्डित बुलावो पट्टी पुजवावो, दक्षिणा देऊ हाल।
चित्त में पण्डित इसे पढ़ाना ओम का अर्थ बताना।
फसे न बुरे ख्याल, विधा में भरपूर होय लाल।।''[2]

11. चूड़ाकरण संस्कार :– शिशु के सर्व बाल मुण्डन कराने 'चूडाकरण संस्कार' कहा जाता है। पूर्वी राजस्थान के करौली सवाई माधोपुर क्षेत्र में इसे मुण्डन संस्कार या चोटी देना कहा जाता है। लोक जीवन में इस संस्कार का अपना महत्त्व है। पहले या तीसरे वर्ष में बाल देने की परम्परा इष्ट स्थान जैसे कैला मैय्या, भैरूजी, हनुमान जी, गणेश जी आदि के चढ़ाकर पूर्ण होता है। कुछ लोग पितरों के जडूला

---

1. हरि शंकर शर्मा सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार सं. 2007, पृ. 272
2. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य, पृ. 8

अष्टमी को माता के द्वार पर चढ़ाने से पूर्व एक दिन रात जगा किया जाता है। जिसमें पितरों व देवी देवताओं के गीत गाकर सम्पूर्ण करते हैं। अधिकांशत: अमावस्या से पूर्व चौदश को रात जगाकर अमावस्या को भी करते हैं। बूआ आकर बालक के केश उतरवाती है तथा नेग लेती है। गीतों की शृंखला दैवीय भाई की मंगल कामना व भतीजे लम्बी उम्र के होते हैं। मुण्डन का यह गीत दृष्टव्य है–

''घुंघराले बाल लला के,
दादा भी रहसै दादी भी रहसै,
हंस कै कैरई है गरब लाल के।''[1]

12. कर्णबंध–कर्णछेदन संस्कार :– कर्ण भेदन का संस्कार 6 वर्ष की उम्र पश्चात् किया जाता है। इस कार्य हेतु 3, 6 वर्ष विशेष माना गया है किन्तु पूर्वांचल राजस्थान में इस उम्र के पार होने के बाद भी कर्ण छेदन करवाते हैं। लड़कियों के कर्ण छेदन के बाद नासिका छेदन की परम्परा रही है। साथ ही नाथ सम्प्रदाय के (योगी) लोग भी शिष्यत्व से पूर्व कर्ण छेदन करवाते हैं। शुभ घड़ी में कर्ण छेदन कर गुरु द्वारा कुण्डल पहनाये जाते हैं।

13. विद्यारम्भ संस्कार :– यह संस्कार महत्त्वपूर्ण होता है। सम्पूर्ण जीवन का आधार बिन्दु एक निष्ठ हो जाता है और जीवन का भविष्य इसी संस्कार पर निर्भर करता है। यद्यपि 'संस्कार प्रकाश' में बालक की आयु पाँच वर्ष की हो जाने पर उसे शिक्षा प्रदान करने का उल्लेख मिलता है।[2] किन्तु पूर्वांचल के डांग 'करौली, सवाई माधोपुर' में शिक्षा का प्रचार–प्रसार कम होने के कारण 6 वर्ष की उम्र से बालक को शिक्षालय प्रवेश दिलाने की परम्परा रही है किन्तु कुछ निजी विद्यालयों में 5 वर्ष के बालक को शिशु में पढ़ने बैठा देते हैं (एल.के.जी.)। आज करौली व सवाई मधोपुर जिले शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी माने जाते हैं।

---

1. कुन्दनलाल उप्रेती : लोक साहित्य के प्रतिमान पृ. 304
2. हरि शंकर शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार पृ. 275

13. उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार :- उप नयन गुरु के समीप ले जाना। वैदिक कालीन सभ्यता में बालक को गुरु की शरण में ज्ञानार्थ भेजने से पूर्व उपनयन संस्कार करवाना अनिवार्य था। जाति विशेष के कारण 8 वर्ष से 12 वर्ष की उम्र तक बालक का यज्ञोपवीत संस्कार होना अनिवार्य था। शूद्र वर्ग हेतु यह संस्कार आवश्यक नहीं होता था, जबकि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के लिए अनिवार्य होता था।[1] पूर्वांचल के लोक जीवन में यह प्रथा आज भी प्रचलित है। किन्ही परिवारों में 11-13 वर्ष की आयु में तथा किन्हीं के विवाह के मंगल समय भी यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न करवाया जाता है। इस दिन गुरु द्वारा मन्त्रोचारण कर दीक्षा देता है। इस दिन बन्ने तथा ब्याह के गीत गाये जाते हैं। बटुक 'माता-पिता' व गुरु से आशीर्वाद लेते हैं तथा सद्मार्ग की शपथ लेते हैं।

14. वेदारंभ :- शिक्षा का मूल उद्देश्य जीवन को सार्थक बनाना होता है, अत: शिक्षार्जन का उज्ज्वल भविष्य का आशीर्वाद लेकर बालक बौधिक एवं आध्यात्मिक ज्ञानार्जन करता है जो कि राजस्थान प्रदेश डांग क्षेत्र में आज स्वरूप परिवर्तित हो रहा है किन्तु मंगल कामना व सरस्वती पूजन वेद वेदागों की रीति पर सम्पन्न होता है।

15. विवाह संस्कार :- अन्य संस्कारों का अविलम्ब विवाह संस्कार पर ही निर्भर करता है। गृहस्थ को जीवन का भव्य प्रवेश द्वार कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। निम्न से उच्च, बर्बर से सभ्य सभी जाति व समुदाय में यह संस्कार रीतिपूर्वक सम्पन्न होते हैं। सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक रीति से दो हृदयों का मधुर मिलन कर जीवन की गाड़ी समृद्धि की और ले जाने की नई राह मिलती है। समान जाति, धर्म व सम्प्रदाय में विवाह रीति नीति पूर्वक करना समृद्धि का सूचक माना है। वेदों में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मिलता है।

---

1. हरि शंकर शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार, पृ. 275

सम्पूर्ण पूर्वांचल की राजस्थानी गौरवशाली परम्परा में मंगलकार्य करने से पूर्व गणेश जी की स्तुति की गई है क्योंकि गणेश जी को प्रथम देवता माना जाता है। इस लोकगीत को देख सकते हैं—

गठ रणतभँवर से आओ विनायक, करो ए न चीती बिडदडी।
बिडद विनायक दोनूं जी आया, आय पवस्या सीलै बड तलै।
बूझते बूझत नगर पहेठ्या, पोल्ज बताओ लाडेला रै पाब की।
अगणो तो बासो नगरी जी बसियो, नगरी में बैठ्या बामण बणिया।
चो थो तो बासो तोरण बासियो, तोरण छायो रूडी चिडक्ल्याँ।।[1]

इस लोक गीत के मुख्य अंशों में रणथम्भोर, सवाई माधोपुर के रणतभँवर के लाड़ले का आह्वान किया है। साक्षात् विराजमान गजानन से प्रार्थना की गई है कि वे स्वयं पधार कर 'बिड़दडी' की चिंता न करें। लोकगीतों में बिडद का अर्थ गणेश जी अपने पाँचवे भाँवर (फेरे) में करते हैं। हमारी दुल्हन का चीर तथा राईबर (दूल्हा) का बागा और बींटली (पकडी) को निरन्तर आगे बढ़ने की बात कहीं है।

आज गजानन्द बाबाजी,
घर नौत्यौ, ताऊजी घर नौत्यो,
तो दादी ने न्यौत जिमाओ,
ब्याई ने न्यौत जिमाओ
रे गजानन्द किल्लर छाजे
नौबत बाजे, नगाड़ा भी बाजें
तो रणत भँवर दर न्यारे
गजानन्द किल्लर छाजे।

---

1. मनोहर शर्मा : राजस्थानी लोक साहित्य प्रथम संस्करण 1982 पृ. 60-61

सगाई :- सर्व प्रथम **रिश्ता तय होने को सगाई** (रोकना) कहते हैं। पुत्री पक्ष द्वारा पुत्र पक्ष को रुपया वस्त्र फल-फूल देकर तिलक करते हैं, उसे रोकना या सगाई (मगनी) आदि नामों से पुकारा जाता है। इसमें वरपक्ष को चाँदी का सिक्का व 21-11 मिठाईयां देने की परम्परा है। नारियल, रुपये, गुड़ व मीठे चावल पकाते हैं। टीका या मुद्दा लेने की परम्परा पूर्वी राजस्थान के कुछ हिस्सों में प्रचलित है। ब्राह्मण या नाई द्वारा भेजने की परम्परा है। फिर पीलीपत्री या सावा निकलवाना होता है। लग्न टीका आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।[1]

रघुनन्दन फूले न समाये,
लगुन आई हरे-हरे
हमारे अंगना काका सज गये,
बाबा सज गये,
सज गई सारी बरात
बन्ना जी तो ऐसे सज गये जैसे श्री भगवान् ।
लगन आई हरे-हरे...।

विवाह के लोकगीत गाये जाते हैं उनकी 26 तरह की किस्में होती है-

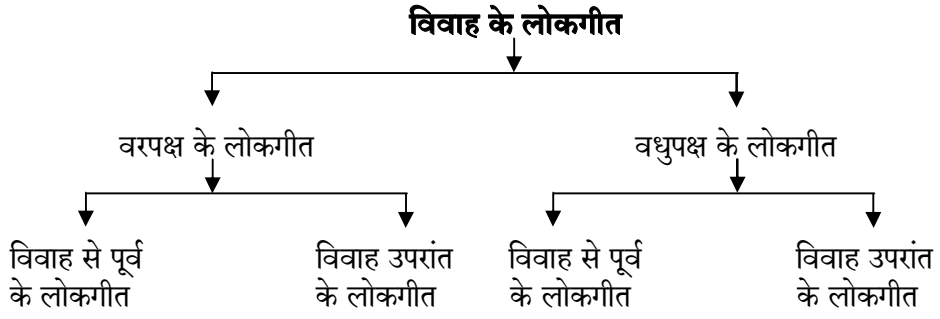

वरपक्ष के लोकगीतों में उल्लास, हर्ष, उत्साह और उमंग छलकेत हुए दिखलाई पड़ते हैं जबकि कन्या पक्ष के लोकगीतों में करूणा, माधर्य, विरह वेदना

1. संस्कृर्ता नानूराम : राजस्थानी लोक साहित्य, पृ. 76

और सरसता अधिक दृष्टिगोचर होती है। विदाई के समय अश्रुगंगा प्रवाहित होती है। मार्ग में जाने वाले का भी उन लोक गीतों को सुनकर हृदय द्रव्यभूत हो उठता है। पूर्व अंचल में विवाह से जुड़े गीतों को बन्ना नाम से सम्बोधित किया जाता है। **भात के गीत** कुछ इस प्रकार के होते हैं–

''मिल लै मिल लै हीरा झकोर माँ के जाये, कब मिलै?
ए भइया, नैनन से मिल्यो हो न जाय।
नैना मेरे कजरा भरे।
ए भइया, नैनन से मिल्यो हो न जाय।
हिवरा मेरा हार भरयो।
एमइया मल ले मिल ले बाँह पसारे।
बाहें मेरी चुरला भरी।।''[1]

× × ×

बन्ना—दूल्हो ठाडो कमल को सो फूल,
बलैया मैया ढंग से लीजौ
बन्नी—हाथी दाँत की पालकिया
लाड़ो मेरी चढ़ गई बाबुल तुम कांई हारे
बेटा बाला जीत के चाल्यो
धीमर मैं तो जाई दिन हारो
वा दिन तेने जन्म लियो।[2]

इसी प्रकार तेल के गीत, मेहंदी के गीत, घोड़ी बन्ना के गीत, बधायें तोरण के गीत, ज्योनार के गीत, भाँवर के गीत, विदा के गीत, गोने के गीत। लोक गीतों के रूप में पूर्वांचल की लोक संस्कृति का परिचय कराते हुए देखे गये हैं।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल, लोक साहित्य पृ. 12
2. कमला देवी (गाँवड़ा मीना) ग्रामीण महिला से साक्षात्कार।

भात भरना :– भारत भरने की पुरातन परम्परा '**नरसी भगत**' की कथा से प्रचलित है। भाई बहिन के घर या पुत्री के घर संतान के विवाह पूर्व भात भरने की रस्म है। भाई बहिन को चुनड़ी उढाता है। राजस्थानी परम्परा में भात भरने वाले भाई के बीरा शब्द का प्रयोग प्रचलित है। पूर्वांचल में भात भरने के कई गीत है—भाई पीला वस्त्र पहनाता है जो 'पीरा पहनना' कहलाता है। भात पोल (पोली) मुख्य द्वार तोरण द्वार पर क्षेत्रफल देवता का सम्मान किया जाता है।

''चंदा की शोभा चाँदनी सूरज सो छैय्या।
भात की शोभा चूनड़ी उठावै मेरा भैय्या।
थाली में बरसे बीरो उपर से बरसे मेवो।
मन बरसे रे इन्द्रराजा मेरी माँ को जाये भीजै।।''[1]

निकाली, टूटियां, दुकाव, तोरण, चँवरी, फेरे का होना, परावणी और विदाई के लोकगीत विद्यमान रहेंगे। तोरण के गीत दृष्टव्य है।

चिट्टी लिख–लिख बागो भेजूँ।
बाँधो रे बाँधो रे जमइया।
तुझको टोना करूँगी, वधी गण्डा करूँगी।
घडिया भेजूँगी, तुझे टोना करूँगी।
दारी समधन के जाये।

एक अन्य गीत के द्वारा भात भरने के लिए भाई अपनी बहिन से कहता है—

अब मोहि पौरिन ले ले मेरी बहना
अब तोहि पौरिन कैसे लऊँ भैया
सास मेरी रुँसी, ससुर मेरो रुँसों
ससुर मनालैं बहना सास मनालै
कुटुम्ब मनाले अपनी खुशी ते

---

1. कमला देवी (गाँवड़ा मीना) ग्रामीण महिला से साक्षात्कार।

अब मोहि पौरिन ले ले मेरी बहना
अब तोहि पौरिन कैसे लऊँ भैया
जेठ मेरो रुँसो, जिठानी मेरी रुँसी
जेठ मना ले बहना जिठानी मनालै
कुटुम मनाले अपनी खुशी ते
देवर मनाले, देवरानी मना ले
मेरी चुनरी पर रंग बरसे
मेरी सारी पर रंग बरसे
पौरी पै बरसै भातई
मत बरसे इन्दर राजा
मत गरजे इन्दर राजा
मेरो भीजै लक्ष्मण भातई।[1]

एक अन्य गीत—

मेरे पिताजी को हथिया घुमेन
घूमें–घूमें सजन के दरबार
घूमे–घूमे बेटी के दरबार
सिदोसो आजो भातई
तेरो भरोसो मोह बहुत
सिदोसो आजो भातई
मेरे चाचा को घुडलो हींसनो
हींसे–हींसे बेटी के दरबार
सिदोसों आजो भातई
तेरो भरोसो मोह बहुत

---

1. फूलवती मीना — दीपपुरा गाँव की महिला से साक्षात्कार द्वारा।

पोरी पे हो रही चर्चा बहुत
सिदोसो आया भातई
बगले में हो रही चर्चा
सिदोसो आज भातई।

भात के गीतों अग्नि को साक्षी कर सात फेरों के सातों बचनों की परम्परा पूर्वी राजस्थान के सवाई माधोपुर व करौली क्षेत्र में ऐसे है।

ए मेरी पैली भाँमरि, अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी दूजी भाँमरि, अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी तीजी भाँमरि, अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी चौथी भाँमरि, अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी पँचई भाँमरि, अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी छटी भाँमरि, अबऊ बेटी बाप की।
ए मेरी सातई भाँमरि, अबऊ बेटी सास की।।[1]

इस प्रकार विदा के गीत, महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले विविध गीतों का संगम देखने लायक होता है। विदा के गीतों में करूणा वेदना की मार्मिक अनुभूति पाई जाती है। कन्या की माँ का हृदय तो विछोह से विदीर्ण हो उठता है–

''ओहो मेरी उड़न चिरिय्या उड़ चली।
बाबुल मेरे दई हो निकार, ज्यों जल माछरी।
बाबुल मेरे रूप्यो है वास्तो, ज्यो जल माछरी।
माय मेरी रोज चुनरिया तो भीजे री।[2]

गोने के गीतों का अपभ्रंश में है, जाना है पितृ गृह को त्याग कर पति गृह गमन को गौना कहा जाता है। कहीं–कहीं पूर्वांचल में फेर पट्टा या बाल विवाह के कारण

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य पृ. 12
2. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोक साहित्य पृ. 12

3, 5वें वर्ष (मुकलावा) सैकिण्ड मैरीज की परम्परा प्रचलित है। माँ की ममता, सखियों का स्नेह के कारण स्वर्णकार से बेसर, गढ़ने के लिए (कान, नाक का आभूषण कपड़े वाले को साड़ी रंगरेज से चुनरी रंग कर लाने के लिए कहती है।

औरे छोरा सुनार के
बेसर गढला मोय।
मेरे गोने के दिन रहे चार।
ओ छोरा बजाज के।
साडी लादे मोय।
गोने के दिन रहे चार।
ओरे छोरा रंगरेज के।
चुनरिया तो रंगलाय मोय।
गोने के दिन रहे चार।
मोय जानो ऐ पल्ली पार।।

दूल्हा–दूल्हन के फेर पट्टे के बाद पलंगचार (पलकाचार), जुँआरी आदि कार्य होते हैं। सात फेरों के बाद पति–पत्नी सफल गृहस्थ जीवन की मंगल कामना करते हैं।

16. अन्त्येष्ठी :– जीवन क्षणभंगुर है, फिर भी मानव जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए सभी संस्कारों से गुजर कर अंत में मृत्यु प्राप्ति अंतिम ठहराव होता है। सृष्टि का शाश्वत सत्य है। जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित ही है। मानवदेह की मुक्ति अंतिम संस्कार में अग्नि की पवित्रता से होती है। हिन्दू धर्म में जलाया जाता है तथा मुस्लिम धर्म दफनाया जाता है।[1]

मानव जीवन सृष्टि में सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी होता है। पशु तथा मानव में केवल बुद्धि तत्त्व की अधिकता के कारण ही सृष्टि के सभी जीव–जन्तुओं पर राज

1. हरि शंकर शर्मा, सरोज पावा : भारतीय संस्कृति के आधार पृ. सं. 2007 पृ. 274

करता है। पति की मृत्यु पर पत्नी को सुहाग से जुडी सभी स्वतन्त्रताओं का त्याग करना पड़ता है। पंचकों में मृत्यु होने पर 5 पुतलों को बनाकर पिण्डदान क्रिया करके दोष मुक्ति करते हैं। अन्यथा पाँच मृत्यु और होने का संकेत माना जाता है। पूर्वांचल की लोक विश्वास या रीति के रूप में ही मानते हैं। पिता को अर्द्धजलने के बीच में बड़े बेटे के द्वारा मुखाग्नि व कपाल क्रिया कर घृत डालने की परम्परा है। शुद्ध छोटा, कडामास, तृतीय दिवस (तीया) में अस्थियाँ एकत्रित कर विसर्जन हेतु गंगा, सोरो या हरिद्वार में जाते हैं। पवित्रतमा गंगा की शुद्धि हेतु जल लाकर नारायण क्रिया करवाई जाती। क्रिया करने वाले के परिवार में सादा भोजन होता है। लोकाचार के अनुरूप 9वां स्नान (नहाण) एकदाश (शुद्ध दिन) या द्वादश, छमाही करने की परम्परा रही है। सकल पंच की चिट्ठी देकर मृत्यु भोज व पगड़ी की रस्म होती है। जिसमें बड़े बेटे के भाई बन्धों, ग्रामीण व ससुराल पक्ष के लोगों द्वारा पगडी व कुछ नगदी दी जाती है। गरूड पुराण सुनाकर क्रियाएँ सम्पूर्ण की जाती है।

मृत्यु के बाद ये सभी लौकिक विधान इस लिए सम्पन्न किये जाते हैं ताकि मृतक की आत्मा को शांति मिल सके, उसकी आत्मा भटके नहीं।[1] पूर्वांचल करौली, सवाई माधोपुर के डांग क्षेत्र में बालअरिष्ट या कच्ची मौत कहते हैं, जिसमें कम उम्र का व्यक्ति मरता है। ऐसी मान्यता है कि उसकी मुक्ति नहीं होती है। भारतीय संस्कृति में 100 वर्ष की आयु मानी गयी है। प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु अपने कर्म के अनुसार निश्चित है। पूर्वांचल में मृत्यु पर भी लोकगीत गाने की परम्परा है।

जीवन का सत्य मृत्यु है, जैसा कि गीता में कहा है, कि न तो आत्मा जीती है न मरती है शरीर मरता है आत्मा अजर, अमर है। पूर्वांचल ही नहीं सम्पूर्ण राजस्थान प्रदेश में मृत्युभोज परम्परा कुरीति के रूप में व्याप्त है। यहाँ कहीं–कहीं बामनवास, गंगापुर, करौली तहसील में तीसरे के दिन भी भोज की गलत परिपाटी है। ग्यारह बौर

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम, राजस्थानी लोक गीत पृ. 84, 85

बारह के दिन मृत्युभोज (नुक्ते) की परम्परा है। विशेषतया मीणा जाति में इस प्रतिष्ठा का प्रश्न मान लिया जाता है किन्तु पूर्वांचल में शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण मृत्युभोज को एक सीमित दायरे में करना प्रारंभ कर दिया है। इस प्रकार पूर्वांचल में सोलह संस्कारों की परिपाटी भारतीय सनातन धर्म की एक पारम्परिक प्रवृत्ति भी कह सकते हैं।

लोकोत्सव

भारतीय संस्कृति में अलग-अलग मौसम के अनुसार त्यौंहार होते हैं। ये त्यौंहार ही है जिनसे राजस्थानी संस्कृति की सजीवता प्रकट होती है। इन अवसरों पर लोकमानस स्वच्छन्द होकर झूम उठता है। राजस्थान की भूमि त्याग, बलिदान एवं त्यौंहारों की पवित्र धरा है। पूर्वी राजस्थान में प्रचलित कहावत है 'सठत वार नौ तिहवार' अर्थात् सप्ताह के सातवार होते हैं, जबकि नौ त्यौंहार मनाये जाते हैं। इन त्यौंहारों से परस्पर प्रेम, सहयोग, त्याग एवं समर्पण की भावना जाग्रत होती है। होली, दीपावली, दशहरा, रक्षाबन्ध, श्रीरामनवमी, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, तीज, नवरात्रे, गोवर्द्धन पूजा (पूर्वांचल) में विशेष रूप से मनाया जाता है। इन सभी का लोक साहित्य में वर्णन पर्वोत्सवों का चित्रण प्रमुख है।

(1) गणगौर :- राजस्थान में गणगौर की पूजा-अर्चना विशेष महत्त्व रखती है। चैत्र शुक्ल पक्ष की तीज को गणगौर (शिव पार्वती) की पूजा अर्थात् गण-शिव गौर पार्वती। अत: गणगौर पर्व में शिव व पार्वती की आराधना कुआरियाँ अपने लिए उपयुक्त वर व नारी अपने अखण्ड सुहाग की कामना करती हैं।[1]

राजस्थान में गणगौर पूजा के लिए एक कथा प्रसिद्ध है। 'ब्रह्मा के पुत्र दक्ष बड़े बलवान थे। देवताओं में उनका बड़ा आदर था। उनके एक सुन्दर कन्या ने जन्म लिया। उसका नाम पार्वती रखा गया। आगे चलकर उमा व पार्वती के नाम से प्रसिद्ध

1. महर्षि मुरारिलाल विद्या भूषण (संग्रह कर्त्ता), पारम्परिक मांकलिक लोकगीत प्र.सं. 1998 पृ. 14

हुई। बाल्यकाल में ही पार्वती का झुकाव शिव जी की और था। जब बड़ी हुई तो शिवाराधना में लीन हुई। पति रूप में पाने के लिए घोर तप किया। वह कृश देह हो गयी। तब शिव ने दर्शन दिए। उसकी दृढ़ निष्ठा, निष्काम भाव देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गए। उन्होंने विधिपूर्वक पार्वती का पाणिग्रहण किया और पार्वती ने शिव जी को पति रूप में प्राप्त किया। विवाहितों के साथ अविवाहित कन्याएँ हरी दूब से पानी के छींटे मिट्टी की गणगौर के देती हैं तथा विवाह व सुखी जीवन की कामनाएँ करती हैं। होलिका दहन के दूसरे दिन चैत्र कृष्णपक्ष प्रतिपदा से गणगौर पूजन की शुरुआत होती है–

खैलण दया गणगौर भँवर म्हाने पूजण दया गणगौर।
ओ जी म्हारी सहेल्यां जोवें बाट
भँवर महाने पूजण दया गणगौर....।

गणगौर पूजन कर नव विवाहिताएँ हरी भरी यौवन से परिपूर्ण बाडी को देखती हैं तो प्रसन्नचित होकर गीत गाती हैं।

म्हारै माली री बाड़ी फल रही, म्हारी मालन जायो है पूत।
जुग–जुग जी ओ ए वंश वधावण।।

गणगौर पूजने वाली लड़कियाँ गणगौर माता से कहती है कि हे माता। किंवाड खोलो, हम पूजने वाली बाहर बैठी हैं। गणगौर माता उनसे पूछती है कि आपको क्या वरदान चाहिए। तब सभी लड़कियाँ एक साथ कहती हैं कि हम अन्न धन लक्ष्मी जलवल जानी पिता, संता देई माता कान कुँवर भाई, राई सी भाभी, ऊँटपर सवार बहनोई सुहागन चूड़े वाली बहन लाल दसाता बूआ, बिणजारी आदि वरदान माँगती है। विवाह पूर्ण बनौरा निकालते हैं। उसी प्रकार गणगौर का बनोरा निकालते हैं। इसी दिन जयपुर की गणगौर का बनोरा निकालते हैं। इसी दिन जयपुर की गणगौर ही नहीं पूर्वी राजस्थान का गणगौर मेला अति प्रसिद्ध है। दूसरे रोज भोजन पानी कराकर के 'एक–दो–तीन–चार पाँच–छ: सात–आठ नौ–दस ग्यारह–बारह तेरह–चौदह पन्द्रह–

सोलहा ईश्वर पार्वती भोला कहते हुए पूजती हैं तथा कुएँ आदि में प्रतिमाओं को विसर्जित करती हैं। राजस्थान में कहावत है **"तीज त्यौहार बावड़ी ले डूबी गणगौर।"**

जागो जागो जी बीरमादत्तजी रा जूत
गौर चली घर आपके।

2. शीतलाष्टमी :- चैत्र कृष्ण आठे को शीतला पूजन होता है। पूर्वांचल में मान्यता है कि शीतला पूजन से माता (चेचक) नहीं निकलती हैं। इससे एक दिन पूर्व रान्दापोआ या खाना गुलगुले, राबड़ी, गंजी रोटी आदि बनाकर रात्रि का रखते हैं। दूसरे दिन मिट्टी के सकोरों में प्रसाद रखकर माता को ठण्डा भोग लगता है। पूर्वांचल में सेड़माई भी कहते हैं। सर्दी के बाद अचानक मौसम बदलता है तो अक्सर इस बीमारी का डर रहता है अत: लोग शीतला को देवी माता कहकर पूजते हैं और उसे प्रार्थना करते हैं कि तुम हमारे बच्चों पर कृपा करना और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देना।[1] पूर्वांचल में विवाहोपरांत शेउ चौरा की भाँति नव विवाहितों के गठजोडों की परिक्रमा दिलाने की परम्परा है। रोली, मोली, हल्दी, चन्दन का तिलक, दीपक करते हैं तथा उसे जल के छीटें घर में लगाते हैं। उस दिन तक बासा खाना खराब नहीं होता है दूसरे दिन से ठण्डा खाना खराब होना शुरू हो जाता है।

सूरजमण जी ओ दरवाजा खोला,
थापर म्हैर करैगी माता शीतला,
ओमपरकाश जी ओ दरवाजा खोला,
थापर खुश होय माता शीतला
थाने देसी आवजइला माता शीतला।

3. नवरात्र रामनवमी :- चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक नवरात्र पर्व मनाया जाता है। यह पर्व आसोज में हर्षोल्लास से मनाते हैं। पूर्वांचल में करौली वाली कैला मैय्या के लक्खी मेला भरता है। जिसमें राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश,

---

1. महर्षि मुरारिलाल विद्याभूषण : संग्रह कर्त्ता पारम्परिक मांगलिक लोक गीत प्र.सं. 2001, पृ. 28

दिल्ली, हरियाणा आदि सभी प्रदेशों से भक्त आते हैं तथा पदातियों की मेले में ठहरने की उत्तम व्यवस्थाएँ होती है। दुर्गा स्तुति हेतु जवारे बोते हैं तथा कार्य सिद्धि हेतु पूजापाक की जाती है और दैवीय शक्तियों के आशीर्वाद की कामना करते हैं।

कुछ लोक नवरात्र करते हैं, तब देवी की पूजा का उद्यापन अष्टमी को कन्याओं को भोजन व दान पुण्य से पूरा करते हैं तथा 'चैत्र शुक्ला नवमी को रामनवमी मनाई जाती है।' मर्यादापुरुषोत्तम 'श्रीरामजी' का जन्म इसी दिन हुआ था। अत: पौराणिक झांकियों के साथ श्रीरामजी की सवारी निकाली जाती है लोग लापसी, चूरमा आदि पकवान बनाते हैं।[1] पूर्वी राजस्थान में 'नया संवत्' शक संवत् आदि का प्रारंभ मानते हुए नववर्ष की मंगल कामना हेतु चावल बुरे को भोजन के रूप में शुभ मानते हैं।

4. अक्षय तृतीय (आखातीज) :- राजस्थानी पूर्वांचल डांगक्षेत्र की पावन भूमि में अक्षय तृतीया मनाई जाती है। इस दिन लपटा या गुलवान्या अर्थात् आटे का लपटा बनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक शुभ कार्य के लिए मुहुर्त की पूछने की आवश्यकता नहीं होती है। नींव गृहप्रवेश व विवाह आदि मांगलिक कार्यों के लिए पंचाग की आवश्यकता नहीं है। 'अनबूझा मुहुर्त भला कै तेरस कै तीज''। पूर्वांचल प्रदेश में मीणा जाति के छोटे-छोटे (18वर्ष से कम) उम्र के बालक बालिकाओं को को परिणय सूत्र में बाधते हैं। वैसे तो वयस्कों के भी प्रत्येक हिन्दू जाति समुदाय में विवाह होते हैं किन्तु बाल विवाह अबूझ मुहुर्त होने के कारण किसान भी खेती से अन्नोत्पन्न कर कार्य मुक्त हो जाता है तथा दूसरा कारण फसल बेचकर धनार्जन करता है। अत: उसके पास पैसा होने पर मांगलिक कार्य करता है। अक्षय तृतीया (आखातीज) के दिन बड़े स्तर पर अबूझ सावे (विवाह) सम्पन्न होते हैं।

6. तीज :- राजस्थान प्रदेश का हर्षोल्लास पूर्ण मनाया जाता वाला महिलाओं का मुख्य त्यौंहार है तीज। श्रावण शुक्ला तृतीया को मनाया जाता है।[2] एक

---

1. नन्द लाल कल्ला : राजस्थानी लोक साहित्य व संस्कृति प्र.सं. 2000 पृ. 13
2. कमलेश माथुर : लोक संस्कृति के सोपान पृ.सं. 08

दिन पूर्व नव विवाहितों के वरपक्ष द्वारा सिंजारा लाने की परम्परा है। पूर्वांचल में इसे 'सिंजारा या सिंघारा' कहते हैं जिसमें घेवर, फल–फूल, मिष्ठान, शृंगार का सामान रस्सी, पाटकली आदि के साथ खिलौने लाने का विधान है। बंधेज की साड़ी व लहरिया पहना स्त्रियों को सुहाग के लिए उत्तम माना जाता है–

सावन आयो रे पिया।
कोई आई रे हरियाली री तीज।
हिंडोले गढा दे चम्पा बाग में जी।
हे जी कोई–हाँ हम्बे कोई जी।
सात सखी पर ये पिया झूलती जी।
बीच में झूलती कुवर निहाल रे जी।।

बागों में झूले पड़ते हैं और सखियाँ गाती है–

सखी री चलो दर्शन कर आए।
झूला डारों है कदम की डार।
सखीरी एक संग झूले राधिका रानी।
कोई एक संग कृष्ण मुरारि सखी।।

श्रावण मास में सास बहु एक साथ नहीं रहती है तो नवोढा को प्रियतम की याद सताती है, वर्षा ऋतु में चारों और हरा–भरा दृश्य बूँदों की मंद बरसात विरह को अधिक प्रकट करती है। पूर्वांचल में जगह–जगह तीज के मेले लगते हैं। जयपुर में तीज की सवारी निकलती है।

"सावन आयो री बहना सुहावनो, बिटियों का त्यौहार
सबकाऊँ पीहर को जाये, हमहु तो जायेंगे अपनी माय के वीरा
सावन आवो री बहना सुहावनो बिटियों का त्यौहार
झूला तो ढरायदै भैया मेरी बाग में
एकोई डरगई रे समडोर।"

7. रक्षाबंधन :- भाई बहिन का पवित्र रिश्ता स्नेह का प्रतीक रक्षाबन्धन श्रावणमास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। एक दिन पूर्व गोबर तिलक लगाने की परम्परा पूर्वांचल में है। 'शुभ-लाभ', 'रिद्धी-सिद्धि' बनाकर भूर्णो भोग लगाकर राखी बांधी जाती है। भाई द्वारा संकट में बहन की रक्षा का वचन निभाता है। तथा बहिन भाई को मुख मीठा कर राखी बाँधती है। रक्षाबन्धन का अर्थ है 'रक्षा का बन्धन' अर्थात् बहिने भाई को रक्षा सूत्र बाँधती हैं तथा भाई जीवनपर्यन्त बहिन की रक्षा का वचन निभाता है। राखी बांधने के बाद भाई दक्षिणा स्वरूप नगदी या उपहार भेंट करता है। पूर्वांचल हिण्डौन, गंगापुर, करौली, माधोपुर क्षेत्र में धर्म के भाई बहिन बनाने की रिवाज है, जो खास भाई बहिन से भी बढ़कर पवित्र रिश्ते को निभाते हैं। यह गीत इस को प्रकट करता है।

आयो राखी को त्यौंहार, प्रीत रो रंग भर गयो।
बहना बांधन लागी सूत भाया को मन भर गया।।

× × ×

सावन आयो री बहना
बिटियों का त्यौहार
सब काऊ पीहर को जाये
हमऊँ तो जायेंगे अपने वीरा
× × ×
बिटियों का त्यौहार
झूला तो ढरायदै भैया
मेरी बाग में
ए कोई डर गयी रे समडोर।[1]

---

1. गीता देवी : रुँधपुरा (माँसलपुर) गाँव की महिला से साक्षात्कार।

भाई बहिन के प्रेम कीपूर्वांचल में कई लघुकथाएँ है। जिनका लोकगीतों के माध्यम से बखान किया जाता है। जाति धर्म व लिंग भेद से ऊपर उठकर सम्पूर्ण देश को एक बन्धन में बाधने वाला पवित्र त्यौंहार है। करौली व सवाई माधोपुर में रक्षाबन्धन के दिन पतंग उड़ाई जाती है।

8. श्री कृष्णा जन्माष्टमी :- भाद्रपक्ष की अष्टमी को मनाया जाने वाला हिन्दू धर्म का पवित्र पर्व है। पूर्वांचल में ब्रज क्षेत्र में मनाया जाने वाला जन्मोत्सव का अपना अपूर्व महत्त्व है। कैला मैय्या श्री कृष्ण की बहिन बिजली है जो कि देवकी के आठवें पुत्र से पहले उत्पन्न वसुदेव की सातवीं सन्तान है। उस दिन प्रात: काल से पूजा-अर्चना, दानपुण्य का सिल-सिला शुरू होता है। व्रत में केवल जल पी सकते हैं। जब तक कान्हा का जन्म नहीं होता है तब तक भक्तगण भजनों में लीन रहकर सत्संग करते हैं। मंदिरों को सजाया जाता है तथा रात्रि 12 बजे भगवान् के जन्म की प्रतिक्षा की जाती है। करौली के मदनमोहन मंदिर में दिन-भर भजन कीर्तनों का आयोजन होता है। भक्तगण भक्ति में भाव विभोर होकर कृष्णलीला का गुणगान करते हैं। जन्मोत्सव के बाद महाआरती होती है। धनिये की पंजीरी, तुलसी का भोग दही से लगता है। व्रत करने वाले शाकाहार करते हैं। और दूसरे दिन सीधा (आटा, नमक, मिर्च, घी) आदि देकर पुण्य अर्जित करते हैं। यह पर्व राष्ट्रीय पर्व है।

9. गोगानवमी :- जन्माष्टमी के दूसरे दिन भाद्र कृष्ण नवमी जिसे पूर्वांचल में 'गूगानवमी' भी कहते हैं। इसे सर्पों का देवता या गोगाजी कहा जाता है। स्त्रियाँ दीवार पर 7 प्रकार सर्पें की लाइनें खींचकर कण्डे पर भोग लगता है खीर व 9 पूओं से भोग लगाकर चुलू भराती हैं फिर देवताओं के गीत गाती हैं। रक्षा बन्धन के नवें दिन बँधी हुई राखियों को खोली जाती है। कहीं-कहीं पर गोगाजी की कथा सुनाती है।

10. गणेश चतुर्थी :- अमंगल को मंगल करने वाले गौरी पुत्र गणेश भाद्र शुक्ल चतुर्थी को पूर्वांचल में 'डण्डा चौथ' (गणेश चौथ) के रूप में मनाते हैं। इस

दिन गणेश जी के अभिषेक कर पूजन किया जाता है तथा मंदिरों में सजावट होती है तथा घर-घर में गणेश प्रतिमा की पूजा अर्चनाव चोला चढ़ाया जाता है। पुस्तक पूजन कराने की परम्परा है। पाराशर गौत्र वाले ब्राह्मणों की राखी भी इस दिन मनाई जाती है। गंगापुर, माधोपुर, धौलपुर, करौली में कुछ महाजन भी इस दिन राखी का त्यौंहार मनाते हैं।

धनवन्तरी की पूजा का अमावस्या को सांय काल या रात्रि को स्थिर लग्न में खीर बताशों से लक्ष्मीपूजन किया जाता है। सभी लोगों के द्वारा नवीन वस्त्र धारण किये जाते हैं तथा पूजा के बाद बड़े-बुजुर्गों के आशीर्वाद की परम्परा रही है। बही खाते का पूजन भी होता है। बम्ब पटाखे चलाये जाते हैं। चावल, बूरा व दाल का भोज्य मुख्य होता है। दूसरे दिन गोवर्द्धन की पूजा होती है। गोबर का बनाकर बछड़े को आगे कर 'मानसी गंगा सिर हरदेव गोबर की परिक्रमा देत' बोलते हुए पकवानों का भोग लगाकर नाभी में दही रखकर प्रसाद लेते हैं। बाद में पटाखे छोडे जाते हैं तथा राम-राम किया जाता है। 8 दिन बाद गोपाष्टमी के दिन गौमाता की पूजा करते हैं तथा गुड़-दलिया दान किया जाता है।

11. तुलसी एकादशी :- तुलसी हिन्दू धर्म ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण दवा व दुआ के रूप में मानी गयी है। तुलसी एकादशी को दूसरे शब्दों में तुलसी विवाह कहते हैं। एकादशी को मांड़ने बनाये जाते हैं तथा देवताओं को उठाने के लिए छबड़े के नीचे बेर आदि रखकर दीपक जलाते हैं तथा गीत गाते हुए महिलाएँ थाली व अन्य वाध द्वारा देवों को प्रार्थना करती है। शालिग्राम तुलसी विवाह होता है, महिलाएँ पूजाकर बुजुर्ग महिलाओं से आशीर्वाद लेती हैं। तुलसी का वृक्ष प्रत्येक घर में लगाकर पूजा जाता है। इससे कैंसर जैसी बीमारी पर विजय पा सकते हैं। विवाह आदि मंगल कार्यों के अबूझ मुहुर्त होते हैं तथा कोई भी शुभ कार्य का प्रारंभ होता है इसके बाद माघ शुक्ल पंचमी को बसंत पंचमी मनाते हैं। फाल्गुन कृष्ण तृयोदशी को व्रत तथा चतुदर्शी

को शिव विवाह होता है। इस दिन पंचामृत दूध व गाजर, बैंगन, बैर व भाँग धतूरा द्वारा शिव पार्वती पूजा की जाती है तथा गाजर का हलवा द्वारा शाकाहार किया जाता है।

12 श्राद्ध पक्ष (कनागत) :- आसोज माह के प्रतिपदा से श्राद्धकर्म शुरू हो जाते हैं। इस समय पर कौंओं, गाय व ब्राह्मण को भोजन कराकर वस्त्र व दक्षिणा दी जाती है। इन दिनों में खीर, पंचधारी के लड्डू, इमरती (कंगन) चाँदी (बड़े) बनाने का विधान है। ऐसी मान्यता है कि हमारे श्राद्धों में ब्राह्मणों गायों व कौओं को भोजन कराते हैं, तो वे हमारे मृतक व्यक्तियों को अर्पित होता है।[1] ये श्राद्ध पितरों की आत्मा की शांति लिए किए जाते हैं।

13. दशहरा :- नवरात्र का समापन आसोज माह में मनाया जाता है। असत्य पर सत्य की विजय होती है। रावण पर श्रीराम ने विजय हासिल की थी। यह पूर्वांचल व कोटा हाड़ौती क्षेत्र में रावण दहन बुराई पर अच्छाई की जीत, अधर्म पर धर्म की विजय के रूप में मनाया जाता है। रामचरित मानस के आधार पर गाँवों में 'रामलीला' का आयोजन पन्द्रह दिन तक चलता है। कार्तिक का प्रारंभ धान के पकवान बनाते हैं। आदर्श की नई राह दिखाई जाती है। फिर शरद की पूर्णिमा आती है। सोडस कला चनद्रमा की महिमा के कारण 108 बार सूई से धागा पिरोया जाता है।

14. दीपावली :- पूर्वी राजस्थान ही नहीं सम्पूर्ण भारत का प्रमुख त्यौंहार है। श्रीराम द्वारा रावण विजय पर्यन्त अयोध्या आगमन पर मंगल गीतों द्वारा महा आरती की तथा रोशनी की जगमगाहट से मंगल हुआ। दशहरे के बाद पूर्वी राजस्थान में घरों में रंगरोगन, कच्चे घरों में लिपाई पुताई करते हैं। धन तेरस के दिन नवीन बर्तन व खरीददारी की जाती है। छोटी दीपावली को दीपक पंचलो कपाल, दस दिकपाल देवताओं के नाम के दीपक जलाये जाते हैं। दीपावली के दिन लक्ष्मी व गणेश की पूजा की जाती है और लोग सभी के घर दीपक जलाने जाते हैं व सुख-समृद्धि की कामना की जाती है। दीपावली पूर्वी राजस्थान में धूमधाम व हर्षोल्लास से मनायी जाती है।

---

1. सागरमल शर्मा चिड़ावा अतीत से आज तक पृ. 326

दीपावली गोवर्धनपूजा का गीत—

है ते जाय मानसी गंगा न्यालै
परिकम्बा सात लगाले
तेरे कटे जन्म के पाप, सेवा गोवर्धन की कर ले
तेरे मनचीते हैं जाये, सेवा गोवर्धन की कर लै
श्रीगोवर्धन महाराज
तेरे माथे मुकुट विराज रहो
तेरे का गारु को जाये
श्री कृष्णा–कृष्णा कहने ते
श्री गोवर्धन महाराज
तेरे माथे मुकुट विराज रहो।

15. मकर सक्रांति :– हिन्दू धर्म में दान पुण्य का विशेष महत्त्व है। पुराणें व ज्योतिष के अनुसार सूर्य का मकर राशि में प्रवेश मकर सक्रांति कहलाती है। 14 जनवरी को मकर सक्रांति उत्सव पर सूर्य उत्तरायण हो जाता है। दिन बड़े रात छोटी होती हैं। इस समय पर दान कुत्तों को गुलगुले, गरीब को अन्न व वस्त्रदान तथा गायों को चारा दान करते हैं तथा रास्ता साफ करते हैं व स्नान कर मछलियों को दाना, चींटियों को आटा छोड़ते हैं। पूर्वांचल में बच्चों द्वारा कुश्ती, फुटबाल, बालीबाल, पतंगबाजी व कंचे खेलने की परम्परा हुई है।

16. होली :– राष्ट्रीय एकता का प्रतीक फाल्गुन को पूर्णिमा को मनाया जाने वाला त्यौंहार है। पूर्वी राजस्थान में फाग, चंग पर गाये जाते हैं तथा महिलाएँ मंदिरों में गीतों की मधुर ध्वनि सुनाई देती है।

आयो होली का त्यौंहार, प्रीत को रंग भरग्यो।
सब खेलन लागै फाग, गाँव में चंग बजग्यो।
ढोल बजावे चंग बजावो सब मिल नाचो गावो।।

राजस्थानी लोक नृत्यों में प्रसिद्धि 'घूमर' को ही मिली है। बिलकुड़ी व ढाल थापने की परम्परा पूर्वांचल की है। एक माह पूर्व (डांडा) खेजडी की हरी टहनी चौराहे पर गाडी जाती है। जिसे प्रहलाद भक्त की प्रतीक मानी जाती है। गोबर की होलिका बनाकर पूजते हैं। पूजा के बाद मुहुर्त अनुसार सायं के बाद 'दहन' की प्रक्रिया होती है। जौ, चने की सिकाई करते हैं। पूर्व अचंल में कुछ मान्यताएँ है जिस दिशा में अग्नि की लौ जाती है उस दिशा में फसल अच्छी होती है। ढाल की राख घर में मुख्यद्वार पर दोनों हिस्सों पर डालने से बाध्यापदाओं से मुक्ति होती है। ब्रज की होली का पूर्ण प्रभाव पूर्वांचल में है। सम्पूर्ण जगत् बसंत मय दृष्टिगोचर होता है।

आयो फागुन मास, या फागुन हमारो पिया घर नाई,
देवरिया नादान, सखीरी आयो फागुन मास।
नाक चुनी नकबेसर सौहे झलकारी छविन्यारी जी,
आयो रे फागुन मास पिया संग खेलो न होरी।

होले के उत्सवों में धुलण्डी दूसरे दिन मनाने में टूटे रिश्तों को जोड़ने की कवायद अचंलवासियों का हृदय उत्साह, स्फूति और हर्ष की तरंगों से उद्वेलित हो उठता है—

गौरी तेरे नैना बड़े कटीले।
फागुन में ऐसेन चाइये, ये दिन रंग रंगीले।

× × ×

होली खेले उमा संग त्रिपुरारी
कर शृंगार उमा भई ढाडी,
देव हँसे सब दे तारी।

× × ×

मैं तोहि संग होली खेलूँगी
लोक लाज को मोहि डर नहीं,
दुनिया के बोलन सह लूँगी।

ब्रज में होली मची है। राधा सखियों का आह्वान करती है–

'चलो–चलो सखी खेलें होरी।
गिरी खोरी वर जोरी।
बनठन सब ब्रज योषिता, ले गुलाल निकालो बैर।।'

रसिया व ख्यालों के रूप में भी होली मनाई जाती है–

'बरसाने में सामने की होरी रे,
लाल गुलाल भये बदरा।
मारती भर–भर झोरी रे।।'

"काना बरसाने में आजाइयो
बुलायगयी राधा प्यारी।"

करौली के मदन मोहन मंदिर में होली के कई दिवसों तक राग–रंग होता रहता है—

आ जइयो श्याम बरसाने गाँव
तोय होरी खूब खिलाय दऊँगी
काना यों मत जाने भोरी है
हम बरसाने की गोरी हैं।
तेर कर सोलह शृंगार
तोय नर से नारि बनाय दऊँगी
तोय लहंगा चोली पहनाऊँगी
तेरे माथे बिन्दिया लगाऊँगी
तोय होरी खूब खिलाय दऊँगी।[1]

---

1. सीता देवी ग्रामीण महिला (छोटी उदेई) से साक्षात्कार।

लोक प्रिय गीतों में रसिया प्रमुख हैं। शृंगार व भक्तिपरक रसिया गाने वाले घासीराम और सीताराम प्रसिद्ध हैं।

मेरा बारो सो कन्हैया कालीदह पैखेलन आयोरी।
काहे की तेंने गैंद बनाई, काहे के डंडा लायो री ... मेरो

रेशम की पट गेंद बनाई, चन्दन का डंडा लायारी ,
मेरा बारो सो कन्हैया, काली दह पैखेलन आयोरी।।

ख्यालों में मांसलपुर, करौली, हिण्डौन, गंगापुर, ब्रह्मवाद, वैर प्रसिद्ध जगह रही हैं।

विभिन्न जातियाँ

पूर्वी राजस्थान अंचल में सम्पूर्ण भारत में पायी जाने वाली सभी जातियाँ निवास करती हैं। इन जातियों ने लोकजीवन का उन्नत करने में अपूर्व योगदान रहा है। इन सभी जातियों का विशद विवेचन निम्नानुसार है।

1. ब्राह्मण :- राजस्थान के पूर्वांचल प्रदेश में ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है किन्तु कर्तव्यनिष्ठता, लालच, भिक्षावृत्ति पाखण्ड का बोलबाला अधिक होने के कारण आज प्रश्नचिह्न खड़ा होता है। आज इनकी स्थिति दयनीय व शोचनीय है—

''बामन बारो बुकराट। पांडे जी पछतओगे, वही चने की खाओगे।
बामन को बैल। बामण का छोकरा, खाय भरै कै चर मरै।
बामन कुत्ता नाऊ जाति देखि बुराई।
भरी मथानियाँ फूली बमनियां?
बामन वचन प्रमाणिक।''[1]

ब्राह्मण का वचन प्रामाणिक होता है।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश पूर्वी राजस्थान के अंचल का लोक साहित्य पृ. 174

2. वैश्य :– वणिक जाति के लोग दूरदर्शी होते हैं। स्वभाव इनका कंजूस होता है। विपति में तथा धार्मिक कार्य में व्यय करता है। '**बाण्यों लिखै पढै करता**र'। बाण्या लिखता है उसे ईश्वर ही पढ सकता है—

'बनिया बनेटा गुर में चैंटा।
खाय भरो कर कैंटा।
× × ×
ठलुआ बनिया सेर बाँट तोले।
× × ×
भूले बनिया भेड़ खाई, अब खाऊ तो राम दुहाई।
× × ×
बनिया मित्र न वेश्या सती।।'

पूर्वांचल क्षेत्र में वैश्य को मेवे के वृक्ष की उपमा दी है, बनिया का इन्कार कर देने पर फिर नहीं देता है। इसलिए उसका नहीं कहना बुरा है। कार्तिक की वर्षा में बनिये के बुद्धि, चातुर्य वाक्पटुता अधिक होती है।

3. मालाकार :– मालाकार खेतीहर सब्जी, फल बोने व बेचने वाली जाति होती है। मालियों में दो प्रकार के होते हैं। वनमाली तथा फूलमाली। डांग क्षेत्र में वन माली व फूल माली दोनों प्रकार की हैं। माहुर, कटारिया, राजोरिया गौत्र के सैनी समाज की पूर्वी राजस्थान में संख्या अधिक है। इनके कुबेर के पुत्र महावर दो भागों में बाँटा है। पवाँर, दइय्या, मिटोबा, खडवाल, चांदोलिया, जमालपुरिया, पापाटवाण, सूईवाल, राजोरिया आदि प्रमुख है। आज के समय में करौली, धौलपुर, सवाई माधोपुर, हिण्डोन, गंगापुर क्षेत्रों में शिक्षा का प्रभाव इस जाति में कम है लेकिन धीरे–धीरे शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या निरन्तर बढ़ रही है।

4. जाट (चौधरी) :– वैसे तो जाट समुदाय पश्चिमी राजस्थान का शेखावाटी बाहुल्य है किन्तु पूर्वांचल ब्रज भरतपुर, हिण्डौन, करौली में भी इनकी तादाद बहुत है। इस जाति का स्वभाव अक्खडपन के लिए प्रसिद्ध है। पूर्वांचल में

कृषक, पशुपालक व जमींदार के रूप में जानी जाती है। कहावत प्रसिद्ध है ''**जाट जवाई भानजा रेवारी और सुनार**'' ये कभी किसी के साथी नहीं होते हैं। इनसे व्यवहार से परखा जा सकता है। अर्थात् व्यवहार में कमी की कहावत है। ब्रज भाषा में कहा है–

जाट कहे सुन जाटनी, याही गाम में रहनौ।
ऊँट बिलाई लै गई तो हाँजी हाँजी कहनौ।।

आगे एक कहावत और देखें–

नट विद्या जानी। पर जट विद्या नाही जानी।

5. राजपूत :– वैसे तो सम्पूर्ण राजस्थान में राजपूत जाति का वर्चस्व रहा है किन्तु पूर्वांचल की वीर भूमि में रणबाँकुरों की वीरता का गुणगान करना अतिशयोक्ति नहीं है। मातृभूमि पर अधिकार करना ही राजपूत की पहचान है। '**राजपूत की जात जमी**।'[1] माता और मातृभूमि की आन और शान के लिए मर मिटने की कसम प्रमुख हैं।

6. तेली :– तेल निकालकर तिलहन की खल बेचने वाले तेली कहलाते हैं। लोकोक्तियां प्रसिद्ध हैं। 'तेली का बैल' अत्यधिक परिश्रमी होना। '**तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हूँ**।' अर्थात् तेली के मस्तक पर कोल्हू अर्थात् व्यर्थ का बोझ।

तेली ते धोबी कब घाटि
बांको मोंगरा बाकी लाटि।।
× × ×
तेली खसम करकै का पानी ते हाथ धोवैं।

7. सुनार और लुहार :– सोने के आभूषण वाला स्वर्णकार तथा लोहे का कार्य करने वाला लोहार (लुहार) एक कहावत है 'सौ सुनार की एक लुहार की'

---

1. सं. कन्हैया लाल सहल : राजस्थानी कहावतें द्वि.सं.स. 2005 पृ. 129

अर्थात् सुनार की सौ चोट और लुहार की एक चोट कामयाब होती है। '**लोहो जानें, लुहार जाने, धौंकन हारे की बलाय जाने।**' कहावत है कि **सुनार माँ के गहने में से भी नहीं छोड़ता** है।

8. चर्मकार (चमार) :- पूर्वांचल में मीणा जाति की तरह चर्मकार (चमार) जाति की संख्या भी पर्याप्त हैं। ढेंढ को सुरंग में भी बेगार कोरी जाति का कार्य दरी बुनना। कुम्हार का मिट्टी के बर्तन बनाना व चमड़े का कार्य करना चर्मकार का कार्य होता है। नट तमाशा दिखाते हैं। धोबी कपड़ा धोने वाली जाति है। 'धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।'

धोबी ते न तेली घाटि।
बाको मोंगरा बाकि लाटि।।

इस प्रकार पूर्वांचल हिण्डौन, धौलपुर, भरतपुर, वैर, भुसावर, करौली, गंगापुर, बामनवास, सवाई माधोपुर, खण्डार क्षेत्रों में लोक साहित्य में इन सभी जातियों का विवरण मिलता है।

9. मीणा (मीना) :- पुराणों के अनुसार मीणा जाति की उत्पत्ति मीन भगवान् या मत्स्यावतार से मानी गई है। आज की सवाई माधोपुर, गंगापुर, बामनबास, हिण्डौन, टोडाभीम, धौलपुर, करौली क्षेत्र मीणा बाहुल्य क्षेत्र हैं जहाँ मीणा जाति का प्रमुख व्यवसाय कृषि व पशु-पालन है। शिक्षा का निरन्तर विकास होने पर भी पिछड़ा क्षेत्र होने के कारण इसे डांग क्षेत्र कहते हैं। पूर्वी राजस्थान का समृद्ध क्षेत्र में मीना (मीणा) मैना शब्दोच्चारण कर बोला जाता है। इनके गीतों में दंगल, डाचां आदि गीतों को गाया जाता है। अधिकांश क्षेत्र में मीना जाति अन्य जातियों से अधिक है।

जीना है संसार में तो चीज छोड़ दो-चार
चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नार

चोरी कैद कराती है, चुगली दे मरवाय
सिर कटवादे जामिनी, घर मिटवा दे नार।

× × ×

मीणा का समाचार आयां डाक गाड़ी में
ढोला तू तो आजा मोटड़ में, मैं आऊँ चीलगाड़ी में।
हाथ में अतर की शीशी कंधा पै थैली
तातै न्यू पूछूँ जावाड़ा कुनसा गाँव का छैला।[1]

रहन–सहन :– राजस्थान का पूर्वांचल हरा–भरा है तथा समृद्धिशाली प्रदेश हैं। यहाँ तीनों प्रकार (उच्च, मध्य व निम्न) के लोग ग्रामीण परिवेश में रहते हैं। इनका प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा पशु–पालन है। इनकी आय का स्रोत कृषि व पशुओं द्वारा होता है। मध्यम वर्ग के नौकरी पेश लोग हैं। ये व्यापार करने वाले धनिक वर्ग के गिने–चुने लोग हैं। यहाँ उद्योग–धन्धों का अभाव है। कमर तोड़ महँगाई में किसान मनवांछित पेट भी नहीं भर सकता है। निर्धन व्यक्ति की मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। अमीरी गरीबी का भेद भी यहाँ स्पष्ट दिखाई देता है।

उपज :– वर्षा की दृष्टि से औसतन बारिश होती है। किन्तु सिंचाई के बाँध, नहरों व नदियों की संख्या कम होने के कारण कुछ भू–भाग को ही पानी का लाभ मिल पाता है। वैसे तो राजस्थान में पश्चिमी विक्षोब से बारिश होती है। पूर्वांचल में पांचना बाँध, चम्बल की सहायक नदियों का लाभ धोलपुर, सवाई माधोपुर के क्षेत्रों में कुछ जगहों को पानी मिल पाता है। लगभग दोनों फसलें होती है। खरीफ की फसलों में बाजरा, मोठ, उड़द, मूँग, गँवार, चोल व रबी की फसलों में गेहूँ, जौ, चना, सरसों, राई, आंवला, गन्ना, मैथी, धनिया, प्याज, लहसून आदि की पैदावार होती है। फलों में अनार, सवाई माधोपुर क्षेत्र के अमरूद प्रसिद्ध हैं। नीबू, कैरी,

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 42

इमली, नारंगी, लेहसवा आदि की पैदावार खूब होती है। करौली, हिण्डोन, सवाई माधोपुर, खण्डार, महावीर जी सपोटरा की लाल मिर्ची बहुत प्रसिद्ध हैं।

खान–पान :– सम्पूर्ण भारत में खान–पान राजस्थान का है, जो कि पौष्टिक भी है। पूर्वांचल में बाजरा की रोटी सर्दियों में चने व मैथी की आलन की सब्जी, मक्का की रोटी चुपड़ कर गुड़ के साथ खाने का स्वाद ही निराला है। राबड़ी, दही, दूध, छाछ, रोटी, चूरमा, पूआ–पूडी खीर आदि व्यंजन है। पूर्वांचल की भोजन की विधि में अत्यंत पवित्रता शुद्धता व संयम का बडा महत्त्व रहा है। शुद्धिकरण पर्यन्त ही भोजन किया जाता है।

पूर्वांचल की सभ्यता है कि सर्वप्रथम ग्रास अन्न देवता के नाम का फिर स्वयं खाता है। सर्दियों में गुड़ खीचड़ी या खीचड़ी व तिल्ली का तेल डालकर खाने का स्वाद ही अलग है। यहाँ पशु–पालन की अधिकता के कारण घी में मिलावट नहीं होती है। आतिथ्य सत्कार प्रेम पूर्वक किया जाता है। पानी पीओ छानकर। रिश्ता करो जानकर। मूली, नीबू तथा अमरूद का उत्पादन अधिक होता है।

परिधान :– परिधान भोजन की तरह आवश्यक है। जैसे खाने से पेट भरता है। वैसे ही वस्त्र से शरीर ढकता है तथा फिटनेस जमती है। पूर्वांचल के वाशिन्दों की वेशभूषा, क्षेत्रीय जलवायु और उपलब्ध पदार्थों से सम्बन्धित एवं संस्कति की घोतक होती है। पूर्वी राजस्थान अंचल की वेशभूषा का सांस्कृतिक पक्ष इतना प्रबल है कि सदियों के गुजर जाने पर और विदेशी प्रभाव होते रहने पर भी यहाँ की वेशभूषा अपनी विशेषताओं को स्थिर रखने में सफल रही हैं। अंचल की वेशभूषा का कलात्मक पक्ष जीवन के अभावों की पूर्ति कामनाओं की पूर्ति जीवन की ललक प्रकट करता है। पुरुषों के पहनावा में कुर्ता, धोती, पगड़ी, बंगडी, मोटी खाल की जूती प्रमुख पहनावा है। स्त्रियों के परिधान में घाघरा, चोली व ओढ़ना, 64 कलियों का घाघरा आदि नवीन व को धारण करने की परम्परा है। विवाहितों के परिधानों

व अविवाहितों के परिधानों में सलवार सूट, जींस व घघरी बिलाउजों का अपना महत्त्व है। पूर्वांचल में पगड़ी का अनुचित सम्बोधन अपमान सूचक माना जाता है। केसरिया, चूनडी व गुलाबी सफेद पगडियाँ विशेषता पहनी जाती हैं। आज के पाश्चात्य प्रभाव के कारण धनिक वर्ग के कर्मचारी कोट, पेण्ट, शर्ट, टी-शर्ट, चढ्ढा धारण करते हैं। मुसलमान प्राय: लम्बी अंगरखी पर पायजामा पहनते हैं और स्त्रियाँ चूढीदार पायजामा और चूनडी पहनते हैं।

आभूषण :- सौन्दर्य का प्रतीक आभूषण होता है। पूर्वांचल में स्त्रियाँ दैहिक सौन्दर्य निखार के लिए आभूषण धारण करती हैं। टीका, बोरला, रखड़ी, शीश फूल। पहले 'बोरला' सुहाग का प्रतीक होता था। आजकल हल्का टीका व मंगल सूत्र को ही मान लेते हैं। कानों में बाली, नाथ की नथली, काँटा, गलपट्टियां, कड़े, पायजेब, छल्ले, कणकति, हाथ के कड़े, अंगुठियाँ आदि सोलह शृंगार के आभूषण कहलाते हैं। हाथों में स्त्रियाँ लाख का चूड़ा पहनती हैं, जो सुहाग का प्रतीक है। मेहंदी पूर्वी अंचल में सुहाग की प्रतीक मानी जाती हैं।[1]

विवाह के समय वर-वधु पक्ष आभूषण पहनाते हैं। दुल्हन के शृंगार में स्वर्ण-रजत आभूषण चढ़ाये जाते हैं या कन्यादान में दिए जाते हैं। पूर्वांचल में सभी जातियों में गहना चढ़ाने की रिवाज है। लड़का वालों के साथ-साथ लड़की वालों को भी देना होता है।

लोक-देवता

राजस्थान की गौरवशाली परम्परा में लोक देवी व देवताओं की पूजा-अर्चना व मन्नत का महत्त्व है। राजस्थानी संस्कृति, त्याग, तप और वीरता से ओत-प्रोत हैं। वीरता को पूर्वांचल में दैवीय शक्ति का प्रतीक मानते हैं। वचनों का निर्वाह, दानशीलता, गौरक्षा, मातृभूमि की रक्षा, स्त्री रक्षा, परदु:ख कातरता आदि गुणों के

---

1. सीताराम लालस : राजस्थान नूतन पुरातन, पृ. 198

कारण कई वीर देवों की श्रेणी में आ गये हैं। वीरोचित मृत्यु से लेकर महामारी तक इस समाज की उस अवस्था और विश्वास को जगाते रहे और इनके आस-पास तानाबाना बुनकर इस लोक ने अपने ही 'लोक देवता' की उत्पत्ति की।

पूर्वांचल के लोकदेवताओं का वर्गीकरण निम्नानुसार है-

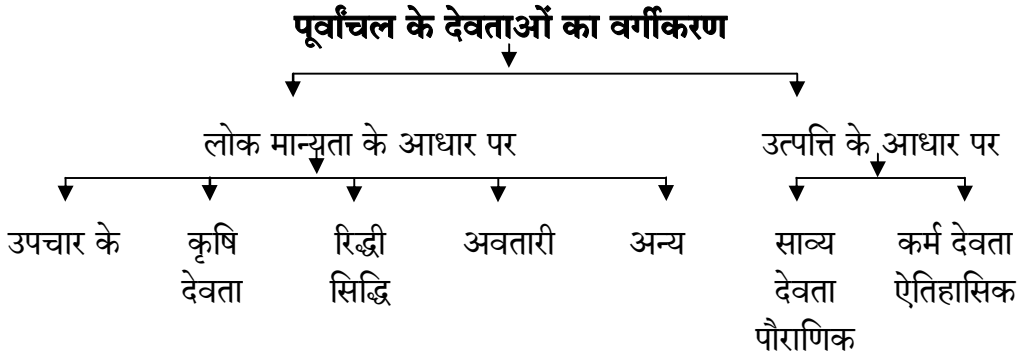

1. पित्तर-पितराणी :- पूर्वांचल राजस्थान प्रदेश में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा भावना मन में रहती है। वेद पुराणों में श्राद्धकर्म, पितृऋण, माता ऋण और गुरु ऋण की चर्चा की गई है। पितरों की पूजा श्राद्ध, तर्पण आदि क्रियाएँ की जाती है। कन्या में सूर्य आने पर 'कनागत' आते हैं अर्थात् कन्या राशि में सूर्यक्रांति के बाद उतरते आसोज (आश्विन) माह में श्राद्धतर्पण किया जाता है। रामचरित मानस में शिव पार्वती को रामकथा सुनाने से पूर्व पितरों को प्रणाम करते हैं तथा स्वयं श्रीराम ने सीताहरण पश्चात् जटायु को मोक्ष करने की बात कहने पर बोले जटायु में आपको मोक्ष करता हूँ किन्तु स्वर्गपधार कर पित्रों से यह मत कहना कि आपकी पुत्रवधु का अपहरण हो गया है, अन्यथा उनकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। श्राद्ध में विप्रभोज, कौआ व गाय माता को भोजन कराया जाता है।

पूर्वांचल ही नहीं राजस्थान में सर्वप्रथम मांगलिक कार्यों में पित्रों की पूजा से ही कार्य प्रारंभ होता है तथा उनके निमित्त रुपया, बताशे व पुष्पादि द्वारा स्थान दिया

जाता है फिर अन्य देवों की पूजा का विधान है। चाहे जडूला हो या विवाह या अन्य मांगलिक कार्य पूजा–पाठ सभी में इनका प्रथम ध्यान होता है। लोकाचार के अनुसार वस्त्र व अन्य समान बहन बेटी को इनके निमित्त का दिया जाता है।

2. श्री महावीर जी :– जैन धर्म को मानने वालों के देवता (ईश्वर) महावीरजी करौली जिले के हिण्डौन सिटी तहसील में मुम्बई रेलमार्ग के समीप है। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी से बैशाख कृष्ण प्रतिपदा तक लक्खी मेला भरता है। इस मेले में सम्पूर्ण भारत के जैन धर्मावलम्बियों के अलावा और भी आते हैं। जैन भाइयों के अतिरिक्त मीणा, गुर्जर, ब्राह्मण आदि भी मानते हैं। मेले की शुरुआत ध्वजारोहण से होती है। पहले सवाई माधोपुर जिले में आता था। इसका पूर्व नाम चंदन गाँव था। चर्मकार का हाथ लगाना जरूरी होता है। इस मंदिर को मूर्त रूप देने में जैन श्रावक अमरचन्द बिलाला का सर्वप्रथम योगदान रहा।

3. शिवाड़ :– हमारे पौराणिक धर्म के साहित्य में द्वादश ज्योतिर्लिंग का उल्लेख मिलता है। उनमें बारहवाँ ज्योर्तिलिंग शिवालय (शिवाड़) में स्थित है। शिवाड़ सवाई माधोपुर जिले में है। ईसरदा स्टेशन से तीन किलोमीटर उत्तर में है। घुश्मेश्वर महादेव घुश्मनाम द्वारा माँगे गये वरदान के अनुसार घुश्मेश्वर नाम चला।

4. कैलादेवी :– चैत्रमास की शुक्ला अष्टमी का मेला लगता है। त्रिकूट पर्वत की घाटी, जहाँ कैला देवी का मंदिर है हजारों लाखों भक्तों के कण्ठ स्वरों से गूँज उठती है। नर नारी, बालक, युवक और वृद्ध आत्म विभोर हो नाच उठते हैं। मंद और धीमी–धीमी लय के साथ गाये जाने वाले गीत, जय घोष के साथ तीव्र स्वरों से गाये जाने लगते हैं। देश के कोने–कोने से मनोती माँगते थे। यहाँ अन्य देवियों की तरह बकरों की बलि नहीं दी जाती है। युदुवंशी होने के कारण इनका सम्बन्ध श्री कृष्ण से जोड़ते हैं। योगमाया बिजली हाथ से छूट कर भूलोक के त्रिकूट पर्वत पर कैलादेवी के नाम से प्रसिद्ध हुई। प्रत्येक व्यक्ति के जुबान पर एक ही नाम रहता है।

दुनिया में रोशन नाम करौली वाली कैला को,
पर्वत ऊपर आय बास है, करौली वाली मैया को,
डाँगन में कैला गाँव, करौली बाली मैया को,
दूर–दूर के यात्री आवे, सुनि सुनि तेरो नाम
बजे नगाड़े तेरे भवन पर करौली मैया को
चैत महीना जगदम्बा को घर–घर मंगल धाम
करौली वाली मैया को...।[1]

× × ×

कैला देवी के भवन में घुटवन खैले लाँगुरिया।
दो–दो जोगनी के बीच अकेलो लाँगुरिया।

इस क्षेत्र की लोक देवी के रूप में आज भी पूजी जा रही है।

5. रणथम्भोर :– भ्रादपद शुक्ला चतुर्थी को मेला रणतभँवर जी के भरता है। लक्खी मेला भरता है। गणेश जी की महिमा निराली है। दिल्ली मुम्बई रेल मार्ग पर 3 मील दूर सुन्दर हरियाली भरी पहाडियों में ऊपर एक कुण्ड के पास श्री गणेशजी महाराज का छोटा मंदिर है। रिद्धि–सिद्धि और भण्डार भरने वाले गणपति चमत्कार जनता को आज भी आकर्षित किए हुए है। कोसों दूर प्रत्येक विवाह की कुम–कुम पत्रिका रणथम्भोर के गणेश जी को व्यक्तिगत रूप से पहुँचाई जाती है। रणतभँवर जी को प्रथम निमन्त्रण देकर आते हैं। इस इलाके के प्रमुख लोक देवता हैं।

6. मदन मोहन जी :– करौली स्थित प्राचीन राधाकृष्ण मंदिर है। जो चारों ओर से घिरे हुए हिस्से में पाँच सौ वर्ष पुरानी प्रतिमा है। जिसके दर्शन करने मात्र से कल्याण हो जाता है। करौली क्षेत्र के ही नहीं, कैला मैय्या की यात्रा करने वाले पदातियों को व यात्रियों को रूकने व दर्शन की व्यवस्था आसान है। ठाकुर जी की पूजा विधिवत् होती आ रही है। भक्त दर्शन लाभ ले रहे हैं।

---

1. डॉ. गोविन्द रजनीश : राजस्थान के पूर्वी अंचल का लोकसाहित्य, पृ. 30

राजस्थान के लोकदेवता रामदेव जी रूणिचा (रामदेवरा) का सम्बन्ध श्री कृष्ण से जोडा जाता है। अजमाल ने भगवान् के लड्डू फैंककर मारा ''अजमल ने प्रभु के सिर पट्टी बन्धी देखकर कहा कि नाथ आपको और यह कैसा कष्ट है। प्रभु ने कहा कि एक मेरे भोले भक्त ने लड्डू की दे मारी।''[1] अजमल जी के द्वारकाधीश ने पहले वीरमदेव का और बाद में स्वयं रामदेव के रूप में अवतार का वरदान दिया। वीरमदेव जी का जन्म हुआ फिर रामदेव जी ने अवतार लिया। रामदेवरा रामदेव जी ने बसाया।

''समत चतुरदस साल नव में, श्री मुख आप जगायो।
भणैरामदेव चैत सुद पाँचे अजमल घर में आयो।।''[2]

7. पाबूजी :- लोकदेवता पाबूजी आसनाथ जी के पौत्र और धाधंल जी के पुत्र थे। डॉ. नन्दलाल कल्ला के मतानुसार ''राजस्थानी वीर माला के सुमेरूरत्न रणबांका राठौड पाबूजी का जन्म संवत् 1341 में मारवाडा के कोलूगढ़ ग्राम में हुआ।''[3] पाबूजी ने गोगा जी को करामात दिखाई। ''तब गोगाजी देखने गए तो क्या देखते हैं कि जल का एक हौज भरा है। उसमें एक नौका है। उस नौका में दोनों घोड़े बैठे है और नौका सहित तैर रहे हैं। गोगाजी समझ गये कि पाबूजी ने भी अपनी करामात दिखाई है।''[4]

8. गोगा जी :- अजयपाल चौहान के परपौत्र भीम का पुत्र गोगा चौहान था। गोगाजी से सम्बन्धित नवीन ज्ञातव्यों में गोगाजी के नागों की पूजा होती है। तीन महिलाएँ उनके स्वागत के लिए तैयार रहती हैं। यद्यपि उनके नीचे लिखे अक्षर मिट चुके हैं।

---

1. रामदेव भक्तिगीत : इतिहास ब्यावला सहित सुभाष बेधडक पृ. 14
2. बाबा रामदेव : इतिहास एवं साहित्य डॉ. सोनाराम विश्नोई कल्ला, पृ. 35
3. राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति डॉ. नन्द लाल कल्ला, पृ. 50
4. राजस्थान के लोक देवता व लोक साहित्य : पुष्पाभाटी, पृ. 120

9. तेजाजी :- सम्पूर्ण राजस्थान में तेजाजी की मान्यता है। गोरक्षक, परोपकारी, धर्मपरायण, प्रतिज्ञापालक एवं सत्यनिष्ठ जुझारों की श्रेणी में जाटों के कुलदेवता तेजाजी का नाम अविस्मरणीय है। खडनाल (नागौर) में जन्म तथा रूपनगर (किशनगढ़) में विवाह हुआ। माता का नाम 'लछमा' पिता 'बख्ता' पत्नी 'बादल' थी।

भाद्रपक्ष की अष्टमी को मेला भरता है तथा कीड़ौ (नाग, बिच्छू आदि) का इलाज करते हैं। इनके स्थान पर ब्राह्मण को चढ़ने का निषेध होता है। अत: ग्रामीण अंचल के पूर्वोक्षेप में भी इनको पूजा जाता है तथा इनके स्थान पर जाकर धोक लगाते हैं।

10. रामदेवजी :- पोकरण में 1461 में तोमर राजपूत वंश में अजमल जी के घर जन्म हुआ। आज भी राजस्थान, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, गुजरात के भक्तगण रामदेवरा की पैदल यात्रा करते हैं। इनके चमत्कारों का बखान कहाँ तक करें। इनके चमत्कारों को हिन्दू ही नहीं वरन् मुसलमान भी मानते हैं। अत: साम्प्रदायिक एकता का अद्वितीय उदाहरण है। ये रामशाहपीर कहकर पुकारते हैं। कपड़े का घोड़ा चढ़ता है। इस मंदिर के पास एक कुण्ड है, जहाँ यात्री स्नान करते हैं और उस पानी को गंगाजल की तरह पवित्र मानते हैं। कुण्ड के ऊपर की खिड़की से कूदकर स्नान करने से कोढ़ ठीक होता है तथा अंधों को आँख मिलती है।[1]

11. भैरूजी :- तन्त्र साधनों में भैरवजी के सात्विक, राजसी व तामसी रूप है।

(i) सात्विक - श्वेत वर्ण, दो भुजाएँ, एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे हाथ में दण्ड, गले में आभूषण, दुपट्टा कछनी घुंघरू कड़े आदि। सौम्य रूप, हरे रंग, वृक्ष के नीचे दो श्वेत कुत्तों के साथ।

(ii) राजसी - उदय होते सूर्य के समान लाल वर्ण, सिर पर मुकुट, चार भुजायें दो हाथ वरद और अभय मुद्राओं में शेष दो हाथों में त्रिशूल और अग्नि सहित

---

1. मदन लाल, बसंत लाल शर्मा, मरू भारती, पृ. 63, 64

खच्चर, तीन नेत्र, मस्तक पर त्रिपुण्ड, नगर के समीप निवास और पास में दो लाल रंग के कुत्ते।

(iii) तामसी – नीलवर्ण भयंकर आकृति, आठ भुजायें, जिनमें डमरू, परशु और अंकुश सहित त्रिशूल खडग, पाश, सर्प, मुण्ड, अग्नि सहित खप्पर तथा एक हाथ में अभ्य मुद्रा में पीले केश गले में मुण्डमाला, पागा त्रिनेत्र मस्तक में त्रिपुण्ड, दिगम्बर, कमर और पैरों में घुंघरू सुनसान स्थान व दो–तीन वर्ण के कुत्ते। शिव गण के रूप में सती की रक्षा करते समय उत्पन्न हुआ वह भैरव कहलाया। भवानी पुत्र भी कहते हैं। राजस्थान के पूर्वी अंचल में क्षेत्रफल के रूप में पूजते हैं। करौली, माधोपुर के भैरव जी की पूजा का विधान कुछ भिन्न है।

12. मेंहन्दीपुर बालाजी :– मेहन्दीपुर घाटा पूर्वी राजस्थान के दौसा जिले में टोढाभीम के पास अवस्थित है। हनुमान जी व प्रेत राज की कृपा से ऊपरी हवाओं का निदान व दर्शकों को मनवांछित फल मिलते हैं। राजस्थान की अपेक्षा उत्तरप्रदेश, हरियाणा व दिल्ली के भक्तगण अधिक आते हैं तथा दर्शन लाभ लेते हैं।

उपवास (व्रत)

उपवास :– उपवास या व्रत करने से आत्मा की शुद्धि होती है। हिन्दू धर्म में ईश्वरीय कृपा हेतु प्रायश्चित्त के रूप में दैहिक मानसिक शुद्धि के लिए उपवास किया जाता है। किसी भी कार्य में व्यवधान आने पर आय के लिए भी व्रत (उपवास) किया है। देवी देवताओं की पूजा का विधान है।

1. नवरात्र :– श्राद्धपक्ष के समाप्त होने पर नवरात्र स्थापना घट स्थापना की जाती है। नवग्रह की पूजा करके पंच लोकपाल दश दिकपालों की कुल देवता स्थान देवता, पितृ देवता की पूजा की जाती है। नवग्रह सोडस मण्डल बनाकर माता की तस्वीर रखते हैं। जुआरे उगाते हैं पंचपल्लव कलश पर रखते हैं। गंगाजल से स्थान पवित्र किया जाता है। रोली, मोली, अक्षत सुपारी, पान, पुष्प लोंग, इलायची, धूप,

दीपक कर ध्वजा चढ़ाते हैं। जोत लेकर घी का दीपक जलाया जाता है। नव दिवस तक नित्य माता की पूजा, इष्टदेव की पूजा, दुर्गाशप्तशती, रामचरितमानस व श्रीमद्भागवत गीता के पाठ करते हैं। चने हलवा पूरी खीर का प्रसाद बनाकर नौ कन्याओं को कराते हैं तथा तिलक लगाकर चरण स्पर्श कर फल व दक्षिणा देते हैं।

2. एकादशी व निर्जला व शरदपूर्णिमा :– चैत्र की पूर्णिमा को हनुमान जयन्ती पर पूजा–अर्चना की जाती है एवं उपवास रखते हैं। श्रावण में शिव के सोमवार, प्रदोष तथा पूर्ण माह में ऊँ नम: शिवाय के जयकारे उठते हैं। श्रद्धालु कावड लाते हैं।

3. करवा चौथ :– कार्तिक कृष्ण चतुर्थी को महिलाएँ करवाचौथ माता का व्रत करती है। कहानी सुनाती महिलाएँ बुजुर्गों से आशीर्वाद लेती है। तेरह बिन्दु लगाकर लोटे को पूजती हैं। गणेश जी की कहानी कही जाती हैं। मीठ करवे अर्थात् चासनी के कुल्हड में चावल रुपया व ब्लाऊज पीस या अन्य वस्त्र रखने का विधान पूर्वी राजस्थान में देखने को मिलता है। चन्द्रमा का अर्द्ध देकर ही व्रत खोलती है तथा चिरायु पति के सुहाग की कामना करती है।

4. सत्यनारायण कथा :– प्रत्येक माह की पूर्णिमा को पूर्वी राजस्थान में विष्णु भगवान् की कथा सीताराम मंदिर में कही जाती है। तुलसी (शालीग्राम) की कथा सुनती हैं। आटे की पंजीरी में बूरा व केले के साथ दही या छाछ डालकर प्रसाद दिया जाता है। हवन करने की परिपाटी पूर्वांचल में है। सोलह सोमवार एवं सातों वारों के व्रत पूजा करने का विधान प्रचलित है। शमी वृक्ष की पूजा भी दशहरे को की जाती है।

लोक विश्वास

राजस्थान संस्कृति व सभ्यता के साथ–साथ परिवेश की दृष्टिसे पूर्वांचल में विविध प्रकार के लोक विश्वास घुले मिले दिखाई पड़ते हैं। लोकानुष्ठान किसी शास्त्रीय मान्यता पर आधारित होते हैं। न किसी पुरोहित के माध्यम या पारम्परिक

रीति से जुड़े होते हैं। कुछ अनुष्ठान पारिवारिक रीति–रिवाजों धार्मिक कृत्यों से जुड़े होते हैं। भाँति–भाँति के देवी–देवताओं की पूजा, भूत प्रेत, साधना, यक्ष एवं आत्माओं की सिद्धि, वृक्षों एवं नदियों की पूजा, तन्त्र–मन्त्र शकुन–अपशकुन, पशु–पक्षियों की बलि, थानों चौकियों एवं गदि्दयों की साधना एवं विभिन्न जादू टोने आदि लोक विश्वासों के अन्तर्गत ही आते हैं। जैसे विवाह के समय खटाई का निषेध किया जाता है। क्योंकि रिश्तों में खटाई न पड़े। सुसराल जाते समय खट्टी व भुनी हुई वस्तु साथ में नहीं भेजते हैं। पाणिग्रहण कर पुत्र वधु को कांकड पर पैर रखवाने से पूर्व नारियल की चटक कराना शुभ मानते हैं। ऐसी अंध विश्वास की बातें है। क्षेत्रपाल, पितृ, भैरव, भौमिया, आखा देखना जोत देखना आदि लोक विश्वासों की श्रेणी में ही आते हैं। शरीर में आकर प्रश्न पूछने वालों की समस्याओं को सुनकर उनका निदान करते हैं।

लोक विश्वास पर रक्षक देवता की कृपा प्राप्त करने के लिए जन सामान्य चूरमा, लापसी और हलवा आदि का भोग लगाते हैं। दक्षिण दिशा (लंका) यम की दिशा होने के कारण कोई भी शुभ कार्य नहीं करते हैं। सभी शुभ कार्य पूर्व दिशा की ओर ही किये जाते हैं। बौवनी बगर उधार नहीं देना शुभ कार्य में छींक का आना। औरतें अपने से बड़ों (श्वसुर, ज्येष्ठ, पति) का नाम नहीं लेना। लोक विश्वास के अनुसार खरीद के ही तिल खाना नहीं तो बहकर देने वाला लोक विश्वास है। रात्रि में कपड़े धोना ताली बजाना अशुभ मानते हैं। दाहिने हाथ में खजुली धन प्राप्ति, बाँये हाथ में नुकसान होना। कानों पर बाल नाक पर मस्सा भाग्यशाली होना। मुख पर मक्खी आना कलह होना। बिल्ली का रास्ता काटना कार्य नहीं होना कुत्ते का कान फटकारना अशुभ मानते हैं।

हिचकी आना प्रिय व्यक्ति को याद करना। कौआ आना अतिथि आगमन को सूचना देना। पुरुष की बाँई तथा स्त्री की दाहिनी आँख फडकना अशुभ मानते हैं।

पल्ला सिर पर आना या धोती उलटना। नवीन वस्त्र प्राप्त होना। पूर्वांचल क्षेत्र में लोक विश्वासों व मान्यताओं के साथ-साथ जादू-टोने भी देखने को मिलते हैं। रूढियाँ, विश्वास धर्म आदि रूपों में प्रचलित है। भोजन करने के उपरांत अंगडाई लेना गधे के पेट में भोजन जाना। नौकरी के प्रयास में खाना साथ नहीं भेजते। पति परदेश में हो तो सिर नहीं धोती। रास्ते में भरी मटकी शुभ लकड़ियाँ अशुभ होती है। रात्रि में तारे का टूटना। उल्का पात मृत्यु का सूचक है। तारा टूटने पर देखने निवृत्ति 'बड़ा फल का क्या नाम श्री फल।'[1] मोरों को मोडी की रूंधी आवाज से किसी की मृत्यु का संकेत मिलता है। कोचर रात्रि में किसी प्राणी के होने का संकेत देती है। पूर्वांचल में यह मान्यता है कि मोरों को यमराज के दूत दिखाई देते हैं।

पूर्वी राजस्थान में असंख्य जादू-टोने व टोटके प्रचलित है। इनमें जन साधारण की दो मान्यताएँ प्रचलित है। एक जो जन्म-मन्त्र कल्याणार्थ किये जाते हैं और दूसरे विरोध और बुराई के लिए किये जाते हैं। भलाई वाले जादू टोनों में भूत निकालने वाले, आधा शीशी या बायवादी, सर्प बिच्छू, पीलिया, मोतीझरा, पानीझरा, बुखारों के डोरे, पशुओं के डोरे। बच्चा होने नजर न लगने के किये जाने वाले टोटके। वैर विरोधी जन्त्र-मन्त्रों में अपने शत्रु पर मूठ मारने, मरवाने, पुतले गाडने दाह लगाने, कलेजा निकालने, वशीकरण आदि अनर्थकारी कृत्यों में किये जाते हैं।

बच्चों को नजर का टोटका पूर्वी राजस्थान में चिमटे पर तेल की बत्ती बनाकर आगलगवें चप्पल से बच्चे के सामने 7 बार धरती पीटें। लाल मिर्ची नमक की ढली और राई से उतार कर चौराहे पर डालें। खसरे में तकिये के नीचे नीम की पत्तियाँ रखी जाती है। नजर उतारने के लिए बच्चे का झूंठा दूध कुत्ते को पिलाया जाता है। होली दीवाली पर चौराहे पर मासिक धर्म में पार करने का निषेध है। मंगल को सिर धोना, बुध को नई चूड़ियाँ पहनना वर्जित है। 'मंगल को धोइये न जूड़ा बुध को पहनिये

---

1. सं. मदन लाल शर्मा, बसंत लाल शर्मा, मरू भारती अप्रैल 1995, पृ. 46

चूड़ा।' बुध रति को बेटी विदा नहीं करते। गुरु को सिर व कपड़ा नहीं धोते हैं। खाना-खाते-पीते समय छींकने पर शुभ तथा पनघट जाने पर छींकना अशुभ मानते हैं।

''छींकत खाय छींकत पीये, छींकत रहिये सोये।
छींकत पनघट कदे न जाये, आछी कदे न होय।।''[1]

बुधवार के दिन हल जोतना तथा खेती काटना शुभ होता है। '**बुध की बावणी, शुक्र की लावणी।**' **ग्रहण के समय** कोई भी शुभ कार्य नहीं करते। गर्भवती महिला को बाहर निकलने के लिए **निषेध** किया गया तथा घर के सभी कोनों में गेरू का छिड़काव करते हैं। **दशहरे, एकादशी व अमावस्या** को मरने वाला स्वर्ग में जाता है। पूर्वांचल राजस्थान में मानवीय जीवन में विविध पक्षों में लोक विश्वासों ने अपनी जगह बनाली है।

तन्त्र-मन्त्र, टोने-टोटक व लोक विश्वासों में इतनी गहराई से न जानकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी अपनाने में रहता है। आज 21वीं शदी वैज्ञानिक युग की है किन्तु धर्म, संस्कार व परम्पराएँ आज भी मानवीय जीवन को किसी-न-किसी मार्ग में रोकती हैं। लोक विश्वास मान्यताओं व लोक ख्यालों में जादू टोने देखे जाते हैं। आल्हा उदल प्रसिद्ध लोकरसात्मक गाथा है। इस प्रकार वैदिक काल से आज तक संस्कार, आश्रम व ऋणों से ग्रसित मानव लोक विश्वास अन्धविश्वासों व रूढियों से ग्रसित रहा है।

कृषि प्रधानता

भारत एक विशाल प्रजातन्त्रात्मक देश है तथा आधार कृषि है। पूर्वांचल की संस्कृति परिवेश व सभ्यता में ग्रामीण जीवन की झलक कृषि पर दृष्टिगोचर है। छः ऋतुओं खरीफ व रवि की फसल के साथ-साथ हरी-भरी शाक-सब्जियों की पैदावार होती है। यद्यपि पानी की कमी होने पर कुओं नहरें व विद्युत संसाधनों से

---

1. सं. कन्हैया लाल सहल : राजस्थानी कहावतें, द्वि.सं. सं. 2005, पृ. 125

भूमिगत जल निकालकर खेती को पानी पिलाने की व्यवस्थाएँ की जाती है। तीनों वर्गों के लोगों में परस्पर आपसी सहयोग व प्रेम की भावना होती है तथा किसान द्वारा पैदा किया अनाज, फल, सब्जी व पशुओं का चारा अन्य लोगों को बेचकर अपनी आजीविका वहन करता है, जिसमें समाज का प्रत्येक वर्ग परस्पर क्रय-विक्रय करके सहयोग प्रदान करता है।

समाज का विकृत रूप

पूर्वी राजस्थान क्षेत्र की सभ्यता संस्कृति व समाज में विकृत रूप भी देखने को मिलता है। 'जमूरा' नामक लोक कथा में छोटा-सा बालक एक दुकान पर झूठे बर्तन धोता है तथा वस्त्रों के अभाव में कड़ाके की ठण्ड सहता है। एक कम्बल मिलता उसे भी पिता जुएँ में भेंट चढ़ा देता है। जमूरा चिकित्सालय में भर्ती होता है तथा जिन्दगी और मौत से लड़ता है। निर्दयता, चापलूसी, ईर्ष्या, विरोधी विचारधारा राजनीतिक सरगर्मियाँ, शोषण, विमाता को ईर्ष्या, विधवा के साथ अनुचित व्यवहार, अनैतिक रिश्तों की आवाज आदि ऐसे सन्दर्भ हैं जिनके कारण समाज का विकृत भौंड़ा रूप दृष्टिगोचर होता है। साथ ही समाज के प्रत्येक वर्ग व जाति के लिए समर्पण भाव स्पष्ट झलकता है। शोषक-शोषण की नीतियाँ सिद्धान्तों की लड़ाई आदि। आज समाज के प्रत्येक वर्ग में सहयोग की भावना है। पुरानी सडी गली परम्पराओं को छोड़कर मानवीय सोच परिवर्तित हो चुकी है और पूर्वांचल क्षेत्र के हिण्डौन, करौली, सपोटरा, सवाई माधोपुर, गंगापुर, बामनवास व आस-पास के सभी क्षेत्रों में समाज की नवीन परिधियां बन रही है जो लोक विश्वासों के साथ-साथ समाज को नयी-नयी राहें दिखाती हैं।

निष्कर्ष

पूर्वी अंचल के लोकसाहित्य में सभ्यता यहाँ के वाशिन्दों की जीवनचर्या, कृषि, पशु-पालन, विवाह, गृहस्थी जीवन में होने वाले संस्कारों, परिवर्तनों एवं

लोकविश्वास की नवीन छवियाँ करौली, सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य में द्रष्टव्य है। देवी–देवताओं में भैरूंजी, भौमिया, गणेश, कैला मैया, चौथ माता, शिवाड़, मदनमोहन जी, महावीर जी के गीतों में लोकजीवन की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। लोकजीवन की झाँकी ग्रामीण परिवेश में जीवित समाज से विशिष्ट पहचान बनाती है। आज के समाज में विविधता होते हुए भी लोकसाहित्य सभी समाजों को एक सूत्र में पिरोकर संस्कृति की परम्पराओं को सँजोये हुए है। मानवीय संवेदनाओं की मूल अभिव्यक्ति यहाँ के लोक साहित्य में विद्यमान है। मेले, उत्सव, त्योहारों की मनमोहक छटा यहाँ के लोक जीवन में व्याप्त है। मानव एवं मानवेत्तर सम्बन्धों का सुन्दर संयोजन पूर्वी राजस्थानी संस्कृति की विशिष्ट पहचान है।

❑

अध्याय–षष्ठ

पूर्वी राजस्थान के लोक–साहित्य का वैश्विक महत्त्व

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य का अनुसंधान परक विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ है कि भारतीय वाङ्मय की एक विशिष्ट सम्पदा है, जो जीवनमयी गंगा सदृश्य पवित्र है। लोक साहित्य की सरसता व स्वाभाविकता दृष्टव्य है। पूर्वांचल की सभ्यता 'वसुधैवकुटुम्बकम' की भावना से ओत–प्रोत है। साहित्य में लोक मंगल की कामना से भावी जीवन को नई राह मिलती है। जन समस्याओं को समझने में लोक साहित्य का ज्ञान आवश्यक है। समाज का आतंरिक विधान जिन तीलियों पर बना है, उसकी मौलिक व्याख्या लोक साहित्य के पास ही है। जिसके द्वारा विविध सभ्यताओं संस्कृतियों और समाज निर्माण के धरातलों का निर्णय हो सकता है। लोक साहित्य में लोक–मानस जितनी शुद्ध अवस्था में प्रतिबिम्बित होता है, सुरक्षित रहता है, उतना ही किसी दूसरे माध्यम में नहीं रहता। इसमें मानस के प्राचीन रूप के अवशेष प्रकट होते हैं। फलत: लोक साहित्य में जो सामग्री मिलती है वह मानव की उस अवस्था के मानव अवशेष की है, जब वह सभ्यता से बहुत दूर था। जनमानस में पथ प्रदर्शन की दृष्टि से भी लोक साहित्य की उपयोगिता सहज ही स्पष्ट हो जाती है। सामान्यत: मनुष्य कुछ खोकर ही कुछ सीखता है।

डॉ. सत्ये के शब्दों में ''लोक साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता जितना परम्पराओं की दृष्टि से होता है जो नृविज्ञान के किसी पहलू पर

प्रकाश डालती है। इस साहित्य को आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियों का चौथा कोस कह सकते हैं।''[1]

लोक साहित्य संकलन प्रेमियों की लालसा रहती है कि चाहे वह स्मृति में रहे या पोथियों में, किन्तु वे उन निधियों का पूर्ण संग्रह अवश्य करेंगें। राजस्थान में वह परम्परा भी प्राचीन काल से चलती आई है। जिसके परिणाम स्वरूप हस्तलिखित ग्रन्थों में भी लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। मात्र साहित्य की अपेक्षा लोक साहित्य ही ऐसा गुरु है जो देश एवं जाति की सभ्यता के विकास की, उसके जीवन की गतिविधि तथा उसके सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की झांकियों के दर्शन करवा सकता है। इन परम्पराओं को सुनने समझने और उनका ज्ञान प्राप्त करने में लोक साहित्य का अद्वितीय योगदान रहा है। भारतीय संस्कृति के गौरवशाली इन्द्रधनुषीय रंगों में सरोबार राजस्थान की बहुरंगी लोक संस्कृति की विश्व मोहिनी छटा ने विश्व में अपनी अनूठी पहचान बनाई है। आश्चर्य जनक तथ्य यह है कि प्रकृतिजन्य अकाल या बाढ़ किसी विभीषिका को झेलने के बाद भी राजस्थान के पूर्वाचंल क्षेत्रवासियों के मन में मिट्टी की गंध, उत्साह, उल्लास व प्रसन्नता हर्ष और आस्था की बहुरंगी छटा बिखेर रखी है। राजस्थान की गौरवशाली परम्परा की अविरल धारा में से प्रवहित संस्कारों की विलक्षण प्रतिभा पूर्वक्षेत्र के जन-जन के हृदय मानस में स्पष्ट परिलक्षित हैं तथा आमजन को नवीन दुराग्रहों से अलग करती दिखाई दे रही है।

1. ऐतिहासिक महत्त्व :- राजस्थान के पूर्वाचंल के लोक साहित्य में सामग्री का प्रभूत संचयन रहता है, जो युग समाज और व्यक्ति को इतिहास को सजीवता प्रदान करती है। समयाघात से विलुप्त एवं विस्मृत घटनाएँ लोकानुमति द्वारा लोक साहित्य से प्रश्रय पाती हैं। संसार के इतिहासवेत्ताओं को लोक साहित्य के माध्यम से अतीत सम्बन्धी अमूल्य सामग्री प्राप्त होती है। जो उनके ज्ञान को पुष्ट करती है।

---

1. सोहन लाल चारण : राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन प्रथम 1980 पृ.सं. 1

2. भौगोलिक महत्त्व :- लोक साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न भौगोलिक स्थानों, नदियों, पर्वतों समुद्रों दीपों आदि का उल्लेख मिलता है। विविध प्रकार के व्यापारिक संसाधनों आवागमनों विभिन्न ऋतुओं के देशकाल जलवायु वातावरण आदि का वर्णन भी उपलब्ध होता है। लोक साहित्य में देश की युगानुरूप परिस्थितियाँ व भौगोलिक स्थितियों का वर्णन दृष्टिगोचर हैं।

3. नैतिक महत्त्व :- लोक का नैतिक स्तर लोक-साहित्य में अत्यन्त सजीवता से निरूपित होता है। सदाचार और पवित्र निष्ठा में पले हुए पावन चरि लोक-साहित्य के अध्येता को भाव विह्वल किये बिना नहीं रहते हैं। आदर्श सती नारी का दिव्य रूप, पिता का त्याग, पुत्र का प्राकृतिक वातावरण में पोषित होने वाली लोकगीतों की निरन्तर प्रवाह धारा दिखाई देती है। बसन्त में राजस्थान की धरती नवीन शृंगा धारण करती है, तो हमारी जनता भी 'गैर' व 'घूमर' जैसे नृत्यों को गाने लगती है। गर्मी की ठंडी रातों में ऊँट पर सवार 'कतारिये' अपनी लम्बी यात्रा गीतों के सहारे ही पूरी करते हैं। श्रावण भादो की बरसाती रातों में जब 'वीजनी' प्रियतम की राह देखती हुई व्याकुल हो उठती है, तो लोकगीतों में उसके भाव फूट पड़ते हैं। हमारा कोई भी कार्य लोकगीतों के बिना पूरा नहीं होता है।

निकम्मे लोगों को अक्ल आ नहीं सकती
हराम का खाने की आदत जा नहीं सकती
अपने हाथों अपनी किस्मत फोड़े जा रहे हैं
आज करने का काम कल पै छोड़े जा रहे हैं।

× × ×

बरसात का पानी और जवानी का पैसा
वक्त में न रोका तो अक्लमंद कैसा।

4. सांस्कृतिक महत्त्व :– पूर्वी राजस्थानी संस्कृति व सभ्यता पुरातन है। समाज में व्याप्त सांस्कृतिक अनुष्ठानों का वर्णन भी लोक साहित्य में लक्षित होता है। लोक–मानस की सांस्कृतिक उन्नति एवं अवनति का प्रामाणिक मानचित्र लोक साहित्य में ही प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति में लोक जीवन की व्याप्ति है। साहित्य में इसी लोक जीवन के सर्वांगीण तत्त्वों का दिग्दर्शन होता है।

5. आर्थिक महत्त्व :– प्रत्येक युग के जीवन की आर्थिक स्थिति का चित्रण लोक–साहित्य में लक्षित होता है। जहाँ लोक साहित्य में धन–धान्य से पूर्ण सम्पन्न समाज में सोने की थाली में छप्पन प्रकार के पकवान परोसने का वर्णन मिलता है। वहीं दरिद्रताग्रस्त परिवारों का निराहार दिन काटने की करूणापूर्ण स्थिति का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

6. धार्मिक महत्त्व :– धर्म समाज का अभिन्न अंग है। पूर्वी राजस्थान के लोक–साहित्य में समाज और धर्म का यह अटूट सम्बन्ध सर्वत्र प्राप्त होता है। विभिन्न देवी–देवताओं की आराधना, नदियाँ, पर्वत, सर्पों, वृक्षों आदि की पूजा विभिन्न प्रकार के व्रत, तप, यज्ञ, दान आदि के आयोजन भी लोक साहित्य में वर्णित रहते हैं। किसी विशिष्ट समाज के अनेकानेक नैतिक एवं धार्मिक पक्षों का वास्तविक परिचय लोक साहित्य द्वारा ही संभव है।

पूर्वांचल के लोक साहित्य में बारहमासा, ऋतुवर्णन, देवी–देवताओं, गाथा और वाणियाँ जीवन दर्शन एवं प्रेरक प्रसंगों की अमिट छाप स्पष्ट परिलक्षित है—

जीना है संसार में तो चीज छोड़ दो–चार
चोरी, चुगली, जामिनी और पराई नार।
चोरी कैद कराती है, चुगली दे मरवाय
सिर कटवादे जामिनी, घर मिटवादै नार।

7. सामाजिक महत्त्व :- लोक साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है। अत: इस समाज के पहलुओं का सुख दु:ख, राग-विराग, आशा-निराशा, ईर्ष्या द्वेष आदि मनोभावों का एक रीति-रिवाज आचार-विचार, रहन-सहन विश्वास और परम्पराओं का सजीव चित्रण प्राप्त होता है। समाज में व्याप्त समस्त सम्बन्धों का भावात्मक निरूपण तथा विभिन्न जातियों का पारस्परिक अनुबंध इसमें प्राप्त होता है। किसी समाज का सर्वाधिक सच्चा और स्पष्ट रूप देखना हो तो उसके लोक साहित्य में ही स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। पूर्वाचंल का समाज इन सभी विशेषताओं को लिए हुए है जो कि सामाजिक परम्पराओं से मिश्रित है।

8. भाषा शास्त्रीय महत्त्व :- लोक भाषा में वांछित होने के कारण लोक साहित्य का भाषा वैज्ञानिक महत्त्व भी है। भाषा विकास के क्रम में बोली का असाधारण योग है। शब्दों के प्राकृतिक निरूक्त ज्ञान के लिए हम बोलियों का अध्ययन करते हैं। लोक बोलियों के प्राकृतिक शब्द रूप लोक-साहित्य में ही प्राप्त होते हैं।

पूर्वी राजस्थान का लोक साहित्य

साहित्यिक महत्त्व :- मानव अर्न्तमन से उद्‌भूत रागानुरागमयी भावनाओं की अभिव्यंजना साहित्य है। लोक-साहित्य की आधारभूमि भी मनुष्य हृदय तन्त्री से झंकृत उल्लास और अवसर-युक्त भावतरंगों से रसाप्लावित है। सुख दु:ख आशा निराशा, हास्य रूदन के कठिन घात-प्रतिघातों से भावानुकूल होकर मनुष्य संवेदनशील हो उठता है। जब हृदय की संवेदना ही मानव की वाणी में विलक्षित होती है तो, साहित्य की सृष्टि होती है। साहित्य सदैव लोक सापेक्ष भाव राशि है। लोक से मुक्त उसका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। लोक एक अनन्त चेतनाशील सत्ता है। जो जीवन का प्रतीक और जन का पर्याय है। ग्राम या साधारण जनता तक ही इसका अर्थ सीमित नहीं है, समस्त चराचर मात्र में लोक की सत्ता से अनुप्राणित है। मनुष्य

का सांस्कृतिक उत्थान साहित्य में व्यक्त होता है। भारतीय साहित्य में जिस संस्कृति का चित्रण हुआ है वह लोक जीवन में परिपुष्ट है। समष्टि और व्यष्टि तत्त्व के लोक साहित्य का ऐसा उत्तुंग श्रृंग है। जिस पर आरोहण करने के पश्चात् ही लोक वार्ता के प्रति अति विस्तीर्ण क्षेत्र में चतुर्दिक् दृष्टिपात किया जा सकता है। यह समग्र संस्कृति के क्षितिज का वह मिलन बिन्दु है। जहाँ राजस्थानी पूर्वाचंल की सभ्यता परिवेश, परम्पराओं में व्याप्त रूढ़ियों व अन्धविश्वासों से परे होकर साहित्य की पराकाष्ठा को अर्जित किया है जो कि ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना से ओत-प्रोत रहा है।

पूर्वी राजस्थान का लोक-साहित्य जीवन को सर्जनात्मक गति प्रदान कर शोभायमान हो रहा है। सार्वजनिक सम्पदा के रूप में जन-मन का मोदन कर रहा है। शिशु अपनी निश्छल अभिव्यक्ति लोक साहित्य के माध्यम से करते हैं। यौवन उन्माद लोक साहित्य में अभिव्यक्त है। सौभाग्यवती के मान प्रसंग, नाज नखरे, विरहिणी का करुण क्रन्दन और संदेश प्रेषण, सौतिया डाह से पीड़ित नारी का दोष, सासनन्द एवं जेठानी का दुर्व्यवहार से विक्षिप्त हृदय नव प्रणिता की कातर वाक्यावली आदि अनेक बाते लोक साहित्य में ही साकार होती सी प्रतीत हुई है। पराक्रमी वीरों के शौर्य एवं साहस की संस्तुति लोक साहित्य में ही है। लोक साहित्य लोक को दु:ख की घड़ियों में सांत्वना देता है, ढांढस बंधाता है और सुख के क्षणों में उसका आह्लाद करता है।

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में विविध विधाएँ जन्म से ही संस्कार वान हुई है। जीवन की परम आवश्यकता के रूप में नाना प्रकार से मनुष्य जीवन में प्रस्फुट हुआ है। कभी वह हँसी-मजाक के रूप में जनवार्ता बना, कभी उसने मानव अनुभूतियों से ओत-प्रोत मानव कंठ पर मुहावरों एवं कहावतों का रूप धारण किया, कभी उसने स्वर लहरियों को शब्दों का वाहन बनाकर गीतों को मूर्त रूप दिया, कभी वह ऊबते हुए समाज के लिए नाना प्रकार की दिलचस्प कहानी, किस्से बन गया। कभी वह टेडी-मेडी लकीरों एवं रंग के स्ट्रोक से जीवन की गहनता प्रकट किये हुए

लोक चित्र बन गया। अत: सादगी और स्वाभाविकता से परिपूर्ण लोक साहित्य से अनिवर्चनीय आनन्द की प्राप्ति होती है। जिसे हम शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकते।

यूनान मिश्र रोम और चीन की प्राचीन संस्कृतियाँ लुप्त प्राय: हो गई हैं, किन्तु हमारी भारतीय संस्कृति अपनी सत्ता ज्यों की त्यों सुरक्षित बनाये हुए है। इसलिए कि भारतीय संस्कृति की आत्मा लोक संस्कृति है। भारतीय लोक संस्कृति प्रदान अवदान है 'आत्मीयता' अशिक्षित गँवार व्यक्ति भी राम–कृष्ण, विष्णु, ब्रह्मा, राम–कृष्ण के सम्बन्ध में लोक जीवन व लोक संस्कृति को समझ सकता है।

जिसे देश का लोक साहित्य जितना अधिक समृद्ध, अधिक व्यापक और स्वाभाविक होगा, उसकी संस्कृति उतनी ही समृद्ध, प्रशांत और स्थायी होगी। साहित्य साधारण मानव के मष्तिष्क पर जिस अज्ञात और स्वाभाविक रूप में घुला मिला रहता है वहीं उसके दृश्य रूप सभ्यता में दृष्टिगोचर होता है। आज हमारा सांस्कृतिक जीवन सुखी और स्वस्थ है। उसका अनुभव हम तभी कर सकते हैं, जब होली की ताल की स्वर मिलाकर होली के गीतों का रस ग्रहण करें। लोक साहित्य लोक संस्कृति के निर्माण करने का उत्तरदायित्व भी वहन करता है और उसका निर्वाह करता है। यद्यपि रुचि, कल्पना, लहर मात्र के लिए लोक साहित्य में कोई भी स्थान नहीं है फिर भी लोक साहित्य जिस तरह से लोगों में घुल–मिल जाता है। उसमें कल्पना का भी अभाव नहीं और न बुद्धि तत्त्व की अवहेलना। रागात्मिका वृत्ति के सम्बन्ध में तो सर्व सम्मत है कि उसका सम्बन्ध व्यष्टि से अधिक समष्टि से है।

लोक संस्कृति का विकास लोक संस्कारों पर निर्भर करता है और संस्कार परम्परागत होकर भी रुढ़ि का पर्याय नहीं है। वह व्यक्तिगत संस्कार से भिन्न है जो व्यक्ति की तरह जन्म लेकर मरता नहीं अपितु विकसित होता रहता है। 'आनन्द' उसका स्रोत है और मंगलभावना उसका प्राण। परन्तु वह आनन्द व्यक्तिमानस का होकर लोक–

मानस का होता है। लोक कला साहित्य और संगीत के माध्यम से संस्कृति का जो रूप हमारे सामने आता है। उसमें व्यक्ति कहीं नहीं दिखाई देता, न तो संरक्षक के रूप में न सृष्टा के रूप में। यह विशेषता समाजगत इकाई का द्योतक है। लोक संस्कृति किसी भी शिष्ट समाज पर आश्रित नहीं रहती अपितु शिष्ट समाज लोक संस्कृति से समय-समय पर प्रेरणा प्राप्त करता रहता है।

लोक गीतों में मनुष्य अपने आस-पास की दुनिया की पूरी कहानी सुनाता है या सुनता है, देखता, दिखाता है। पानी की तरह बहते इस साहित्य को सच्चे अर्थ में लोक साहित्य कह सकते हैं। लोक साहित्य में कथा-कहानी, इतिहास, पुराण, नाटक आदि। सभी एक स्थान पर मिलते हैं। लोक साहित्य के ऐसे महत्त्वपूर्ण अंगों में ये चीजें सहज ही आ जाती हैं। लोक गीत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक हैं। काल, इतिहास, विश्वास, समाज-विज्ञान, धर्म नीति आदि ज्ञान की विविध धाराओं के अध्ययन में इनसे बहुत अधिक सहायता मिल सकती है। समाज के रूप को जितनी अकृत्रिमता के साथ लोक गीत सामने लाते हैं उतना संभवत कोई दूसरी प्रणाली नहीं ला पाती।[1]

पूर्वी राजस्थान (करौली एवं सवाई माधोपुर) में लोकसाहित्य का विवेचन

लोक जीवन की सभ्यता संस्कृति परिवेश की वस्तु स्थिति समाज के सभी वर्गों के लोगों के गीतों की अनुगूंज प्रकट करती हैं। सोलह संस्कारों, चारों आश्रमों, आठों विवाहों की अनुभूति परक लोक कथाएँ, पौराणिक कथाएँ तथा लोकगीतों द्वारा गुंजायमान साहित्य ही लोक साहित्य कहलाता है। इन्ही द्वारा पुत्र जन्म, उत्सव, विवाह के मांगलिक लोकगीत गौना के लोक गीत प्रमुख है। विशुद्ध भावों से परिपूर्ण लोकगीत पूर्वाचंल की संकृति की विराट् चेष्टा को प्रकट करते हैं। पूर्वाचंल में मातृभूमि के गर्भ में से निकलने वाले गीत गंगा की तरह निर्मल, हिमालय की तरह

---

1. स. रामनाथ सुमन, शम्भु बहुगुणा का लेख, लोक में साहित्य में लोक जीवन की व्यापक अनुभूति, पृ. 196

अडिग और शरद के शब्दों में मंदिर की भाँति पवित्र है। सद्‌गुणों से सम्पन्न महिलाओं की उक्तियाँ भी गंभीर और चारित्रिक महत्ता को व्यक्त करती है। उनमें संकुचित विचार कभी नहीं आ पाते हैं।[1]

राजस्थान के विविध प्रकार के प्राकृतिक वातावरण में पोषित होने वाले लोक गीतों के लिए निरन्तर प्रवाहमयी धारा भी विविधता से पूर्ण है। बसंत के मौसम में पूर्वांचल राजस्थान की धरा मानो शृंगारित हो गई है। 'गैर' 'घूमर' आदि नृत्यों से बसंत आगमन की सूचना मिल जाती है। 'तीज' के झूलों में लोक गीतों की मल्हार सखियों का परस्पर हँसना, मिलना, मिलाना व एक दूसरी के प्रति उत्पन्न प्रेम का माहौल लोकगीतों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। देवी देवताओं को लोकगीतों से प्रसन्न किया जाता है। अंधेरी रातों में कुएँ पर चरस चलाते 'वारिये' लोकगीतों के द्वारा ही अपने परिश्रम को सरस बनाते हैं। इसी प्रकार स्त्री पुरुष खेतों में काम करते हुए पशु चराते हुए। चक्की चलाते हुए दही बिलोते हुए गुनगुनाते रहते हैं।

पूर्वी राजस्थान के लोकगीतों में हमारे लोक जीवन से सम्बन्धित कोई भी विषय अछूता नहीं छोड़ा गया है। हमारी वेशभूषा, आभूषण, खाद्य पदार्थ, त्यौंहारों व देवी-देवताओं का विस्तृत वर्णन पूर्वी राजस्थान के लोक गीतों में पाया जाता है। मानव समाज के प्रत्येक मनोभाव तक सूक्ष्म चित्रण मिलता है। कई गीत लोक कथा काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं। इन गीतों के आधार पर हम भूतकाल को भी अंकित कर सकते हैं। इन लोकगीतों के आधार पर पूर्व प्रदेश के करौली, धोलपुर, सवाई माधोपुर, हिण्डोन क्षेत्र में निरक्षर होते हुए भी गुणी प्रदर्शित होते हैं।

डॉ. रामनरेश त्रिपाठी ने ओज पूर्व स्वरों में कहा है "ग्राम गीतों ने जनता में एक अनिवर्चनीय सुख की सृष्टि की हैं। जब ग्रह देवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती है। तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरंगित हो उठते हैं। आकाश

---

1. संस्कर्त्ता नानूराम शर्मा : राजस्थानी लोक साहित्य, द्वि.सं. संस्करण 2000, पृ. 54

चकित सा जान पड़ता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई सी दिखाई पड़ती है। मैं एक अनुभवी की हैसियत से अपने उन मित्रों से जो कौंवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लोटों अपने अंत:पुर को लौटो कस्तूरी मृग की तरह सुगन्ध स्रोत का तलाश में कहाँ फिर रहे हो। स्वर्ग सा सच्चा सुख तुम्हारे अन्त:पुर में है। वहाँ की हृदय तन्त्री के तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो। फिर देखो कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है।[1]

राजस्थानी पूर्वांचल के लोक साहित्य की महत्ता स्वस्थ जीवन की कसौटी है। लोकगीतों की सादगी स्पष्टता अत्यंत प्रभावशाली है। जनमानस ने आकांक्षाओं, कोमल भावनाओं वीर भावों को लोकगीतों में सजीव रूप प्रदान किया है। राजस्थानी वीरांगनाओं के पास तो विरह, मिलन व प्रेम के गीतों का राग ही अपनी आत्माभिव्यक्ति को खुलकर प्रकट करने का माध्यम है। राग-विराग, घृणा, प्रेम और दु:ख की जिन भावनाओं को नारी स्पष्ट नहीं कह पाती उनको गीतों द्वारा गा-गाकर सुना दिया है। लोकाचार व सामाजिक बन्धनों में बँधी नारी को लोकगीतों का भावपूर्ण व शक्तिशाली आधार न मिला होता तो वे अपने भावों की शायद अभिव्यक्ति ही नहीं कर पाती। नारी हमारे समाज की आत्मा तथा गृहस्थ जीवन की मेरूदण्ड है और ये लोकगीत नारी की अन्तरात्मा की आवाज हैं।[2]

करौली एवं सवाई माधोपुर के लोकगीतों में देवी-देवताओं के गीतों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। मांगलिक व पाठ-पूजा के अवसरों पर देवताओं को लोकगीत गाकर मनवाया जाता है। नवरात्राओं के दिनों में देवी पूजा निरन्तर चलती रहती है। इन दिनों कैला देवी, बीजासन माता, इन्द्रगढ़ देवी आदि नव देवियों के गीत गाये जाते हैं। कैला मैय्या के गीतों की गूँज सम्पूर्ण पूर्वांचल को प्रभावित किये बिना नहीं रहती है।

---

1. श्री कृष्णदास : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या, प्र.सं. 1956 पृ. 145
2. रानी लक्ष्मी कुमारी चूढ़ावत : सांस्कृतिक राजस्थान, सं.प्र. पृ. 126

विवाह आदि मांगलिक कार्यों पर गणपति विनायक जी का स्मरण करने व आमंत्रित करने से विवाह मंगलमय सम्पन्न होता है। वर्षा ऋतु में इन्द्र-इन्द्राणी के गुणगान करने पर ही वर्षा होती है। शिव पार्वती, भैरव, भौमिया, हनुमानजी, रामदरबार, ठाकुर जी व अन्य देवी देवताओं का गुणगान करते हैं।

गौरा शिव की पूजा लोक देवता के रूप में हनुमत देवता की पूजा की जाती है। लोक जीवन में मानवीय कामुकता आनन्द मैथुन की जितनी प्रधानता है उतनी ही आनन्दोपभोग की उपयुक्त प्रवृत्तियों द्वारा साध्य है। लोक जीवन में इन तीनों विलासों की अभिव्यक्ति अनेकानेक रूपों में विद्यमान है। यद्यपि लोक जीवन में इनके लिए कोई प्रयास नहीं किया, न कहीं शिक्षा प्राप्त की। उनके अंतरआत्मा से निकली हुई इस धाराओं में उन्हें स्वत: आनन्द आने लगा।

सर्वप्रथम भावनाओं का विलास है, जिसका प्रादुर्भाव, प्रेमकरुणा और क्रोध भरे हृदयों से हुआ है, परन्तु देखा गया है कि प्रत्येक प्राणी अपनी भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाने में असमर्थ होता हे। वह तो अश्रुपात और विश्वास तक सीमित रहकर प्रभाव उत्पन्न कर देता है। उसके अंतर की पुकार सुनने वाला, उसके अंतरात्मा में बैठकर उसकी पीड़ाओं का मार्मिक विवेचन और प्रदर्शन करने वाला दूसरा ही व्यक्ति होता है, जो आँखें फाड़-फाड़कर, कान लगाकर दूसरों की व्यथा को सुना करता है। यह प्राणी कब किसके सम्मुख अपने उद्‌गार उगलता है। उसे किसी ने न देखा न अनुभूत किया है वरन् लोक जीवन की घटित विविध घटनाओं से जोड़ने का साहसिक प्रयत्न किया है।

इसके अतिरिक्त कुछ वे हृदय हैं, जो आनन्दतिरेक से स्वत: ही मुखरित हो सकते हैं। उन्हें किसी दूसरे के हृदय को माध्यम बनाने की आवश्यकता नहीं रहती। उत्सवों, विवाहों, मेलों व देवार्चनों के उपलक्ष में प्रस्फुटित हुए उद्‌गार तत्काल अंतर से निकलकर जिह्‌वा पर आ जाते हैं और अपनी व्यापकता को अमर बना देते हें।

आज के ग्राम्यगीत उन्हीं अज्ञात स्वरों की ध्वनियाँ है। जिनके प्रत्येक वाक्य में अंतर की ज्वालाएँ अंकित हैं। ये गीत सरोवर के तट पर, वृक्ष के नीचे, किसी दूसरे छप्पर की मग्न कुटीर में प्राय: गाये जाते हैं। शृंगार की विविध भावनाएँ अनेक प्रेरणाएँ इनसे भरी रहती हैं। ये सभी विशेषताएँ पूर्वांचल के लोकसाहित्य में दृष्टिगोचर होती है।

छोटे–छोटे गीत ही नहीं बड़े–बड़े काव्य लोक जीवन को जोड़ने की योजक कड़ी के रूप में है। गोगाजी, पाबूजी, महावीर जी, तेजाजी, कैला देवी, वीजासन, बरवासन, नन्दे भुमियाँ आदि लोक प्रचलित देवी देवताओं की महिमा का वर्णन पूर्वाचंल में प्रसिद्ध है। श्रावण मास की हरियाली युवतियों के जीवन में हर्ष उल्लास का नवीन संचार उत्पन्न कर देती है। झाड़ियों का प्रलोभन प्रवासियों को दिया जाता है। विद्युत प्रकाश में प्रवासी की नव वधु डर जाती है। वर्षा के शीतल बिन्दु शर की भाँति शरीर में लगते हैं। मयूरों की ध्वनि का आकर्षण, सरिता के प्रवाह, झरनों की कल–कल ध्वनि, पक्षियों के मधुर गान, चालक के प्रति उपालम्भ इन गीतों की प्रमुख अभिव्यक्ति है। माघ की कंपकंपा देने वाली शरद में प्रियतम का वियोग असहनीय होता है।

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में संगीत के साथ नृत्य का भी स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। विवाहों, उत्सवों के नृत्य सम्बन्धियों और सम्बन्धिनियों के परस्पर भेंट होते समय के नृत्य भाभी देवर के विवाह में नाचती है। माँ पुत्र के समक्ष नाचती हैं जब वह बारात लेकर घोड़ी पर निकासी करता है। युवक युवतियाँ मेलों में नृत्य करते हैं तथा ताल से ताल मिलाकर विविध प्रकार की भंगिमाएँ करते हैं। तमाशों छोटे–छोटे नाटकों, राम लीला, कृष्ण लीला नोंटकियों व ख्याल आदि के स्वाँग, साज–सज्जा भगवानों के चित्र दिखाना।

माताएँ छोटे बच्चों को लोरिया सुनाती व आनन्द प्राप्त करती है। इस सन्दर्भ में **रवी नाथ टैगोर** का वक्तव्य कुछ इस प्रकार का है। ''हमारे अलंकार शास्त्रों में

नौ रसों का उल्लेख है, पर लोरियों में जो रस प्राप्त होता है। वह शास्त्रोवत रसों के अर्न्तगत नहीं है। अभी–अभी जोती हुई जमीन से जो गंध निकलती है, या शिशु के नवनीत कोमल देह से, जो स्नेह को उछाल देने वाली गंध है। इसे फूल, चन्दन, गुलाबजल, इत्र या दूध की सुगन्ध के साथ एक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। रुचि भेद के कारण संभव है कि यह सबको न भायें, पर इनको स्थायी रूप से संग्रह करके रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में शायद दो राय नहीं हो सकती। यह हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है।''[1]

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य का संरक्षण

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य की अक्षय निधि चूँकि मौखिक है तथा सामाजिक अवचेतन का अंश है, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके संरक्षण का प्रयास अधिकाधिक किया जाय। सामाजिक परिवेश व परिवर्तित मूल्यों के साथ लोक संस्कृति की विकास यात्रा के चिह्न बालू के पद चिह्नों की तरह मिटते चलते हैं, किन्तु उनके सौंन्दर्य में संस्कृति का निर्माण भी संभव है। अत: यह आवश्यक है कि लोक साहित्य की परम्परा को संरक्षित किया जाय, उसका संग्रहण किया जाय और उनसे विस्तृत तथ्यों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना करना ही हितकर होगा। आज भौतिकवादी जीवन के चलते प्राचीन ग्रन्थों पौराणिक कथानकों व पंचतन्त्र हितोपदेश की कथाओं का विश्लेषणात्मक परीक्षण की आवश्यकता है, जो कि समकालीन सामाजिक विषमताओं व परम्परागत रुढ़ियों लोक विश्वासों के प्रति अनास्था ही प्रमुख कारण है। भारतीय साहित्य की उन्नति अथवा राष्ट्रीय साहित्य के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि लोक–मानस से उद्‌भूत सहज अभिव्यक्तियों का गहरा और

---

1. सं. रामनाथ सुमन : सम्मेलन पत्रिका वृंन्दावन लाल वर्मा का लेख नया वर्ष एक मानचित्र प्र.पृ. 466

विस्तृत क्षेत्र संग्रहित और संरक्षित किया जाये। करौली सवाई माधोपुर का लोकसाहित्य सतत् प्रेरणा का स्रोत रहा है।

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य की विविध विधाओं के अध्ययन एवं सुरक्षा के विविध स्वरूपों को देखा जा सकता है। उन्हें एकत्रित करने की वैज्ञानिक प्रणालियाँ हैं एवं अध्ययन की शैलियाँ हैं, उन्हें अपने शुद्ध रूप में उपयोग में लिया जाना है, और ऐसी नींव की स्थापना करनी है, जिससे भारतीय समाज अपनी आधुनिकतम्, अभिव्यक्तियों, प्रतीक व्यवस्थाओं बिम्बगत सौन्दर्य निकट भारतीय सिद्ध हो सके।

आज हम पश्चिमी संस्कृति के रंग में इस तरह निमज्जित होते जा रहे हैं कि भारतीय संस्कृति व सभ्यता के प्रतिमानों को भूलते जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप मानवीय मूल्यों का ह्रास निरन्तर होता जा रहा है। आधुनिकीकरण, शहरीकरण, यांत्रिकता और उपभोक्ता संस्कृति की बाढ सारी दुनिया को लील रही है। सामूहिक जिजीविषा ही शेष नहीं है, जिसके दुःखद परिणाम से चारों और विनाश स्वरूप त्राहि-त्राहि मच रही है। ऐसी स्थिति में प्राचीन भारत के पुराने संस्कार व जीवन मूल्यों से जुड़े मेले, पर्वों, कर्मकाण्ड जैसी हमारी अमूल्य धरोहर को बचाने और अक्षुण बनाये रखने के लिए जन चेतना की महत्ती आवश्यकता है वह इस दिशा में जो भी और जितने भी प्रयत्न किये जायें वे कम हैं। यदि समय रहते इन्हें लेखबद्ध नहीं किया गया तो निश्चय ही हमारी आने वाले वाली पीढ़ियों को कभी भी अमूल्य निधियों से अलग होना पड़ सकता है।

भारतीय संस्कृति विश्व में गुरु स्वरूप पूज्य है। पूर्वी राजस्थानी ग्रामीण सभ्यता संस्कृति आदिवासी लोगों का पहनावा, खान-पान एवं कार्य व्यवसाय, लोक जीवन से जुड़े सामाजिक तानों बानों का विहंगम विश्लेषण करें, तो धरती की गंध में से लोक की मधुर धुन में अपने आप को समेटकर सभ्यता का परिचय देने वाली उच्च व नीची जातियों से सरोकार देखने को मिलता है। मूर्तिकला का आगार

राजस्थानी सभ्यता व उससे जुड़े सन्दर्भों की आध्यात्मिकता के विषय में स्पष्ट देखा और समझा जा सकता है।

यद्यपि यह तथ्य सत्य है कि संस्कृति मरती नहीं वरन् शाश्वत है किन्तु देशकाल परिस्थितियों व परिवेश के चलते परिवर्तन होता रहता है तथा यह बुरा भी नहीं है। आमूल परिवर्तन विनाशकारी भी होता है। आज के वैज्ञानिक भौतिकवादी, यांत्रिक युग में हमें लोक साहित्य के आधारभूत उद्योग–धंधों व लोक कला का संवर्द्धन का उपाय करना चाहिए। पूर्वी राजस्थान का लोक साहित्य मन, आत्मा व शरीर की तरह अभिन्न है। जो कि लोक जीवन के प्रत्येक पहलू को अलग–अलग नहीं होने देता है। बल्कि संजोए रखता है। लोक गीतों में लोकोक्तियों और कथाओं में ग्रामीण सभ्यता परिवेश विविध कलाओं का बहुआयामी महत्त्व प्रकट होता है। लोक साहित्य की रक्षा शासन के नेतृत्व में हो सकती है। प्रत्येक जनपद के गीत लोकोक्तियां और कथाएँ वहाँ के शिक्षक लेखनी बद्ध करें।

मेरी सम्मति में राजस्थान के पूर्वांचल को लोक साहित्य रूपी भागीरथी की सतत् प्रवाहिनी भावधारा में अवगाहन करने हेतु अनेक विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण योगदान तो दिया ही है, साथ ही विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं एवं शोध संस्थाओं ने भी **लोक–साहित्य के संरक्षण हेतु विशेष योगदान दिया है जो इस प्रकार है–**

पूर्वांचल करौली सवाई माधोपुर पत्र–पत्रिकाओं का योगदान–

1. मरू श्री (लोक संस्कृति)

2. लोलमा (आंचलिक साहित्य)

3. शोध पत्रिका

अंत में लोक साहित्य की सांस्कृतिक विरासत को नवीन स्वरूप प्रदान करने में राजस्थान प्रांत के विविध स्वरूपों में अनेकता में एकता की बात सत्य सिद्ध होती है।

अत: आज पूर्वी राजस्थान में चित्रित समाज और संस्कृति अपनी अमिट छाप भारतीय संस्कृति पर अंकित करती है जो अन्य संस्कृतियों की तुलना में श्रेष्ठतम भी है।

निष्कर्ष

पूर्वी राजस्थान के करौली एवं सवाई माधोपुर लोकसाहित्य में चित्रित समाज व संस्कृति का सिंहावलोकन राजस्थानी धरोहर को दृष्टिगत करने में सक्षम है। यहाँ प्रकृति की उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, अभिनवता, ठहराव, बहाव, गति-अगति, निर्मलता एवं विविधता तथा मिट्टी का रंगरूप, उसकी गंध, विश्वासों, अविश्वासों की तरलता, सघनता और अनुभावों की गूँज स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। पूर्वी राजस्थान की संस्कृति परिवेश लोकमानस की अभिव्यक्ति देखते ही बनती है। पूर्वांचल की धरोहर में व्याप्त सामंजस्य, सामाजिक समन्वय की सुन्दर छटा दृष्टिगत है। लोकजन में उत्पन्न सुन्दर गीतों की गूँज सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। माता के भवन में घुटवन लांगुरिया खेलने का सुन्दर दृश्य मानो अभिराम प्रतीत होता है। लोकगीतों में उत्सवों, संस्कारों व संस्कृति की स्पष्ट छवि का प्रस्तुतीकरण है। आज का सहिष्णुतापूर्ण वातावरण यहाँ की संस्कृति की अमिट छाप है। देवी-देवताओं के लोकगीतों में रहस्य भावना, तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोनो का अपना स्वरूप, तीज त्यौहारों, होली, दीपावली की मधुरता प्रकट होती है।

❑

उपसंहार

पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाई माधोपुर जिलों के लोक साहित्य में सृजनात्मकता का स्वरूप विश्वसाहित्य पर सिरमोर है। राजस्थानी संस्कृति सभ्यता व परिवेश जनित समानता, सदाचार, सभ्यता, लोकाचार, भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का बखान रेत के कणों से निकलने वाली मृगमरिचिका का ही विशिष्ट रूप लिये हुए है। राजस्थान की पौराणिक, ऐतिहासिक संरचना को देखें तो तीनों ओर समुद्र से घिरी भारत भूमि में एक हिस्सा रेगिस्तान, राजस्थान के नाम से जाना जाता है। यहाँ की पुरातन संस्कृति पूर्वी राजस्थान के करौली सवाईमाधोपुर, गंगापुर, धौलपुर, भरतपुर के कुछ भू-भाग के क्षेत्र में राजस्थान की संस्कृति का विराट समन्वय देखने को मिलता है।

पूर्वांचल की चर्चा करने से पूर्व राजस्थानी मरूभूमि के त्याग और तप की चर्चा करना आवश्यक है। राजस्थान की धरोहर के संगठनात्मक ढाँचे का भौगोलिक दृष्टि से वर्णन अध्यायों में किया है। वैदिककालीन, मुस्लिम व अंग्रेजी युग की सभ्यता रजवाड़ों का स्वरूप प्रस्तुत है। अरावली पर्वतमालाओं से घिरा प्रदेश राजपूताना के इतिहास का वर्णन पर्याप्त है। मत्स्य संघ, राजस्थान संघ, संयुक्त राजस्थान, बृहत राजस्थान, मत्स्य संघ का विलय, सिरोही का विलय और अजमेर का विलय हुआ। धीरे-धीरे पूर्वी राजस्थान की सभ्यता संस्कृति व उससे जुड़ी लोकचेतना के विविध रूपों का अध्ययन किया है। वहाँ कैलादेवी का लक्खी मेला, गागरौन गढ़, गणेश जी, मदनमोहन जी, महावीर जी, मेंहदीपुर बालाजी का तीर्थस्थान इस अंचल की लोक संस्कृति को प्रकट करता है। ईश्वरीय होने वाली आरतियाँ समयानुरूप होती है।

भक्तगण लक्खी मेलों में आते हैं। देवी–देवताओं के गीतों की अनुगूंज पूर्वी अंचल की धरोहर सभी को मन्त्रमुग्ध कर देती है। लोकदेवी व देवताओं के भजनों में लांगुरिया गीत गाते भक्त माता के दरबार में घूमते–घूमते समूह गीत गाते नजर आते हैं। राजस्थानी गौरवशाली अक्षुण्ण परम्परा की विरासत करौली सवाई माधोपुर के तीर्थस्थान, माँ कैलादेवी, गणेशजी, शिवाड़, मदनमोहन जी, नरसिंह जी, महावीर जी आदि देवी–देवता प्रसिद्ध है।

राजस्थानी लोक साहित्य के वैश्विक महत्त्व को पूर्वांचल के लोकसाहित्य में वेद, वेदांगों, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार–प्रसार में लोक वाङ्मय की पृष्ठभूमि के सहज दर्शन होते हैं। लोकशब्द का अर्थ समकालीन परिवेश की ऊर्जा को प्रकट करता है। लोकसाहित्य की अवधारणा पूर्वांचल के साहित्य की कसौटी पर खरा उतरता है। पूर्वांचल के मेले लोकगीत, लोकनाट्य, लोकसंगीत, पवाडे आदि को लोकगाथा में पिरोहित कर लोकसाहित्य को चमकदार बना दिया गया है। लोकसाहित्य को गद्य–पद्य में लोकवाद्यों, नृत्य, अनुरंजन, लोरियां, चुटकले, मेले, उत्सवों के विविध उदाहरण देकर विस्तृत चर्चा की है। पद्य की बात कहें तो लोकगीत, लोककहावतें, लोक दोहे, लोकमन्त्र, लोक सोरठा आदि का समावेश लोकसाहित्य की देन है। लोकगीतों, संस्कार, ऋतुओं, देवी–देवताओं, लोकदेवताओं के रातिजगा, संयोग, वियोग, विदाई, श्रम, वीरगति, जातीय विशेष रूप से मीणा जाति के गीत। सन्तों व सिद्धों के गीत, थुडले के गीत आदि प्रमुख हैं।

लोकगीतों का सम्पूर्ण राजस्थान में भण्डार है, किन्तु पूर्वी राजस्थान की भाषा ब्रज के प्रभाव वाले गीत केवल करौली, हिण्डौन, सवाई माधोपुर, गंगापुर क्षेत्र में ही संभव है। ऋतुओं के बारहमासा गीतों का वर्णन भी हिन्दी पद्य में विद्यमान है। लोककहावतें, मुहावरे, पूर्वी अंचल के साहित्य की महत्त्वपूर्ण निधि है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रस्तुत किये हैं। राजस्थानी धर्म, स्थान,

संस्कृति, ईश्वर, शकुन सम्बन्धी, लोकविश्वासों, कृषि विषयक कहावतों का अनुसन्धानपरक विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पहेलियों का विशद विवेचन किया गया है। पूर्वी राजस्थान में मनाये जाने वाले राष्ट्रीय पर्वोत्सवों के अतिरिक्त लोकजीवन में पूजित व मनाये जाने वाले त्यौहारों का विशद विवेचन है। एकादशी तुलसी, गणेश चतुर्थी, सकट चौथ, करवाचौथ, अक्षयतृतीया, पीपल पून्यो, गोगानवमी, दीपावली, दशहरा, नवरात्रा, होलिकोत्सव, धुलण्डी, मकर संक्रान्ति, श्राद्धपक्ष आदि प्रमुख है। विभिन्न जातियों का वर्णन—ब्राह्मण, बनिया, तेली, चर्मकार, मीणा, गुर्जर, कुम्हार, जाट, अहीर, मेहत्तर आदि के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को लेकर लोकजीवन में बनी विविध पहेलियाँ व कहावतों का भरपूर प्रयोग प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का एक हिस्सा है जो ऊर्जावान भावभंगिमा को उजागर करती है। पितर-पितराणी, महावीर जी, शिवाड़, कैलादेवी, महावीरजी, मदनमोहनजी, गणेश जी रणथम्भोर का वन्य जीवन अभ्यारण्य के अन्दर पलने वाले जीवजन्तुओं की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हुई है। पांचना बाँध का पानी का ठहराव की तरह गंभीर पूर्वांचलवासियों में गम्भीरता प्रदान करते प्रतीत होते हैं।

पूर्वी राजस्थान के निवासियों में देवी-देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा है। उपवास, कथाएँ, लोकविश्वास व पुरानी रूढ़ियों को मान्यता प्राप्त है। कृषि भारतीय समाज का मूल आधार है। समाज का विकृत रूप भी देखने को मिलता है। समाज के हर वर्ग में ओछी सोच के लोग रहते हैं, जहाँ जातिवाद, भाई भतीजावाद, हिंसा आदि कार्यों से अपनी आजीविका चलाते हैं। कुछ लोग चोरी व हत्या करके धनार्जन कर लूटपाट करते हैं। कुछ लोगों में नशे की प्रवृत्ति होती है, जो समाज के लिए विकृत रूप ही है। सामाजिक कुरीतियाँ, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, सामाजिक अकृत्य आदि महत्त्वपूर्ण समस्याओं को पूर्वी राजस्थान के लोकजीवन में देख सकते हैं। लोरियाँ लोकवाद्य, पवाडे आदि का प्रयोग भी पूर्वी राजस्थान के लोकसाहित्य में दृष्टिगोचर है।

पूर्वी राजस्थान की विराट संस्कृति के दर्शन लोक समाज व लोकसाहित्य से ही संभव है। भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों की उक्तियाँ प्रचलित हैं। भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से प्राचीन है। मत्स्यावतार, वामन, वराह, नरसिंह, कूर्मा, परशुराम, रामावतार, कृष्णावतार, बुधावतार की चर्चाएँ हुई हैं। आज कल्कि अवतार सर्वत्र विचारणीय अवतार है। पूर्वी राजस्थानी संस्कृति, मूल्य व परम्पराओं से ओत-प्रोत है। अनेकता में एकता राजस्थान प्रदेश की विशेषता में सहिष्णुता, अविच्छिन्नता, जीवजन्तुओं व जंगल में रोड पर रहने वाले लोगों के प्रति समर्पण व त्याग की भावना प्रत्येक पूर्वी राजस्थान के प्राणी में विद्यमान है। चतुवर्ग में पूर्ण आस्थावान होकर उनकी भावनाओं को मानते हैं। आदर्श व मर्यादा हमारी संस्कृति की विशिष्ट पहचान है जिससे प्रत्येक भारतीय अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है तथा धन्य मानता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में लोकसंस्कृति के मूल तत्वों का विशद विवेचन किया है जिसमें विविधता में एकता, मानवीय रिश्ते व धार्मिक एकता का परिचय होता है। प्रकृति का उपासक हमारा देश प्रारम्भ से ही रहा है। आध्यात्मिकता का केन्द्र ही रहा है। देव ऋर्षि महर्षि विश्वामित्र, सन्तों की तपोभूमि राजस्थान रहा है। कवियों को कोकिल वाणी समृद्धि का केन्द्र भी राजस्थान ही रहा है। हिन्दी साहित्य का भण्डार है। राजाओं के शासन की बात कहनी क्या? प्रजातन्त्र में भी राजस्थान विशाल भू-भाग वाला है। जातिगत, साम्प्रदायिक सदभावना का दूसरा नाम ही राजस्थानी संस्कृति है। सामाजिक विकृतियों की बात करें तो सामंती परिवेश का प्रभाव समकालीन समाज के लोकजीवन को प्रभावित किये हुए है। राजस्थान के करौली सवाईमाधोपुर ग्रामीण परिवेश व शहरी जीवन में कृषि, पशु-पालन व औद्योगिक क्षेत्रों की कमी नहीं है। नदी, पहाड़ों व कलकारखानों, वनों से रोजगार के नवीन अवसर सृजित करने की क्षमता विद्यमान है। ऋतुओं का परिवर्तन केवल भारत जैसे देश में ही सम्भव है।

समानता, समन्वय, आध्यात्मवाद, वर्णाश्रम, ऋण, संस्कार, संयुक्त परिवार, यज्ञादि ऐसी सांस्कृतिक विरासत हमें मिली है जो भावी पीढ़ी की प्रेरणा की स्रोत रही हैं। ये सभी विशेषताएँ करौली एवं सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य में परिलक्षित होती है।

सांस्कृतिक बहुलता भी कुछ हद तक स्पष्ट दृष्टिगोचर है। सजातीयता, धार्मिक विभिन्नताएँ, भाषा, क्षेत्र, बोली, भाई-भतीजावाद, जातिवाद साम्प्रदायिकता आदि से ग्रसित मनोदशा को भी प्रकट किया है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व अन्य सभी प्रकार की विशेषताएँ राजस्थानी संस्कृति की पहचान है। लोकसाहित्य में करौली सवाईमाधोपुर जिले के क्षेत्र के लोकसाहित्य से जुड़े सन्दर्भों व प्राचीन धरोहरों से जुड़े तथ्यों की अनुसंधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। लोकगीतों, लोकउत्सवों, पर्वो व त्यौहारों में पूर्वांचल की लोकसंस्कृति की नई-नई तस्वीरें देखने को मिलती है। यहाँ की स्थापत्यकला, लोकमानस व लोकसाहित्य से सतत् प्रेरणा मिलती रहती है। लोकमूर्तिकला का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

जन्मोत्सव के गीत, ख्याल, बन्ना, बन्नी, भात व विदाई के गीतों का प्रयोग कर पूर्वी अंचल की लोकसंस्कृति ने उन्मेष प्रकट किया है जिसे जनसाधारण के गीतों के रूप में उभारने का प्रयास मात्र है। सोलह संस्कारों का क्रमबद्ध वर्णन ऋतुओं के गीत त्यौहारों, उत्सवों के गीतों में मंगलाचरण विधान, आस्तिकता, कैलादेवी के गीतों का वर्णन, दानशीलता का प्रभाव दृष्टिगोचर है।

करौली सवाईमाधोपुर जिले के भू-भाग के निवासियों का लोकसाहित्य के प्रति रुझान को प्रस्तुत किया है जिसमें लोकगीतों के पुट लोकभाषा में प्रस्तुत किये है। लोकसमाज में व्यक्ति की लोकचेतना के प्रति पुष्टि है। समाज के सभी वर्गों में होने वाले उत्सवों, पर्वों व संस्कारों का उल्लेख सवाई माधोपुर व करौली लोकसाहित्य में सन्निहित है। सामाजिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, व लोकाचारों का विशद विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में लोकसाहित्य से सम्बन्धित वर्णन है। लोकदेवता, देवियों का

परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत है। शोध प्रबन्ध के अन्त में समग्र विवेचन के रूप में लोकसाहित्य का निरन्तर सृजन करने व भावी जीवन में उतारने का सन्देश है।

धन्य है वह धरा जिसकी पवित्रतमा धरोहर में प्रदेशवासियों पर अनुकम्पा कर सर्वधर्मावलम्बियों को लोकजीवन में व्यापक परिवर्तनशील विचारधाराओं से अवगत कराकर लोकसंस्कृति में अमिट छाप छोड़ी है।

शोध के दौरान मुझे आश्चर्य हुआ कि लोकसाहित्य इतना समृद्ध होते हुए भी अभी तक विद्वानों के सक्रिय अध्ययन का विषय नहीं बन पाया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रदेश के दूर-दराज दुर्गम भू-भाग, डाँग क्षेत्र में बसा होना, करौली व सवाई माधोपुर के लोक-साहित्य के लिए उपेक्षा के कारण रहा, किन्तु इस उपेक्षित साहित्य के प्रति अपने लगाव और आकर्षण ने इन कठिनाइयों की चिन्ता किये बिना अपने संकल्प की परिणति शोध-प्रबन्ध के रूप में हुई।

मैंने शोध के दौरान पाया कि करौली व सवाई माधोपुर जिले की एक संस्कृति है, एक पहचान है, जो कि अपनी अक्षुणता को आज भी बनाये हुए है। यहाँ के निवासियों को प्रकृति की गोद में पलने वाली धरती की संतान कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनकी जीवन साँसों में प्रकृति की उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, ठहराव-बहाव, निर्मलता देखने को मिलती है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में सम्पूर्ण करौली व सवाई माधोपुर जिले के लोकसाहित्य में निहित समाज और संस्कृति का अध्ययन कर लिपिबद्ध किया है, अत: निश्चित रूप से यह करौली एवं सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य को सुरक्षित रखने में अहम् भूमिका निभाएगा, जो कि आने वाले लोकसाहित्य प्रेमी व वर्तमान राजस्थानी लोक साहित्य के लिए अहम् योगदान होगा। यह शोध प्रबन्ध हिन्दी के अध्येताओं को रचनात्मक सहयोग प्रदान कर अपनी प्रासंगिकता बनाये रखेगा।

❑

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, गोविन्द : 'राजस्थानी लोक-कथाए' (प्रथम खण्ड) प्रकाशित एवं विक्रेता—भाग्न भण्डार लोकपीठ इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, संवत् 2021
2. उपाध्याय, डॉ. बलदेव : 'लोक संस्कृति की रूपरेखा', प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण : 2004
3. कल्ला, नन्दलाल : 'राजस्थानी लोक-साहित्य एवं संस्कृति', प्रकाशक : राजस्थान ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर, संस्करण प्रथम 200
4. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. : 'समाजशास्त्र के मूल तत्त्व', प्रकाशक : साहित्य भवन पब्लिकेशन, हॉस्पीटल रोड, आगरा-282003
5. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा डी.डी. : 'भारतीय समाज', प्रकाशक : साहित्य भवन पब्लिकेशन, हॉस्पीटल रोड, आगरा-282003
6. गोस्वामी, प्रेमचन्द : 'राजस्थान संस्कृति, कला एवं साहित्य', प्रकाशक : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र जयपुर-4, संस्करण प्रथम, 2006
7. चोयल, शिवसिंह (सम्पादक) : 'राजस्थानी लोकगीत', भाग-2, साहित्य संगम, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
8. चारण, मोहनदास : 'लोक साहित्य की सांस्कृतिक परम्परा', प्रकाशक : रोशनलाल एण्ड सन्स, चैनसुखदास मार्ग, जयपुर-3

9. चूड़ावत, रानी लक्ष्मी कुमारी : 'सांस्कृतिक राजस्थान', प्रकाशक : राजस्थान पिपुल्स पब्लिकेशिंग हाऊस, एम.आई.रोड, जयपुर, संस्करण, प्रथम, 1994

10. डॉ. सत्ये : 'लोकवार्ता की पगडंडियाँ', प्रकाशक : भारतीय लोककला मण्डल, उदयपुर, संस्करण प्रथम, 1974

11. डॉ. सत्ये : 'लोक साहित्य विज्ञान', प्रकाशक : शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा, प्रथम संस्करण

12. डॉ. संजय गील : 'जनजाति समाज एवं वनीय अन्तर्निर्भरता', प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन, उदयपुर, संस्करण 2007

13. डॉ. प्रेमचन्द डाबी : 'जनजातीय लोक साहित्य', प्रकाशक : अंकुर प्रकाशन, उदयपुर।

14. देथा, विजयदान (सम्पादक) : 'मीठा वीरा रो बोलणी' (भाई बहिन के गीत, भाग–2) प्रकाशक : राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर।

15. देथा, विजयदान (सम्पादक) : 'क्यू दोनों पहदेश' (ससुराल और पीहर के गीत, भाग–2) प्रकाशक : राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर।

16. डॉ. महेन्द्र भाणावत : 'राजस्थान के लोकनृत्य', प्रकाशक : मुक्तक प्रकाशन, उदयपुर (राजस्थान), 2004

17. दिनकर, रामधारीसिंह : 'राजस्थानी लोक संस्कृति की रूपरेखा', प्रकाशक : राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ झुन्झुनू (राज.), 1959

18. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : 'जनपद' अंक-130, 'श्रीकृष्ण : लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या' प्रकाशक : साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, संस्करण प्रथम : 1956

19. दास, श्रीकृष्ण : 'लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या', मुद्रक : हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण प्रथम : 1956

20. प्रभाकर, मनोहर : 'राजस्थानी साहित्य और संस्कृति', प्रकाशक : आशा पब्लिशिंग हाऊस, चौड़ा रास्ता, जयपुर, संस्करण प्रथम : 1956

21. भाटी, पुष्पा : 'राजस्थान के लोक देवता एवं लोक साहित्य', प्रकाशक : कविता प्रकाशन, तेलीबाड़ा, बीकानेर, संस्करण : 1996

22. मेनारिया, पुरुषोत्तम लाल : 'राजस्थानी लोकगीत', प्रकाशक : दी स्टूडेण्टस बुक कम्पनी, जयपुर-जोधपुर, संस्करण प्रथम : 1958

23. महर्षि विद्याभूषण मुरारीलाला : 'पारम्परिक माँगलिग लोकगीत', प्रकाशक : साहित्य कला संस्थान, जयपुर संस्करण प्रथम : जून, 2001

24. राजगढ़िया, चम्पादेवी : 'बारह महीनों का व्रत त्यौहार' (मारवाड़ी भाषा में)।

25. लोमानी, रामदेव : 'राजस्थानी साहित्य का महत्व', प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संस्करण 2000

26. संस्कर्त्ता, नानूराम : 'राजस्थानी लोकसाहित्य', प्रकाशक : राजस्थानी ग्रन्थागार सोजती गेट, जोधपुर, संस्करण : 2006

27. सम्पादक शर्मा, मनोहर एवं शर्मा, दिवाकर, प्रधान सम्पादक शास्त्री विद्याधर : 'विश्वम्भरा' (हिन्दी विश्वभारती की त्रैमासिक पत्रिका), प्रकाशन : हिन्दी विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, बीकानेर, वर्ष 10, अंक 4

28. सम्पादक महर्षि श्याम, सहा. सम्पा. सैनी, मदन : 'राजस्थानी 52' (राजस्थानी माय लोक चेतना री साहित्यिक पत्रिका) प्रकाशक : हनुमान पुरोहित, राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, बीकानेर (राजस्थान)

29. सम्पादक शर्मा, मनोहर जोशी व श्रीलाल नथमल : 'राजस्थानी बात संग्रह', प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर, संस्करण प्रथम : 2002

30. सम्पादक सुमन श्री रामनाथ : 'सम्मेलन पत्रिका' (लोकसंस्कृति विशेषांक) प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

31. सहल कृष्ण बिहारी : 'राजस्थानी लोकगाथाएँ और निहालदे सुल्तान', प्रकाशक : राजस्थानी साहित्य संस्थान, यू.आई.टी. के पास, जोधपुर, संस्करण प्रथम 2002

32. शेखावत, कल्याण सिंह : 'राजस्थानी संस्कृति', प्रकाशक आनन्द प्रकाश, डिफैन्स लेव रोड, रातनाड़ा, जोधपुर, प्रथम संस्करण - 2003

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आलोचना : अक्टूबर-दिसम्बर, 1972

2. कथा : 1998-2000

3. कथाक्रम : अक्टूबर-दिसम्बर, 2002

4. जनसत्ता : 1 नवम्बर, 1998

5. दस्तावेज : अंक-92 जुलाई-सितम्बर

6. धर्मयुग : 26 से 22 मार्च, 1980

7. वैचारिकी संकलन : जनवरी, 1998

8. वसुधा : अंक 42

9. समकालीन भारतीय साहित्य : अक्टूबर–दिसम्बर, 1994

10. राजस्थान पत्रिका

11. दैनिक भास्कर

12. दैनिक नवज्योति

शब्दकोश

1. कालिका प्रसाद : हिन्दी बृहत् कोश

2. डॉ. हरदेव बाहरी : राजस्थान हिन्दी शब्द कोश

3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश

4. रामचन्द्र वर्मा : संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर

5. वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश

6. श्याम सुन्दर दास : हिन्दी भाषा बृहत् कोश

स्थानीय लोक कलाकार

1. सोहनसिंह मण्डल हरिकीर्तन भावली (करौली)

2. रामसहाय मीना : हरिकीर्तन गायक कलाकार (दीपपुरा)

3. रामप्यारी देवी : रसिया गायक कलाकार (छेंडकापुरा)

4. बसंताराम : पदगायक कलाकार

5. लाला राम मीना : कीर्तन गायक कलाकार (टोडाभीम)

स्थानीय कवि एवं साहित्यकार

1. दामोदर लाल गर्ग

2. अर्जुन लाल

3. ब्रजेन्द्र चकोर

4. शंकर सिंह बकील

5. नरेश जैन

❑

पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य में चित्रित समाज और संस्कृति

(करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच. डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोध–निर्देशक :
डॉ. पूरणमल मीना
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
राजकीय कन्या महाविद्यालय,
सवाईमाधोपुर (राज.)

शोधार्थी
हरिकेश मीना
व्याख्याता, हिन्दी
राजकीय कन्या महाविद्याय
करौली (राजस्थान)

हिन्दी विभाग
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
2016

शोध–सारांश

विश्व रंगमंच पर में न जाने कितनी संस्कृतियों ने अपने वैभव का प्रदर्शन किया है तथा नाना संस्कृतियों के उत्थान पतन की कथा दबी हुई है, किन्तु भारतीय संस्कृति की अमिट छाप राजस्थानी संस्कृति की विशिष्ट पहचान बन गई है। लोकसाहित्य में समाज व संस्कृति को अपनी परम्परा व रीतियों, रूढ़ियों, पुरातन लोकविश्वासों का समावेश होता है। भारतीय संस्कृति सर्वजनहिताय व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से ओत–प्रोत है। प्रत्येक नागरिक को अपने विचारों को प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। बिना किसी भेद–भाव के समान जाति, धर्म, सम्प्रदाय व बिना लिंग भेद के सभी को धार्मिक, सामाजिक, वैचारिक कार्यों में सहभागिता का अधिकार प्राप्त है। पूर्वी राजस्थान की सांस्कृतिक धरोहर की चर्चा करें तो राजस्थानी धरा के कण–कण में त्याग, तप व समर्पण, बलिदान की महक उठती है जो सम्पूर्ण भारत के मस्तक में तेज को प्रकट करती है।

पूर्वी राजस्थान के लोकसाहित्य में लोकसंस्कृति की अक्षुण्ण और सर्वकालिक अमृतधारा प्रवाहित होकर मानव मात्र के कल्याण का उद्घोष करती है। यह परम्परा अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करती है, जो समाज की आत्मा का प्रतिबिम्ब है। लोकजीवन की विविध भंगिमाओं का अवलोकन लोकसंस्कृति में स्पष्ट दृष्टिगोचर है। शौर्य, राग–विराग, चिन्तन मनन, आशा–निराशा, आदर्शों की स्थापना, मर्यादा का पालन, कृषि, पशु–पालन, नदी, तालाब,

फल–फूल व ऋतुओं में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव मानवीय सोच में परिवर्तन कर सद् विचारों का उन्मेष प्रकट करता है। यथार्थ के धरातल पर मानव एकता का सन्देश देने में लोकसंस्कृति की महती भूमिका रहती है।

पूर्वी राजस्थान के करौली–सवाई माधोपुर क्षेत्र की संस्कृति की विशिष्टता पवित्रतम तपोभूमि के स्थलों से मिलने वाली सद्प्रेरणा का ही परिणाम है। यहाँ के प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य मातृभूमि की रक्षार्थ सर्वस्व समर्पण की भावना रही है। राजा हम्मीर के आदर्शों का अनुसरण करना है। यहाँ के वनों में विभिन्न जीव–जन्तुओं व पशुओं का स्वतन्त्र विचरण करना इस बात को स्पष्ट करता है कि वीरभूमि में सबको स्वतन्त्र जीवन जीने का अधिकार है। प्रकृति में खुली साँस लेकर उन्मुक्त गगन में पंछियों को उड़ने का अधिकार है, वैसे ही उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, अभिनवता, ठहराव, बहाव, गति में गमन, निर्मलता एवं विविधता तथा मिट्टी के विविध रंगों व उसकी गंध की महक, लोकजीवन के विविध रंगों, विश्वासों–अविश्वासों, आस्था, आध्यात्मिक चेतना की अनुगूंज से सम्पूर्ण पूर्वी अंचल में एक धुन सुनाई देती है। देवी–देवताओं की तीर्थस्थली करौली की कैला मैया, मदनमोहन जी, महावीर जी, रणथम्भोर के गणेश जी, चौथ माता, शिवाड़ (ईशरदा) की कृपा से सम्पूर्ण अंचलवासियों में ईश्वर के प्रति दृढ़ आस्था बनी हुई है।

पूर्वी अंचल का लोक साहित्य सम्पूर्ण राजस्थान के लोकजीवन का उत्कर्ष है। करौली व सवाई माधोपुर क्षेत्र को पिछड़ा क्षेत्र मानते हैं, किन्तु लोकसाहित्य का अध्ययन किया तो वहाँ पर्याप्त साहित्य है। लोक परम्पराओं, देवी–देवताओं, ग्रामीण व शहरी संस्कृति में कोई विशेष परिवर्तन न होकर मानव से मानव को जोड़ने की एक विशिष्ट परम्परा है, जिसमें हमारे त्यौहार, पर्व एवं उत्सवों में भ्रातृभाव समानता व एकता की गूँज स्पष्ट परिलक्षित है। विविध वर्गों के सम्प्रदायों, धर्मावलम्बियों के होने पर भी धर्म निरपेक्षता है। असहिष्णुता के लिए लोकसंस्कृति में कोई स्थान नहीं है।

लोकसाहित्य व संस्कृति का समावेश समाज में रहकर ही समझा जा सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में संस्कारों, परम्पराओं, रूढ़ियों एवं पुरानी विचारधाराओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को छः अध्यायों में विभक्त कर अनुसंधान प्रस्तुत किया है जो निम्नानुसार है—

अध्याय प्रथम में राजस्थान प्रदेश के संगठनात्मक ढाँचे को वर्गीकृत कर उसकी प्राचीन परम्पराओं का उल्लेख है। भारतीय संस्कृति का विकास व पतन दोनों को प्रस्तुत किया है। राजस्थान नाम कैसे पड़ा फिर इसके नामों में कितनी बार परिवर्तन होकर राजस्थान नाम हुआ। भौगोलिक दृष्टि से राजस्थान प्रांत का क्षेत्रफल, जनसंख्या की दृष्टि से पहले और आज में कितना परिवर्तन हुआ। ऐतिहासिक सन्दर्भ में राजस्थान प्रदेश के क्षेत्र में चारों दिशाओं में क्या-क्या महत्त्व है। पूर्वी राजस्थान की सीमा अन्य प्रदेशों से कितनी जुड़ी है तथा उनका परिवेश भाषा संस्कृति व समाज से तुलनात्मक अध्ययन किया है। पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाई माधोपुर जिलों के आस-पास के जिलों से मिलती-जुलती संस्कृति व भाषा का परिचयात्मक अध्ययन किया है।

अध्याय द्वितीय में राजस्थान प्रदेश व पूर्वी राजस्थान के लोक साहित्य का अनुसंधान किया है। लोकसाहित्य का विशद विवेचन अर्थस्वरूप तथा परिभाषाएँ भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के मतों के अनुसार प्रस्तुत है। राजस्थानी लोकसाहित्य की अवधारणा को स्पष्ट किया है, फिर राजस्थानी लोक साहित्य को गद्य-पद्य में बाँटा है तथा लोकगीत, लोककहावतें, लोकपहेलियाँ, लोकमन्त्र आदि का विस्तृत वर्णन उदाहरणों सहित प्रस्तुत है। गद्य में लोककथाएँ (बात), लोकगाथाएँ (पवाड़े), पूर्वांचल की संस्कृति के विविध उदाहरण देकर प्रस्तुत किये हैं। लोकनाट्य (ख्याल), लोकनृत्यों के अंचल के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

लोकवाद्य, लोकविश्वासों की चर्चा की है, लोरियों के विविध उदाहरण प्रस्तुत हैं। अन्त में करौली जिले व सवाई माधोपुर जिले का लोकसाहित्य प्रस्तुत किया है।

अध्याय तृतीय में संस्कृति समाज का सामान्य अध्ययन करते हुए पूर्वी राजस्थान के करौली सवाई माधोपुर क्षेत्र की लोकसंस्कृति के स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। संस्कृति के विविध सोपानों का परिचयात्मक अध्ययन कर भौगोलिक स्थिति व सांस्कृतिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव तथा परिवेश की विसंगतियों का अध्ययन किया है। लोक संस्कृति का परिचय, परिभाषाएँ, मूल तत्वों एवं उद्देश्यों का परिचयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। साथ ही करौली व सवाई माधोपुर जिले की लोकसंस्कृति की अविरल धारा का अमृतपान किया है। समाज का अर्थस्वरूप, भारतीय समाज, सभ्यता, सांस्कृतिक धरोहर, संस्कृति की विशेषताएँ उल्लिखित हैं। सांस्कृतिक बहुलतावाद, विविधता में एकता के लोकसंस्कृति व समाज में प्रचलित करौली, सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य के नवीन उदाहरण प्रस्तुत-शोध-प्रबन्ध में संकलित हैं। अन्त में समग्र विवेचन का सारांश प्रस्तुत है।

अध्याय चतुर्थ में करौली एवं सवाई माधोपुर जिले के लोकसाहित्य में चित्रित संस्कृति का स्वरूप परिभाषाएँ एवं विचारकों के मत को प्रस्तुत किया है। स्थापत्य कला, लोकमूर्तिकला, लोक चित्रकला, लोकसंगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य, लोकसाहित्य, मंगलाचरण विधान दानशीलता में लोकसाहित्य के विविध उदाहरणों का समावेश करते हुए विस्तृत चर्चा की है। प्रेम की महत्ता, संसार की नश्वरता, बारह माह के त्यौहारों का विशद विवेचन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उल्लिखित है, जो ऊर्जावान जनसमुदाय के मुख से निकलने वाले मधुर संगीत की तान से मन्त्रमुग्ध करने वाले लोकसंगीत का प्रभाव पूर्वांचल की धरोहर है।

अध्याय पञ्चम् में करौली सवाई मधोपुर क्षेत्र के लोक साहित्य में चित्रित समाज व लोक साहित्य का समन्वयात्मक स्वरूप लोक साहित्य में कितना प्रभावशाली है। लोकसाहित्य से प्रभावित पूर्वी अंचल के लोगों के जनजीवन का खुला दस्तावेज है। पौराणिक व ऐतिहासिक रूप से पूर्वी राजस्थान के दोनों जिलों—करौली व सवाई-माधोपुर—का विशिष्ट महत्त्व रहा है। लोकसाहित्य ऐसी विधा है जो लोकगीत, संगीत, लोकगाथाओं व लोककथाओं पर चलती है। भारतीय परम्परा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाली उक्ति संस्कृति परिवेश व विचारधाराओं से समाज को नव्यता प्रदान करती है। प्राचीनकाल से संयुक्त परिवारों में रहने वाले लोगों में सहयोग परस्पर प्रेम की भावना अंचलवासियों में दृष्टिगोचर होती है, लेकिन आज के वातावरण में व पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव में होने वाले परिवर्तन के कारण छोटा परिवार सुखी परिवार की धारणा मानवीय सोच भी बन चुकी है। लेकिन पूर्वी राजस्थानी लोकजीवन में त्याग, तप, श्रद्धा, सम्मान अद्यतनकाल में भी प्रचलित है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कर्त्तव्य परायणता से ओत-प्रोत सामाजिक विचारधारा का विश्लेषण किया गया है। भाई-बहिन का प्रेम, पति-पत्नी सम्बन्ध, माता-पिता के प्रति समर्पण की भावना व हमारे संस्कारों का विस्तृत अध्ययन किया है। विवाह, भात भरने, पुत्र जन्मने के लोकगीतों में राजस्थानी संस्कृति के रंग-बिरंगे फूलों की छटा दृष्टिगत है। लोकोत्सवों में होलिका, दीपावली, गणगौर, रक्षाबन्धन, शीतलाष्टमी, तीज, नवरात्र, अक्षयतृतीया, पीपल नवमी, एकादशी (देवउठनी, देवसोनी), मकर सक्रांति आदि उत्सव पर्वों को पूर्वी राजस्थानी अंचल में गीतों के माध्यम से लोकचेतना की अभिव्यक्ति का विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

अध्याय षष्ठ में राजस्थानी लोक साहित्य में लोकचेतना की अभिव्यक्ति लोक संस्कृति की विराट समन्वयात्मक चेतना है, जो राजस्थानी बहुरंगी संस्कृति की अविरल छटा की झलक पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाईमाधोपुर अंचल में स्पष्ट

दृष्टिगोचर है। भारतीय संस्कृति वेद, वेदांगों, उपनिषद् व पुराण, रामायण, महाभारत एवं श्रीमद् भगवत गीता के आदर्शों का पालन करने में त्याग व अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहकर जीवन को सर्जनात्मक गति प्रदान करते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में हमारे आदर्शों में परिवर्तन द्रुत गति से होता आया है, जो परिवेश की संस्कृति में निरन्तर बदलाव की स्थिति पैदा किये हुए हैं। समकालीन जनजीवन में कई विसंगतियाँ पैदा कर चुका है किन्तु भारतीय आदर्शों का प्रभाव आज भी वीरभूमि राजस्थान की लोकचेतना, लोकजीवन के उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों व लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

उपसंहार में पूर्वी राजस्थान के लोकदेवता, देवियों के प्रति आस्था भाव की मूल चेतना जीवन की वैश्विकता को भी प्रकट करती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सारांश रूप में राजस्थानी संस्कृति की विशिष्ट परम्पराओं से होने वाले जुड़ाव, यहाँ की धरा की गंध, नदियाँ, पर्वतमालाएँ, अरावली की छटा, यहाँ के विभिन्न अभयारण्य, रणथम्भोर, वन्यजीव अभयारण्य, जिसमें गणेश जी महाराज की कृपा प्रदेशवासियों पर रहती है तथा विशाल मेलों का आयोजन करौली वाली मैया के चैत्र के नौरात्रों में राजस्थान प्रदेश के अलावा सम्पूर्ण भारतीय इस पवित्र धरा पर आते हैं। अन्य संस्कृतियों से भिन्न राजस्थानी संस्कृति की छाप आज भी है जो अधुनातन सन्दर्भों को स्पर्श करते हुए मैंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नवीनतम उदाहरण देकर नवीन आयाम स्थापित करने का विनम्र प्रयास किया है।

पूर्वी राजस्थान के करौली व सवाई माधोपुर जिलों के लोक साहित्य में सृजनात्मकता का स्वरूप विश्वसाहित्य पर सिरमोर है। राजस्थानी संस्कृति सभ्यता व परिवेश जनित समानता, सदाचार, सभ्यता, लोकाचार, भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का बखान रेत के कणों से निकलने वाली मृगमरिचिका का ही विशिष्ट रूप लिये हुए है। राजस्थान की पौराणिक, ऐतिहासिक संरचना को देखें तो तीनों ओर समुद्र से घिरी भारत भूमि में एक हिस्सा रेगिस्तान, राजस्थान के नाम से

जाना जाता है। यहाँ की पुरातन संस्कृति पूर्वी राजस्थान के करौली सवाईमाधोपुर, गंगापुर, धौलपुर, भरतपुर के कुछ भू-भाग के क्षेत्र में राजस्थान की संस्कृति का विराट समन्वय देखने को मिलता है।

पूर्वांचल की चर्चा करने से पूर्व राजस्थानी मरूभूमि के त्याग और तप की चर्चा करना आवश्यक है। राजस्थान की धरोहर के संगठनात्मक ढाँचे का भौगोलिक दृष्टि से वर्णन अध्यायों में किया है। वैदिककालीन, मुस्लिम व अंग्रेजी युग की सभ्यता रजवाड़ों का स्वरूप प्रस्तुत है। अरावली पर्वतमालाओं से घिरा प्रदेश राजपूताना के इतिहास का वर्णन पर्याप्त है। मत्स्य संघ, राजस्थान संघ, संयुक्त राजस्थान, बृहत राजस्थान, मत्स्य संघ का विलय, सिरोही का विलय और अजमेर का विलय हुआ। धीरे-धीरे पूर्वी राजस्थान की सभ्यता संस्कृति व उससे जुड़ी लोकचेतना के विविध रूपों का अध्ययन किया है। वहाँ कैलादेवी का लक्खी मेला, गागरौन गढ़, गणेश जी, मदनमोहन जी, महावीर जी, मेंहदीपुर बालाजी का तीर्थस्थान इस अंचल की लोक संस्कृति को प्रकट करता है। ईश्वरीय होने वाली आरतियाँ समयानुरूप होती है। भक्तगण लक्खी मेलों में आते हैं। देवी-देवताओं के गीतों की अनुगूंज पूर्वी अंचल की धरोहर सभी को मन्त्रमुग्ध कर देती है। लोकदेवी व देवताओं के भजनों में लांगुरिया गीत गाते भक्त माता के दरबार में घूमते-घूमते समूह गीत गाते नजर आते हैं। राजस्थानी गौरवशाली अक्षुण्ण परम्परा की विरासत करौली सवाई माधोपुर के तीर्थस्थान, माँ कैलादेवी, गणेशजी, शिवाड़, मदनमोहन जी, नरसिंह जी, महावीर जी आदि देवी-देवता प्रसिद्ध है।

राजस्थानी लोक साहित्य के वैश्विक महत्त्व को पूर्वांचल के लोकसाहित्य में वेद, वेदांगों, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में लोक वाङ्मय की पृष्ठभूमि के सहज दर्शन होते हैं। लोकशब्द का अर्थ समकालीन परिवेश की ऊर्जा को प्रकट करता है। लोकसाहित्य की अवधारणा

पूर्वांचल के साहित्य की कसौटी पर खरा उतरता है। पूर्वांचल के मेले लोकगीत, लोकनाट्य, लोकसंगीत, पवाडे आदि को लोकगाथा में पिरोहित कर लोकसाहित्य को चमकदार बना दिया गया है। लोकसाहित्य को गद्य-पद्य में लोकवाद्यों, नृत्य, अनुरंजन, लोरियां, चुटकले, मेले, उत्सवों के विविध उदाहरण देकर विस्तृत चर्चा की है। पद्य की बात कहें तो लोकगीत, लोककहावतें, लोक दोहे, लोकमन्त्र, लोक सोरठा आदि का समावेश लोकसाहित्य की देन है। लोकगीतों, संस्कार, ऋतुओं, देवी-देवताओं, लोकदेवताओं के रातिजगा, संयोग, वियोग, विदाई, श्रम, वीरगति, जातीय विशेष रूप से मीणा जाति के गीत। सन्तों व सिद्धों के गीत, थुडले के गीत आदि प्रमुख हैं।

लोकगीतों का सम्पूर्ण राजस्थान में भण्डार है, किन्तु पूर्वी राजस्थान की भाषा ब्रज के प्रभाव वाले गीत केवल करौली, हिण्डौन, सवाई माधोपुर, गंगापुर क्षेत्र में ही संभव है। ऋतुओं के बारहमासा गीतों का वर्णन भी हिन्दी पद्य में विद्यमान है। लोककहावतें, मुहावरे, पूर्वी अंचल के साहित्य की महत्त्वपूर्ण निधि है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं। राजस्थानी धर्म, स्थान, संस्कृति, ईश्वर, शकुन सम्बन्धी, लोकविश्वासों, कृषि विषयक कहावतों का अनुसन्धानपरक विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में पहेलियों का विशद विवेचन किया गया है। पूर्वी राजस्थान में मनाये जाने वाले राष्ट्रीय पर्वोत्सवों के अतिरिक्त लोकजीवन में पूजित व मनाये जाने वाले त्यौहारों का विशद विवेचन है। एकादशी तुलसी, गणेश चतुर्थी, सकट चौथ, करवाचौथ, अक्षयतृतीया, पीपल पून्यो, गोगानवमी, दीपावली, दशहरा, नवरात्रा, होलिकोत्सव, धुलण्डी, मकर संक्रान्ति, श्राद्धपक्ष आदि प्रमुख है। विभिन्न जातियों का वर्णन—ब्राह्मण, बनिया, तेली, चर्मकार, मीणा, गुर्जर, कुम्हार, जाट, अहीर, मेहत्तर आदि के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को लेकर लोकजीवन में बनी विविध पहेलियाँ व कहावतों का भरपूर प्रयोग प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का एक हिस्सा है जो ऊर्जावान भावभंगिमा को उजागर

करती है। पितर-पितराणी, महावीर जी, शिवाड़, कैलादेवी, महावीरजी, मदनमोहनजी, गणेश जी रणथम्भोर का वन्य जीवन अभ्यारण्य के अन्दर पलने वाले जीवजन्तुओं की क्रिया-प्रतिक्रियाएँ मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हुई है। पांचना बाँध का पानी का ठहराव की तरह गंभीर पूर्वांचलवासियों में गम्भीरता प्रदान करते प्रतीत होते हैं।

पूर्वी राजस्थान के निवासियों में देवी-देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा है। उपवास, कथाएँ, लोकविश्वास व पुरानी रूढ़ियों को मान्यता प्राप्त है। कृषि भारतीय समाज का मूल आधार है। समाज का विकृत रूप भी देखने को मिलता है। समाज के हर वर्ग में ओछी सोच के लोग रहते हैं, जहाँ जातिवाद, भाई भतीजावाद, हिंसा आदि कार्यों से अपनी आजीविका चलाते हैं। कुछ लोग चोरी व हत्या करके धनार्जन कर लूटपाट करते हैं। कुछ लोगों में नशे की प्रवृत्ति होती है, जो समाज के लिए विकृत रूप ही है। सामाजिक कुरीतियाँ, दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, सामाजिक अकृत्य आदि महत्त्वपूर्ण समस्याओं को पूर्वी राजस्थान के लोकजीवन में देख सकते हैं। लोरियाँ लोकवाद्य, पवाडे आदि का प्रयोग भी पूर्वी राजस्थान के लोकसाहित्य में दृष्टिगोचर है।

पूर्वी राजस्थान की विराट संस्कृति के दर्शन लोक समाज व लोकसाहित्य से ही संभव है। भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों की उक्तियाँ प्रचलित हैं। भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से प्राचीन है। मत्स्यावतार, वामन, वराह, नरसिंह, कूर्मा, परशुराम, रामावतार, कृष्णावतार, बुधावतार की चर्चाएँ हुई हैं। आज कल्कि अवतार सर्वत्र विचारणीय अवतार है। पूर्वी राजस्थानी संस्कृति, मूल्य व परम्पराओं से ओत-प्रोत है। अनेकता में एकता राजस्थान प्रदेश की विशेषता में सहिष्णुता, अविच्छिन्नता, जीवजन्तुओं व जंगल में रोड पर रहने वाले लोगों के प्रति समर्पण व त्याग की भावना प्रत्येक पूर्वी राजस्थान के प्राणी में विद्यमान है। चतुवर्ग में पूर्ण आस्थावान होकर उनकी भावनाओं को मानते हैं। आदर्श व मर्यादा हमारी संस्कृति

की विशिष्ट पहचान है जिससे प्रत्येक भारतीय अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है तथा धन्य मानता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में लोकसंस्कृति के मूल तत्वों का विशद विवेचन किया है जिसमें विविधता में एकता, मानवीय रिश्ते व धार्मिक एकता का परिचय होता है। प्रकृति का उपासक हमारा देश प्रारम्भ से ही रहा है। आध्यात्मिकता का केन्द्र ही रहा है। देव ऋर्षि महर्षि विश्वामित्र, सन्तों की तपोभूमि राजस्थान रहा है। कवियों को कोकिल वाणी समृद्धि का केन्द्र भी राजस्थान ही रहा है। हिन्दी साहित्य का भण्डार है। राजाओं के शासन की बात कहनी क्या? प्रजातन्त्र में भी राजस्थान विशाल भू-भाग वाला है। जातिगत, साम्प्रदायिक सदभावना का दूसरा नाम ही राजस्थानी संस्कृति है। सामाजिक विकृतियों की बात करें तो सामंती परिवेश का प्रभाव समकालीन समाज के लोकजीवन को प्रभावित किये हुए है। राजस्थान के करौली सवाईमाधोपुर ग्रामीण परिवेश व शहरी जीवन में कृषि, पशु-पालन व औद्योगिक क्षेत्रों की कमी नहीं है। नदी, पहाड़ों व कलकारखानों, वनों से रोजगार के नवीन अवसर सृजित करने की क्षमता विद्यमान है। ऋतुओं का परिवर्तन केवल भारत जैसे देश में ही सम्भव है। समानता, समन्वय, आध्यात्मवाद, वर्णाश्रम, ऋण, संस्कार, संयुक्त परिवार, यज्ञादि ऐसी सांस्कृतिक विरासत हमें मिली है जो भावी पीढ़ी की प्रेरणा की स्रोत रही हैं। ये सभी विशेषताएँ करौली एवं सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य में परिलक्षित होती है।

सांस्कृतिक बहुलता भी कुछ हद तक स्पष्ट दृष्टिगोचर है। सजातीयता, धार्मिक विभिन्नताएँ, भाषा, क्षेत्र, बोली, भाई-भतीजावाद, जातिवाद साम्प्रदायिकता आदि से ग्रसित मनोदशा को भी प्रकट किया है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व अन्य सभी प्रकार की विशेषताएँ राजस्थानी संस्कृति की पहचान है। लोकसाहित्य में करौली सवाईमाधोपुर जिले के क्षेत्र के लोकसाहित्य से जुड़े सन्दर्भों व प्राचीन धरोहरों से जुड़े तथ्यों की अनुसंधानात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है।

लोकगीतों, लोकउत्सवों, पर्वो व त्यौहारों में पूर्वांचल की लोकसंस्कृति की नई–नई तस्वीरें देखने को मिलती है। यहाँ की स्थापत्यकला, लोकमानस व लोकसाहित्य से सतत् प्रेरणा मिलती रहती है। लोकमूर्तिकला का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

जन्मोत्सव के गीत, ख्याल, बन्ना, बन्नी, भात व विदाई के गीतों का प्रयोग कर पूर्वी अंचल की लोकसंस्कृति ने उन्मेष प्रकट किया है जिसे जनसाधारण के गीतों के रूप में उभारने का प्रयास मात्र है। सोलह संस्कारों का क्रमबद्ध वर्णन ऋतुओं के गीत त्यौहारों, उत्सवों के गीतों में मंगलाचरण विधान, आस्तिकता, कैलादेवी के गीतों का वर्णन, दानशीलता का प्रभाव दृष्टिगोचर है।

करौली सवाईमाधोपुर जिले के भू–भाग के निवासियों का लोकसाहित्य के प्रति रुझान को प्रस्तुत किया है जिसमें लोकगीतों के पुट लोकभाषा में प्रस्तुत किये है। लोकसमाज में व्यक्ति की लोकचेतना के प्रति पुष्टि है। समाज के सभी वर्गों में होने वाले उत्सवों, पर्वों व संस्कारों का उल्लेख सवाई माधोपुर व करौली लोकसाहित्य में सन्निहित है। सामाजिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, व लोकाचारों का विशद विवेचन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में लोकसाहित्य से सम्बन्धित वर्णन है। लोकदेवता, देवियों का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत है। शोध प्रबन्ध के अन्त में समग्र विवेचन के रूप में लोकसाहित्य का निरन्तर सृजन करने व भावी जीवन में उतारने का सन्देश है।

धन्य है वह धरा जिसकी पवित्रतमा धरोहर में प्रदेशवासियों पर अनुकम्पा कर सर्वधर्मावलम्बियों को लोकजीवन में व्यापक परिवर्तनशील विचारधाराओं से अवगत कराकर लोकसंस्कृति में अमिट छाप छोड़ी है।

शोध के दौरान मुझे आश्चर्य हुआ कि लोकसाहित्य इतना समृद्ध होते हुए भी अभी तक विद्वानों के सक्रिय अध्ययन का विषय नहीं बन पाया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रदेश के दूर–दराज दुर्गम भू–भाग, डाँग क्षेत्र में बसा होना, करौली व सवाई माधोपुर के लोक–साहित्य के लिए उपेक्षा के कारण रहा, किन्तु इस उपेक्षित साहित्य

के प्रति अपने लगाव और आकर्षण ने इन कठिनाइयों की चिन्ता किये बिना अपने संकल्प की परिणति शोध–प्रबन्ध के रूप में हुई।

मैंने शोध के दौरान पाया कि करौली व सवाई माधोपुर जिले की एक संस्कृति है, एक पहचान है, जो कि अपनी अक्षुणता को आज भी बनाये हुए है। यहाँ के निवासियों को प्रकृति की गोद में पलने वाली धरती की संतान कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनकी जीवन साँसों में प्रकृति की उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता, ठहराव–बहाव, निर्मलता देखने को मिलती है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में सम्पूर्ण करौली व सवाई माधोपुर जिले के लोकसाहित्य में निहित समाज और संस्कृति का अध्ययन कर लिपिबद्ध किया है, अत: निश्चित रूप से यह करौली एवं सवाई माधोपुर के लोकसाहित्य को सुरक्षित रखने में अहम् भूमिका निभाएगा, जो कि आने वाले लोकसाहित्य प्रेमी व वर्तमान राजस्थानी लोक साहित्य के लिए अहम् योगदान होगा। यह शोध प्रबन्ध हिन्दी के अध्येताओं को रचनात्मक सहयोग प्रदान कर अपनी प्रासंगिकता बनाये रखेगा।

❑